रंग संवाद

मार्च 2018

वनमाली सृजन पीठ की
संवाद पत्रिका

प्रधान संपादक

संतोष चौबे
choubey@aisect.org

संपादक

विनय उपाध्याय
vinay.srujan@gmail.com

संपादक मंडल

राजेश जोशी, राम प्रकाश, मुकेश वर्मा,
महेन्द्र गगन, बलराम गुमास्ता

शब्दांकन : मुकेश सेन

संपादकीय संपर्क :
वनमाली सृजन पीठ,
22, E-7, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462016
फोन : 0755-2423806, मोबाइल : 9826392428
ई-मेल : rangsamvad@gmail.com

●●●

ज़रूरी नहीं कि पत्रिका में संग्रहित आलेखों-चित्रों में व्यक्त रचनाकारों के विचारों से 'रंग संवाद' सहमत हो। किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र भोपाल रहेगा।

वनमाली सृजन पीठ (रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय), भोपाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक - प्रियंका ऑफसेट, प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल

इस बार

समकालीन चित्रकला में आलोचना का अकाल! / 5
चित्रकार-चिंतक सुधीर पटवर्धन से देवीलाल पाटीदार और विनय उपाध्याय की बातचीत

नाटक की नई कौंध : जयदेव तनेजा / 18

विविधता का विस्तृत केनवास : त्रिपुरारी शर्मा / 20

चन्दैनी गोंदा, टेमरी और हबीब : सतीश जायसवाल / 22

मेरा रोग, उनका राग : रमाकांत श्रीवास्तव / 23

परिवर्तन की ज़िम्मेदारी और युवा : अशोक वाजपेयी / 27

सांस्कृतिक हस्तक्षेप की युवा पहल -नवोन्मेष : विनय उपाध्याय / 29

गमक उठा मादल, थिरक उठे पाँव : सुनीत सिंह / 30

संस्कृति की तन्मय तान : विक्रांत भट्ट / 33

सहृदय चितेरा : अखिलेश / 40

एक भरापूरा संगीत जीवन : अशोक वाजपेयी / 41

सुरीली ख़्वाहिशें और कुछ क़तरे रोशनी के : विनय उपाध्याय / 42

पाँचवें तार के पंडित का प्रस्थान : राजेश गनोदवाले / 45

सुभाषित की तरह जिया और लिखा : ओम निश्चल / 46

रंगभूमि का संत : कुंजप्रकाश / 48

कविता का संवादी स्वर : आशुतोष दुबे / 49

मन के मृग छौने : रामनारायण उपाध्याय के रूपक / 50

जीवन राग सिरजती ध्वनियाँ : श्रीराम परिहार / 52

कुछ अलग करने की चाह : अशोक मिश्र से महेन्द्र गगन की बातचीत / 54

नई रंग भाषा और तकनीक की दस्तक - जलतरंग : विनय उपाध्याय / 57

शोर के बरक्स खड़ा संगीत : राग तेलंग / 60

रंगमंच संपूर्ण अनुभव है : नाटककार राहुल सेठ से मजीद अहमद की बातचीत / 62

पौराणिक आख्यान और वर्तमान का द्वन्द्व : भारचन्द्र जोशी / 64

अमृता के सौंदर्य पर मुग्ध थे नेहरू : किशोर दिवसे / 66

चित्र का शरीर : प्रेमशंकर शुक्ल / 67

ईश्वर ने मुझे थियेटर के लिये ही भेजा है : रंगकर्मी रामचन्द्र से संजय श्रीवास्तव का संवाद / 68

सृजन के आसपास (सांस्कृतिक गतिविधियाँ) / 71

- **आकल्पन :** विनय उपाध्याय
- **भीतर के छायाचित्र :** विजय रोहतगी, नीरज रिछारिया, सौरभ अग्रवाल, प्रवीण दीक्षित, अरुण जैन।
- **सहयोग** : हेमंत देवलेकर, सुनीता सिंह।

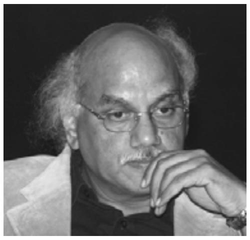

चित्रकला और संगीत

संपादकीय

रंग संवाद का यह नया अंक चित्रकला और संगीत पर केंद्रित है. भारतीयता का मूल समग्रता में निहित है. यहाँ मनुष्य को प्रकृति से, प्रकृति को संगीत से और संगीत को चित्रकला से अलग करके नहीं देखा जाता. इसी तरह संगीत का कविता से और यहाँ तक कि मनुष्य के स्वस्थ जीवन से भी गहरा संबंध है. अच्छा संगीत उसे स्वस्थ और प्रसन्न बनाये रख सकता है जबकि शोर की अधिकता उसे विक्षिप्त करने के लिये पर्याप्त है.

मनुष्य के जीवन में रस यानी जीवनी शक्ति का प्रवाह संगीत और अच्छी कविता के माध्यम से ही हो सकता है. इसे हमारे भक्त कवि अच्छी तरह से जानते थे. उन्होंने न सिर्फ कविता को ईश्वर भक्ति से जोड़ा और इस तरह उसे 'एकाग्र' किया बल्कि अपनी कविता के पदों को विभिन्न रागों में निबद्ध किया और इस तरह उनसे होने वाले रस के प्रवाह, उनके 'मूड' को पहचाना और दैनिक जीवनचर्या, जिसमें ईश्वर भक्ति के विभिन्न चरण शामिल थे, को प्रहरों से और इन प्रहरों से रागों को संबद्ध किया. मनुष्य की दैनिक आवृत्ति से उनकी गहरी पहचान थी और उसे संतुलित रखने में कविता और संगीत का क्या महत्व हो सकता है, इसे वे ठीक-ठीक जानते थे.

इसी तरह रागों का संबंध ऋतुओं से भी है. बसंत ऋतु की मादकता बसंत में गायी जाने वाली रागों में स्पष्ट झलकती है जबकि वर्षा की उन्मुक्तता वर्षा ऋतु के रागों में. इसी तरह शिशिर और ग्रीष्म ऋतुओं के राग भी निर्धारित है. प्रारंभ में रागों का एक भौगोलिक परिप्रेक्ष्य भी था और वे 'गुर्जरी', 'सौराष्ट्री', 'खंबायती' या 'सौबीरी' हो सकती थीं. ये इस पर निर्भर था कि वे किस भौगोलिक क्षेत्र में प्रमुखता से गायी जाती हैं. इस तरह प्रकृति का सौंदर्य, ऋतुओं का प्रवाह, मनुष्य का भीतरी संसार और बाहरी संसार से उसका संतुलन भारतीय शास्त्रीय संगीत की समग्र सोच तथा गठन में परिलक्षित होता है.

तो उसको चित्रों में तो उतरना ही था. पंद्रहवीं, सोलहवीं शताब्दी के बीच 'रागमाला' चित्रों पर बहुत काम हुआ. बसंत, भैरव, पंचम, मेघ जैसे रागों पर चित्र बनाये गये जो उन्हें सुनते समय मनुष्य के मन में पैदा होने वाले भाव, रागों के अपने चरित्र, उनकी प्रकृति और भौगोलिकता को प्रकट करते हैं और भारतीय संगीत तथा चित्रकला की समग्रता को भी.

और फिर भी समस्त कलाएं 'तर्क' से ज्यादा 'अनुभूति' पर केंद्रित हैं और शायद अनुभूति को जीवन के केंद्र में रखती हैं. मेरे उपन्यास 'जलतरंग' में, जिस पर केंद्रित कार्यक्रमों का 'रंग संवाद' में विस्तृत ब्यौरा है, केंद्रीय पात्र देवाशीष एक ऐसे कमरे में रात्रि बिताता है जिसकी दीवारों पर 'रागमाला' चित्र लगे हुये हैं. रात्रि के चांदनी से नहाये क्षणों में उसे एक जादुई अनुभूति होती है. उसे लगता है जैसे रागमाला पेंटिंग की नायिकाएँ चित्रों से निकलकर उससे बात कर रही हैं. इस संवाद का अंतिम वाक्य है- 'देवाशीष, तुमने बहुत लंबी यात्रा कर ली है. अब एक ही सत्य जानना तुम्हारे लिये शेष रह गया है. वह यह कि हमें शब्दों में बखाना नहीं जा सकता. हमें किसी विषय,

किसी थीम में बांधने का प्रयत्न मत करो. हमें कोई बांध नहीं सका है. हम सतत प्रवाह की तरह हैं, वैसे ही जैसे हमारे चित्र भी अंत में किसी विषय, किसी थीम से बाहर निकल जाते हैं, सिर्फ रंग रह जाते हैं. जिन्हें सिर्फ महसूस किया जा सकता है. हम अनुभव की चीज़ हैं, हम सीधे दिल में उतरते हैं, हमें दिल में बसा लो, हम सदा तुम्हारे साथ रहेंगे.'

कलाओं का यथार्थ के साथ इसी तरह का द्वंदात्मक रिश्ता है. वे उसके भीतर भी रहती हैं और बाहर भी और अंत में एक आध्यात्मिक अनुभव के रूप में जीवन में हस्तक्षेप करती हैं. वे और मानव के हृदय में रस तथा प्रकाश पैदा करती हैं जो आनंद का ही एक स्वरूप है.

●

ऐसा ही आनंद लगभग एक सप्ताह तक आईसेक्ट विश्वविद्यालय (टैगोर विश्वविद्यालय) में बिखरा रहा जहाँ देश भर से आये करीब 25 विश्वविद्यालयों के छात्रों ने 'नवोन्मेष' के अंतर्गत अपनी कलाओं का प्रदर्शन किया. इनमें नाटक भी था, संगीत भी, साहित्य भी था और संस्कृति भी. वह लघु भारत का टैगोर विश्वविद्यालय में अवतरण था. उसकी कुछ झलकियाँ भी 'रंग संवाद' में हैं. प्रख्यात चित्रकार सुधीर पटवर्धन से देवीलाल पाटीदार एवं विनय उपाध्याय ने लंबी बातचीत की है जो इस अंक में है. साथ ही भवभूति पुरस्कार से अलंकृत रमाकांत श्रीवास्तव ने कुछ अनोखे किस्से भी इस अंक में सुनाये हैं.

अंक आपको कैसा लगा, अवश्य लिखें.

●

इस अंक की तैयारी के बीच समकालीन हिन्दी के मूर्धन्य कवि भारतीय ज्ञानपीठ से सम्मानित केदारनाथ सिंह के निधन की दुखद सूचना मिली. 'रंग संवाद' की ओर से दिवंगत कवि को भावपूर्ण श्रद्धांजलि.

-संतोष चौबे

समकालीन कला जगत के जाने-माने हस्ताक्षर, कला-चिन्तक सुधीर पटवर्धन भोपाल आए। भोपाल में उनकी आमद का कारण बना भारत भवन की द्वैवार्षिक समकालीन कला प्रदर्शनी और वर्षगाँठ समारोह। भोपाल उनका आना इस मायने में भी काफी महत्त्व रखता है कि भोपाल वह सांस्कृतिक भूमि है जहाँ तमाम कलाओं की आपसदारी का एक बहुत अच्छा रिश्ता बनता है। कला की धरोहर को लेकर, समकालीन कला जगत को लेकर, अन्तर्विधायी अनुशासन को लेकर एक बेहतर संवाद का सिलसिला इस शहर ने बनाये रखा है। ऐसे में पटवर्धन जी से बातचीत करना निश्चित रूप से कई नई धारणाओं और स्थापनाओं को जानना-समझना भी है। इस बातचीत में प्रसिद्ध शिल्पकार, चित्रकार, कलाविद देवीलाल पाटीदार और रंग संवाद के संपादक, कला समीक्षक विनय उपाध्याय अपने सवालों के साथ शामिल हुए। लगभग डेढ़ घंटे का यह संवाद आईसेक्ट स्टुडिओ में रेकॉर्ड किया गया।

समकालीन चित्रकला में आलोचना का अकाल!

चित्रकार-चिंतक सुधीर पटवर्धन से देवीलाल पाटीदार और विनय उपाध्याय की बातचीत

विनय उपाध्याय : पटवर्धन जी, यों तो बातचीत का फलक बहुत बड़ा होगा हम जैसे-जैसे संवाद को आगे बढ़ायेंगे। लेकिन छोर पकड़ने के लिए पहला सवाल कि वो कौन से ऐसे बुनियादी प्रभाव और संस्कार रहे है जिनके चलते आप इस कला की दुनिया में दाखिल हुए और आपको लगा कि कही आपको अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम तलाशना चाहिए?

सुधीर पटवर्धन : मैं जब मेडिकल कॉलेज में था, तब मेरे मन में यह आया कि मैं कलाकार बनना चाहता हूँ। वैसे उसके पहले बचपन में ड्रॉइंग करना, वगैरह, यह तो होता था, मगर मेडिकल कॉलेज में कुछ अनुभव ऐसे थे कि जिसके कारण कला की ओर मैं मुड़ा, फिर यह बात थी कि मेडिकल स्टडीज़ छोड़कर कलाकार बनना है या दोनों को सँभालकर कलाकार बनना है! मुझे यह लगा कि वो भी मेरे लिए महत्त्वपूर्ण था- मेडिकल और कला भी- तो दोनों को साथ लेकर मैं चला।

विनय उपाध्याय : परिवार ने आपको किस तरह से सहयोग किया? क्या आपके परिवार में इस तरह के कला को लेकर कोई संस्कार, कोई आग्रह रहे...?

सुधीर पटवर्धन : मैं समझता हूँ कि दो तरह के संस्कार रहे। एक रहा क्राफ्ट्समैनशिप का संस्कार, जो मेरे पिताजी के द्वारा मुझे मिला। वे अच्छे कारपेंटर थे और पेंटर भी थे। जैसे कि पुराने घर में, सांगली में उन्होंने वॉल के ऊपर हनुमान की तस्वीर बनायी थी और उनके हाथ में काफी जादू था। एक तो वो रहा और दूसरा रहा माँ की तरफ से, साहित्य का। मेरी माँ हिन्दी साहित्य में बहुत रुचि रखती थीं और 'प्रवीण' आदि की सब परीक्षाएँ दी थीं। बहुत पढ़ती थीं और हम साथ में पिक्चर देखा करते थे और फिर चर्चा करते थे। तो यह सब किसी तरह उसका असर था।

विनय उपाध्याय : देखिए, रुझान तो बन जाता है। आपने कहा कि पिता का भी कोई अंश तो आपके भीतर था ही, जिसने इस तरह से रचनात्मक रुख बनाया। यह होना अलग बात है, लेकिन ठीक ढंग से उस रास्ते पर चलना अलग बात होती है। मेडिकल कॉलेज का आपने ज़िक्र किया। एक तरफ आपकी मेडिकल की पढ़ाई, दूसरी तरफ कलात्मक संवेदना। इन दो छोरों पर चलते हुए आप कैसे न्याय कर पाये अपनी ज़िद के साथ?

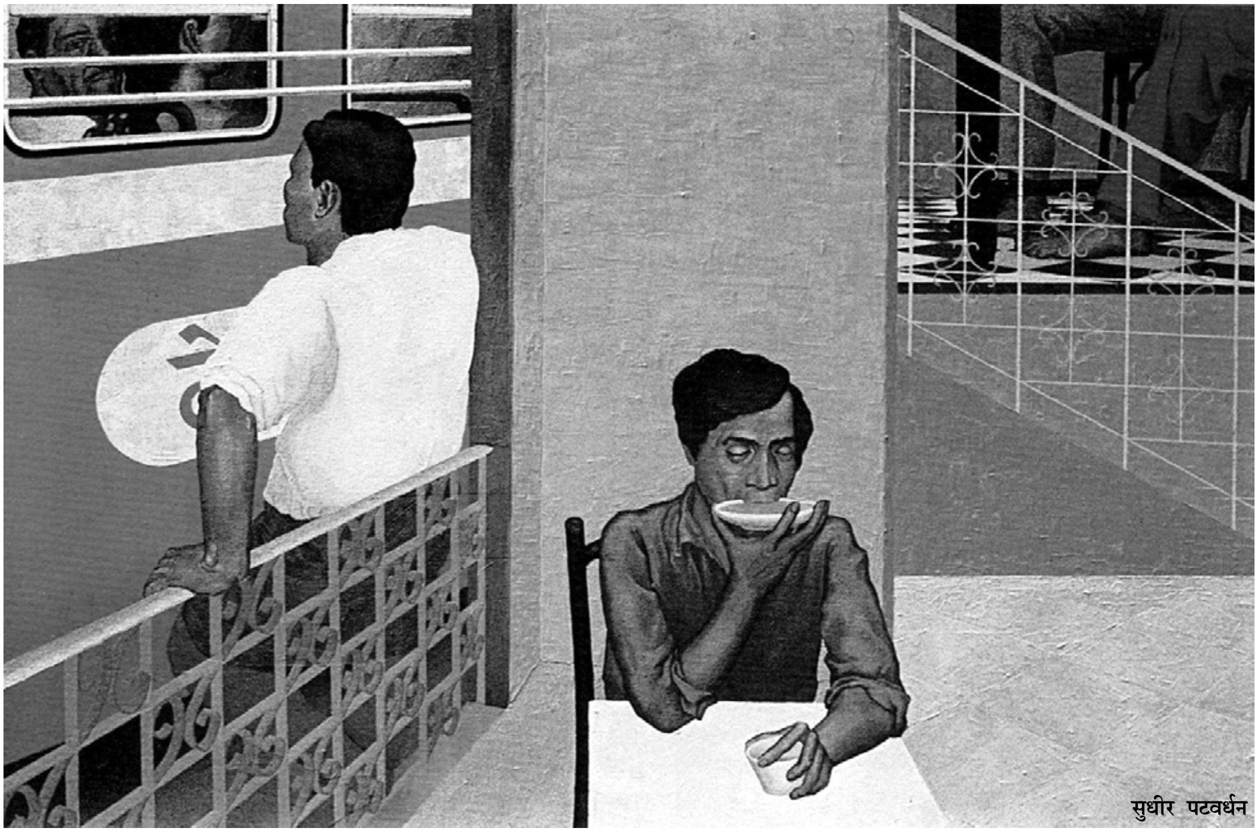

सुधीर पटवर्धन

सुधीर पटवर्धन : यह हुआ कि उसी समय जब हम कॉलेज में थे, मेरी मुलाकात शान्ता से हुई और उन्होंने बचपन से नृत्य की शिक्षा ली थी और वह चालू रखी थी। तो यह साधना रखना, यह एक मार्ग पर चलना और उसको लेकर आगे जो कुछ करना है, उसको एक नियमित या एक ऑर्गेनाइज्ड तरीके से अपनी लाइफ को ऑर्गेनाइज़ करने से- मेडिकल मुझे इसलिए महत्त्वपूर्ण लगता है कि जिसमें लोगों से मिलना। पहले से मेरा इन्ट्रेस्ट कला के द्वारा भी यह था, लोगों में इन्ट्रेस्ट था कि लोगों की कहानियाँ पेंट करूँ। तो मेडिकल का उसमें यह योगदान रहा कि रोज़ नये पेशेन्ट्स को मिलना, उनके अनुभव देखना और वो अपने को एक तरीके से हम्बल बनाता है कि हमारे जीवन से बहुत ज्यादा कठिनाइयों से लोग जीते हैं और फिर भी जो उनके अन्दर साहस रहता है उसको देखना, यह इंस्पिरेशन रहा है।

विनय उपाध्याय : हर कलाकार के साथ यह होता है कि जिस वक्त वह आँखें खोलता है तो उसके सामने कुछ नायक छवियाँ होती है। जिनका प्रभाव उसके भीतर होता है। आपने जब चित्रकला के साथ रिश्ता बनाया तो ऐसे कुछ चित्रकार होंगे, कलाकार होंगे जिनका कही न कही प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव आपके भीतर होगा ही। कौन-सी चीज़ों ने आपको आकर्षित किया?

सुधीर पटवर्धन : वैसे हम लोग पूना में पढ़ाई कर रहे थे और वहाँ चित्र देखने के अवसर बहुत नहीं होते थे, एक्जीबिशन्स इतनी नहीं होती थीं, तो कलाकारों से मिलना वगैरह, यह भी इतना रेग्युलर नहीं था। तो ज़्यादातर किताबों से और फिर जैसे कि सभी जनरेशन्स और यूथ में जैसे इम्प्रेशनिस्ट कलाकार, पोस्ट इम्प्रेशनिस्ट के जीवन- वॉन गॉग स्पेशियली के जीवन- से जो एक प्रभाव होता है, कि किस तरह की कमिटमेन्ट होती है, किस तरह के डेंजर्स होते हैं उसमें, किस तरह की कठिनाइयाँ होती हैं। इसको सामने लाना है। तो यह एक तरीके से आकर्षित करता है और दूसरी तरफ पढ़ने में ऐसे काम और सार्त्र जैसे ऑथर्स का भी बहुत स्ट्रांग इनफ्लुएन्स रहा कि एक सोशल कमिटमेन्ट और एक आर्टिस्टिक कमिटमेन्ट- ये दोनों को साथ देखकर। उसके बाद में पूना में मैंने देखा कि कहाँ से मैं थोड़ा बहुत सीख सकूँ। वहाँ पर भी काफी कलाकारों के साथ, एक केलकर जी थे, जो बहुत प्रोत्साहन देते थे- अच्छा है, अच्छा है। क्योंकि मैं मेडिकल में था, आर्ट स्कूल में था नहीं, जो जब कुछ कर रहा हूँ वह ठीक हो रहा है या नहीं। ऐसे उन्होंने भी बहुत प्रोत्साहन दिया।

विनय उपाध्याय : पहला चित्र आपको याद आता होगा, जब आपने किसी कैनवास पर, कागज़ पर उसे बनाया होगा और उसके साथ जो आपका इन्टरेक्शन रहा होगा कि क्या मै ये ठीक तरह से उकेर रहा हूँ? क्या मेरे भीतर जो संवेग उमड़ रहे है, उनको मै रख पा रहा हूँ, ठीक से रच पा रहा हूँ कि नही? अपनी शैली को लेकर भी एक जो दबाव होता है, जो द्वन्द्व एक कलाकार के भीतर होता है कुछ सिरजने के पहले, क्या आपके साथ भी ऐसा था और वो क्या था?

सुधीर पटवर्धन : हाँ, शुरू में तो कुछ कॉपीज़ करना, ये करना, सीखने की तरफ से- ये तो होता था। लैंडस्केप्स की कॉपी करना, पोर्ट्रेट्स की, रेम्ब्रा की कॉपी करना- ये सब होता था। मगर फिर एक जो मैंने खुद का चित्र, ऐसे ही एक कपल का चित्र बनाया था। वो ज़्यादातर

एक्सप्रेशनिस्ट स्टाइल में, ऐसे ही कुछ था और जब मैं वो दिखाने के लिए केलकर साहब के पास गया। उनका काम बहुत अलग तरीके से, इण्डियन मिनिएचर स्टाइल से प्रभावित वगैरह, ऐसे होता था। ये तो बहुत अलग था। मगर उन्होंने जब कहा कि यह तो बहुत अच्छा है और हम भी ऐसा कुछ करना चाहते हैं, मगर अक्सर कर नहीं सकते। ये उनके जो शब्द थे, मुझे लगा कि कुछ मिला है मेरे को, मुझमें है कुछ।

देवीलाल पाटीदार : जिन दिनों आप बाक़ायदा चित्रकार के तौर पर काम करने लगे, उन दिनों अपने देश में कला का जो पूरा माहौल था उस पीरियड के बारे में कुछ बताइये। मतलब जहाँ से हम बाक़ायदा एक्जीबिशन और ये सब चीज़ें शुरू करते है।

सुधीर पटवर्धन : यह हुआ कि मेडिकल पढ़ाई के बाद तो बम्बई आना था पूना से, क्योंकि चित्र अगर डेवलप होना है आर्टिस्ट और देखना है तो बम्बई तो आना है। बम्बई आने के बाद मैंने दो कलाकार, पहले जो काम देखे, एक गिव पटेल और एक थे भूपेन्द्र खख्खर। इनके काम देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और मुझे लगा कि अब तक मैं जैसे वेस्टर्न आर्ट को देखते आ रहा हूँ किताबों से और वो स्टडी किया है और 'इलेस्ट्रेड वीकली' वगैरह में जो आते थे, कि ये हुसैन साहब हैं, अकबर पदमसी हैं, इनका काम देखते आया हूँ, ये एक तरह का काम है और ये जो बन रहा है, अभी सत्तर के दशक में जो काम बन रहा है, गिव पटेल और भूपेन्द्र वगैरह, ये कुछ अलग हैं और लोकल सिचुएशन को लेकर ये कुछ बोल रहे हैं। उससे मुझे लगा कि हाँ ये मुझे इससे लगाव है, इसको आगे लाना है मुझे।

देवीलाल पाटीदार : जब बॉम्बे आ गये तो बॉम्बे में जो प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप्ज़ हैं या बॉम्बे आर्टिस्ट सोसायटी है, इनकी किस तरह की उन दिनों एक्टिविटी थी या किस तरह की चीज़ें थी, ये आप में शामिल होते थे या नही होते थे?

सुधीर पटवर्धन : बॉम्बे आर्ट सोसायटी के एक-दो प्रदर्शनी में मैंने भाग लिया था और मैं थोड़ा-सा आउटसाइडर जैसे महसूस करता था खुद को। क्योंकि एक तो जे.जे. का जो माहौल था वो बहुत अलग था और उस समय जे.जे. में एब्स्ट्रेक्शन का बहुत स्ट्रांग इनफ्लुएन्स था और मेरा काम उससे कुछ हटकर था। फिर भी, जैसे नलिनी मालानी है, गिव पटेल है- ये बम्बई के, उनसे ज़्यादा क्लोज थे और उस समय लोग समझते थे कि बड़ौदा स्कूल से ज़्यादा मिलते हैं। तो ये इनफ्लुएन्स थोड़ा था। मैं तो उनसे मिला बाद में, बड़ौदा वगैरह- मगर बम्बई में सिर्फ एक जो थे- शंकर पलशीकर जो डीन थे पहले जे.जे. के, उनसे मैं मिलता था और वो बहुत ओपन थे और उनको मेरा काम अच्छा भी लगता था और वो उसको गाइड भी करते थे। मगर जो बाकी का बॉम्बे स्कूल जिसको कहते हैं, उससे ज़्यादा मुझे लगता था कि वो लोग भी मुझको आउटसाइडर रखना चाहते हैं। मैं भी उनसे थोड़ा सा अलग हूँ, यह महसूस होता था उस समय।

विनय उपाध्याय : पाटीदार जी आगे और कुछ पूछें, उसके पहले मेरे मन में एक सवाल आ रहा है। जैसा कि आपने बताया कि उस वक्त प्रोग्रेसिव मूवमेन्ट आर्ट के साथ भी जुड़ चुके थे। कन्टम्परेरी आर्ट के चित्रकार थे, उनके पास भी जाने का आपका मन होता था और आप बहुत ज्यादा इनवॉल्व भी नहीं हुए। इसके ठीक समानान्तर कला का बाज़ार भी अपनी स्थापना की भी एक अन्दर-भीतर कसक होती है। इन सबके बीच में मेरी प्रिजेन्स क्या बनेगी, मैं अपने स्वयं के स्टेबलिश को लेकर क्या करूँ? एक कलाकार होते-होते आपके भीतर उलझन कह लीजिए या ज़िद कह लीजिए या द्वन्द्व कह लीजिए रहे ही होंगे।

सुधीर पटवर्धन : मेरा पहला एक्जीबिशन 'वन मैन शो' हुआ 1979 में। उस समय मुझे लगता है कि जैसे 'आर्ट मार्केट' था ही नहीं, कुछ खास और जो कलाकार बनना चाहता था वह यह सोचता ही नहीं था कि हमको इस तरह से कल को अपना ब्रेड एंड बटर बनाना है। वो तो कभी पॉसिबल ही नहीं था। मैं लकी इसलिए था कि मैं प्रेक्टिसिंग डॉक्टर था। वो साइड तो सँभल ही गयी थी। मुझे काम करना है, वो बिके या न बिके, इससे कोई मतलब नहीं था। मुझे लगता है कि तैयब मेहता से लेकर कोई भी, उस समय ऐसे नहीं थे जो उसके ऊपर जीते थे- शायद हुसैन को छोड़कर।

वैसे वो प्रश्न इर्म्पोटेण्ट नहीं था, मगर दूसरा जो प्रश्न है, आर्ट वर्ल्ड में अपना स्थान बनाना। उसमें मैं बहुत लकी भी रहा हूँ। मेरी पहली एक्जीबिशन में ही मेरे पहले बायर्स किशन खन्ना रहे, हुसैन साहब रहे और बाल छाबड़ा रहे। तो पहली तीन पेंटिंग जो बिकीं, वो तीनों आर्टिस्ट लोगों ने लीं। इससे एक बड़ा कॉन्फीडेन्स आ जाता है। ये बहुत लकी चीज़ मेरे लिए रही। अलकाज़ी ने मेरा पहला शो किया दिल्ली में। अलकाजी के द्वारा शुरू हुआ। तो एक कॉन्फीडेन्स था ही, आईदर जस्टीफाई ऑर नॉट और उस समय वैसे भी आर्ट वर्ल्ड छोटा था। एक-दूसरे को सब लोग जानते थे तो आर्ट वर्ल्ड में कम्फर्टेबल था।

विनय उपाध्याय : विषय को लेकर, अपनी तकनीक को लेकर और शैली को लेकर आपने क्या चुना?

सुधीर पटवर्धन : पूना से एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव मेरी सोच में था, जो मार्क्सवादी सोच है। वो इसलिए महत्त्वपूर्ण थी कि जो कुछ उस समय- सत्तर का वक्त था- बहुत सारे मूवमेन्ट्स हो रहे थे। पचास से सत्तर तक जो नेहरूइन पीरियड था, उसमें एक यूटोपियन था, वो कहीं पर अब कम हो गया था, बहुत सारे कॉनफ्लिक्ट्स उभर आये थे, तो इसको कैसे समझें? इसे समझने के लिए मार्कसिस्ट व्यू प्वाइन्ट से, जनरली लेफ्टिस्ट प्वाइन्ट से समझना मुझे बराबर अच्छा लगता था। इसलिए मेरे पहले जो विषय थे वो वर्किंग क्लास और दूसरा पूना से बम्बई आकर जो प्रभाव हुआ था, वर्किंग क्लास में काम भी करता था। तो के.ई.एम. हॉस्पिटल और एम.जी.एम. हॉस्पिटल जो बिल्कुल परेल एरिया में है और वो वर्किंग क्लास एरिया मिल एरिया है। तो वहाँ मिल वर्कर और ये सब थे, ये मेरा माहौल था और उनको लेकर, ये पहली इनफ्लुएन्स थी। मेरे सब काम वर्किंग क्लास को लेकर और उनकी लाइफ को रिप्रजेन्ट करने वाले थे।

देवीलाल पाटीदार : हम आपसे यह जानना चाहते है कि प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप्स में पहले बैच में जो लोग इकट्ठे हुए थे, उसमें सारे लोग शहर के थे क्या? मतलब कोई रूरल एरिया से या कस्बों से था?

सुधीर पटवर्धन : प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप्ज़ से मतलब आप यही कह रहे हैं कि सूजा है। वह तो गोवा के हैं, फिर बम्बई आये हैं। हुसैन तो इधर इन्दौर के हैं, फिर बम्बई आये हैं। मगर आये हैं सब लोग बम्बई में। इधर-उधर से आये हैं, मगर आये हैं सब लोग बम्बई में- और यह बहुत ज़रूरी था। नेशनेलिज्म का तब तक दौर कम हो रहा था अब जब फ्रीडम मिल गयी तो सारे विश्व को देखना, जो कुछ हो रहा है और ये सिर्फ इण्डिया की बात नहीं, आप कहीं भी देखो, यूरोप में देखो। ईस्टर्न यूरोप में जो फ्रांस में हो रहा था उसका कितना इनफ्लुएन्स है। कहीं भी! अभी देखते हैं कि ईस्टर्न कण्ट्रीज में थाईलैण्ड में हो, मलेशिया में हो। हर जगह! इसी के दौरान 40-50 में मॉडर्न आर्ट फैला। जैसे पिकासो है या कोई है। दे हैव गिवन समथिंग व्हैरी इर्म्पोटेण्ट फॉर द मॉडर्न वर्ल्ड। मॉडर्न वर्ल्ड तो सभी शेयर करते हैं उनकी ट्रेडीशन को, फिर बाद में जाकर वो ट्रेडीशन से मिलाना, उनके साथ कुछ होता है, ये देखना होता है। मगर इसका जो इर्म्पोटेन्स है उसको हमें मानना चाहिए कि प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप्ज़ ने जो एक कॉन्ट्रीब्यूशन की।

यह ठीक है कि वो वेस्ट से लिया गया था, मगर मुझे लगता है कि वो बहुत इर्म्पोटेण्ट स्टेप था, जैसे बाद में जो तांत्रिक आए, एक्शन इससे ही बढ़ता है। स्पाइरल, पहले एक नेशनलिस्ट फीलिंग हो, फिर इण्टरनेशनल फील हो, फिर इण्टरनेशनल ज्यादा होने के बाद सोचो कि हम कौन हैं, फिर लोकल सोचो, फिर लोकल हिस्टोरिकल सोचो, फिर लोकल सिचुएशन सोचो। 90 के बाद फिर ग्लोबल हो गया और उसके बाद में एक सर्किल हो गया। ये जो 90 का जनरेशन है, क्या है उनके लिए- इण्डियननेस! अफ्रीकन आर्ट, आस्ट्रेलियन एबॉरजिनल- आर्ट उनके लिए जितना पास है, इधर के जो आदिवासी आर्ट उतने ही पास या उतने ही दूर हैं उनके लिए। ये ग्लोबल ही है। अब तो फ़र्क ही नहीं है।

विनय उपाध्याय : क्या आपको उस समय महसूस हो रहा था कि अन्य कलाओं की तरह हमारी चित्रकला सामाजिक, सांस्कृतिक हस्तक्षेप का एक ज़रिया बन सकती है?

सुधीर पटवर्धन : ये काफी कॉम्प्लीकेटेड विचार है कि हम क्यों करना चाहते हैं, हम क्यों सोशल इश्यूज को रिप्रेजेन्ट करना या क्यों उसमें जाना चाहते हैं। एक तो हो सकता है विद्रोह की भावना है, जो दलित लिटरेचर में आयी महाराष्ट्र में तब। तो बहुत स्ट्रांगली प्रोटेस्ट कविता थी या वैसे टाइप एक यू ऑन टू रिकार्ड, कि जो कुछ है, ये सांस्कृतिक सिस्टम है, उसके आगे इनजस्टिस है, उसके अंगेस्ट हमारी आवाज़- उससे कोई चेंज आयेगा कि नहीं आयेगा, यह बात अलग है- मगर ये प्रोटेस्ट करना।

मेरा कुछ अलग था- मतलब ये भावना मेरे अन्दर इतनी नहीं थी। एक तो मैं मिडिल क्लास का आदमी था। मैं जो देख रहा था, दूसरों का जीवन देख रहा था, मगर मेरे जीवन में ऐसे कोई प्रोटेस्ट करने वाली बात डायरेक्टली नहीं थी। मैं तो रिकॉर्ड करना चाहता था। ये जो कुछ हो रहा है उसको कहीं पर ऑब्जेक्टिवली देखकर समझो रिकॉर्ड करना। इस भावना से ज्यादा मेरा उस सिचुएशन को लेकर और फिर बात बनती है, फिर चित्र में मुझे कभी भी ऐसा लगा नहीं कि ये चित्र से ट्रांसफॉर्मेशन वैसी हो जाये। मगर यह ज़रूर है कि उससे कांसिसनेस बढ़े, जिनका चित्र मैं बनाता हूँ, उनके अन्दर कोई एक स्ट्रेन्थ बने कि हम शोषित हैं, फिर भी हमारे अन्दर कुछ है जो इसको विदस्टैंड कर सके। ये अगर मैं रिप्रजेन्ट कर सकूँ तो उससे मैं कुछ दे सकता हूँ सोसायटी को, या ऐसी भावना से वो बने।

देवीलाल पाटीदार : जैसे बंगाल में अकाल को लेकर काफी काम हुआ था और वहाँ काफी दिन तक ऐसी परम्परा भी रही कि समाज के साथ या जीवन के साथ या उसके सुख-दुख के साथ कला और कलाकार कदम मिलाकर चले। आपके ख्याल से हमारे देश में वो क्या स्थितियाँ-परिस्थितियाँ रही, जिसके कारण कला का ये पक्ष थोड़ा-सा पीछे गया और जो दूसरा पक्ष है, जो ऐसी किसी चीज़ को अपनी जिम्मेदारी नही मानते है या एकदम आर्ट की बात करते है या ये हमारे देश में मेनस्ट्रीम कला का चेहरा बना है। कला की जो बिरादरी है या कला के जो डीलर या राइटर या एप्रिशियेटर है, उनसे कहाँ ऐसी चूक हुई जिसके कारण डायरेक्शन ही बदल गया। मतलब मैं सीधे-सीधे यह कह रहा हूँ कि जिसे हम बंगाल स्कूल कहते है और जिसे प्रोग्रेसिव स्कूल कहते है- ऐसा क्यों नहीं हुआ कि ज्यादा अनुकूल बंगाल स्कूल था हमारे देश के, वो साइड-लाइन हुआ और जो प्रोग्रेसिव मूवमेन्ट है, जो हमारे देश का था ही नही उस तरह से, जो एकदम बॉरो करके हमने ले लिया बहुत सारी चीज़ों को, वो मेनस्ट्रीम हो गया?

सुधीर पटवर्धन : जो आप कह रहे हैं वो बिल्कुल सही है कि ये ऐसे हुआ। मुझे लगता है उसमें कुछ सिक्सटी स्टेजेज़ हुए हैं। एक तो मैं प्रोग्रेसिव स्कूल का योगदान बहुत बड़ा समझता हूँ, जो हुसैन से लेकर अकबर पदमसी, तैयब मेहता, जो कोई है। फॉर्मेलिज्म अगर हम सोचें, तो मुझे लगता है एक साइकिल होता है कला के जगत में कि सोसायटी

गीता कपूर की पहली किताब है, जो सिक्स पेंटर्स की किताब है, उसमें बहुत कड़ा क्रिटिसिज्म भी है। जैसे सूज़ा का हो या अन्य सभी पेंटर्स का हो, उसमें बहुत कड़ा क्रिटिसिज़्म भी है- अगर हम ठीक से उसको पढ़ें। मगर बहुत कम लोग है जिन्होंने लिखा है और ज़्यादातर इंग्लिश में लिखा है, यह भी सही बात है। मराठी में सोचो तो ऐसी कोई सीरियस क्रिटिसिज़्म हुई नहीं है। एक मैग्ज़ीन तीस सालों से चल रही है, मगर उसमें सिर्फ यही नहीं, जैसे गायतोण्डे के बारे में बहुत ज्यादा बेसिक सभी आर्टिकल और फिर कैटलॉग के लिए लोग लिखते है, वो क्रेज़ी होता है। तो क्रिटिसिज़्म कम होता है, यह बिल्कुल सही है। मगर आपस में जब बातें होती है, व्यक्तिगत, उसमें ज़रूर आलोचना होती है। यह नॉलेज आर्ट वर्ल्ड में है। कौन अच्छा है, कौन बुरा है, कौन क्यों अच्छा नही है- यह अगर आप लोगों से मिलो, बात करो तो पता चलता है। सच्ची आलोचना से महरूम है हमारी चित्रकला।

की तरफ झुकना, फिर बहुत ज्यादा सोसायटी की तरफ झुकने के बाद सोसायटी से अलग होना। ये साइकिल में चलता है और ये अलग होने में जो फॉर्मेलिज्म के ऊपर इम्फैसिस आता है कि ये फेज होती है कि तुम्हारे जो माध्यम हैं उसको आप सोफिस्टिकेट करो, आपको जो कहना है वो माध्यम में कहा। यह नहीं कि माध्यम सिर्फ ट्रांसपेरेन्ट बने और उसके द्वारा आप जीवन भर की बात कर रहे हैं। यह हो नहीं सकता। अभी जैसे न्यू वेव्ह सिनेमा है। तो सत्यजित राय जैसे लोग! उनका माध्यम ऑल मोस्ट ट्रांसपेरेन्ट हो गया कि जो जीवन है वो कला में मिरर हो रहा है। मगर फिर जैसे मणि कौल हैं, ये हैं, तो वो माध्यम आगे आता है कि ये कैमरा है, ये लेन्स है। यह इर्म्पोटेण्ट है कि कैमरा नहीं हिल रहा है और अभी हिलने लगा। एक-एक फ्रेम! हम नॉर्मली तो सोचते नहीं कि कैमरा है, नहीं हम तो जीवन ही देख रहे हैं। ये पेंटिंग में भी होता है।

बंगाल स्कूल में भी हुआ, जैसे सोमनाथ होर की बात है। सोमनाथ होर के जो बंगाल के फेमिन के चित्र हैं, उसके बाद में जो वून्डस् हैं, इसमें माध्यम ऊपर आये हैं। तो ये माध्यम को इर्म्पोटेन्स देना और साइकिल। फिर से वो माध्यम को इर्म्पोटेन्स पूरा 60-70 में हुआ उसके बीच। फिर इण्डियननेस कितना होना चाहिए, कौन-से टाइप का इण्डियननेस होना चाहिए, फिलॉसफिकल होना चाहिए या मिनिएचर स्टाइलिस्टिक होना चाहिए- इसके ऊपर विचार हुए। ये हिस्टोरिकल जो है, वो दोनों हैं। एक फॉर्मेलिस्ट विचार भी है और जो अपनी सोसायटी से जुड़ा है, अपनी हिस्ट्री से जुड़ा है। ये नहीं कि आज की सोसायटी सिर्फ आज की सोसायटी है, उसके अन्दर जो कोई प्रवाह है, हिस्टोरिकल प्रवाह चालू है, वो सब अलाइव है। फिर 70 के बाद में- मैंने जो ज़िक्र किया- गिव पटेल, विवान सुन्दरम्, नलिनी, भूपेन, गुलाम मोहम्मद शेख- इनका फिर से एक साइकिल शुरू होकर, फिर से सोसायटी की तरफ ये हुआ। असल में प्रेक्टिस में, रियालिझम, ॲबस्ट्रशन और फॉर्मेलिझम का रिश्ता बहुत गहरा है। यहाँ उसे काफी सिंपलीफाई किया है।

देवीलाल पाटीदार : जयप्रकाश के आन्दोलन के बाद, 72 में इमरजेन्सी के बाद जो पूरा परिदृश्य है उस पर आपकी राय....।

सुधीर पटवर्धन : वो तो स्टूडेण्ट मूवमेन्ट था। वहाँ ऐसा कोई यंग आदमी नहीं था जो उससे बच सकता था। हर एक को उसमें कूदना ही था। सोसायटी में तो यही माहौल था। नॉट ओनली इन इण्डिया, सब जगह। फ्रांस में रिवोल्यूशन हो रही थी, यूरोप में हो रही थी, वियतनाम के अगेंस्ट हो रहा था ये सब। उस समय ये सारे विश्व में था और उसके पहले का जो वर्ल्ड था- आप जैसे कह रहे थे- वह फॉर्मेलिज्म के ऊपर डिपेण्ड था। वो साइकिल में घूमता है।

देवीलाल पाटीदार : मुझे व्यक्तिगत तौर पर ऐसा लगता है कि जिसे हम समकालीन भारतीय कला के टर्म में जानते-समझते है, इसमें हमारे अपने देश का जो फोक आर्ट है या ट्राइबल आर्ट है या हमारा शास्त्रीय मिनिएचर और ये सारा है, इससे इसका इन्टरेक्शन कम है और यूरोप और वेस्ट में मॉडर्न आन्दोलन के नाम पर या मॉडर्न सेन्सेबिलिटी के नाम पर जो आर्टीकुलेशन हुआ, उससे इसका सम्बन्ध ज्यादा है। आपकी नज़र में ऐसी क्या स्थितियाँ-परिस्थितियाँ थी, जिसके कारण हम अपनी बात को अपनी भाषा में कहने का कोई बेहतर तरीका नही बना पाये? मतलब हमने भाषा भी बॉरो की।

सुधीर पटवर्धन : मैं मेरी खुद की बात करूँ।

देवीलाल पाटीदार : ये पर्सनल जैसा नही है, मगर जो सीन है...

सुधीर पटवर्धन : मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैं इंग्लिश स्कूल में पढ़ा बचपन से, क्योंकि मेरे पिताजी की ट्रांसफर होती थी, महाराष्ट्र से बाहर, साउथ में जाते थे, इधर-उधर जाते थे। इंग्लिश स्कूल में पढ़ा। यहाँ एक कट आया। फिर बाद में सिटीज़ में रहा। पूना में रहा, फिर बम्बई आया। वहाँ पर जो कुछ रहना है, जो कुछ देखना है और जो कुछ पढ़ना है, फिल्में देखनी हैं- तो जो कुछ है वो पूरा वेस्ट से प्रभावित था। मतलब इट इज़ स्टीप्ड इन वेस्टर्न कल्चर। आप पूछो मुझे कि आप कौन-से ऑथर्स को जानते हो, जैसा मैंने कहा- सार्त्र। यह नहीं कहा कि मुक्तिबोध हैं, ये हैं। यहाँ तक कि मराठी में। कॉलेज में लगता कि मुझे पढ़ना चाहिए मराठी, कोशिश करना चाहिए और फिर पढ़ता था। अगर झट से कोई किताब उठाना है तो इंग्लिश किताब ही हाथ में उठाते थे, क्योंकि वो आसान था पढ़ना। अब यह सही है या गलत है, ये

प्रश्न हमेशा आता है। मेरे मन में भी आता है कि ऐसा होना चाहिए था या कुछ अलग होना चाहिए था। मगर ट्राइबल आर्ट्स से मेरा सम्बन्ध क्या है? यहाँ पर 1982 में आने के बाद, भारत भवन देखने के बाद ट्राइबल आर्ट से सम्बन्ध बना। उसके पहले तो वॉन गॉग देखते थे, मोर बोनार्ट देखते थे। वही देखते थे। तो ये सिचुएशन है।

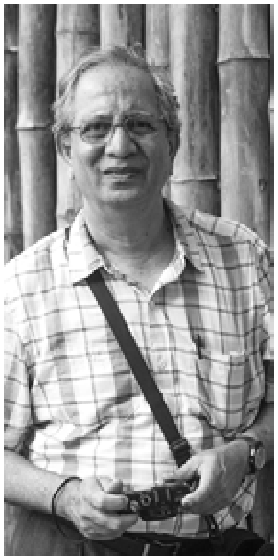

जो प्रादेशिक है और जो सेण्टर में नहीं हैं, उनको इससे इण्ट्रोड्यूज करना, उनके पास यह लेकर जाना तो यह सवाल है कि सेण्टर और जो प्रादेशिक है, उनका क्या सम्बन्ध होना चाहिए। क्या सम्बन्ध होता है? आज तक क्या हुआ है कि पेरिस सेण्टर है और ये सारा वर्ल्ड आउटसाइड है और सबको जाना है पेरिस। पिकासो को जाना है पेरिस। सबको जाना है पेरिस! उसके बाद हुआ न्यूयॉर्क। तो सेण्टर पर जाकर आपको सीखना है।

विनय उपाध्याय : हो सकता है कि मै समझने के स्तर पर कही भूल कर रहा हूँ। लेकिन मै आपसे जानना चाहता हूँ कि वैश्विक होने का जो हमारे भीतर दबाव था- दबाव कह लीजिए या महत्त्वाकांक्षा थी- इसी बीच प्रोग्रेसिव मूवमेन्ट आया। एक तरफ दमन, शोषण के खिलाफ आवाज़ उठ रही थी, दूसरी तरफ आधुनिक प्रभाव। इस बीच हमारा लोक और जनजातीय परिदृश्य से ध्यान हट गया। कही भीतर हीनता की भावना भी। हमने आधुनिक कला की तरक्की में या अभिव्यक्ति के संसाधनों को चुनते हुए लोक और आदिवासी संपदा को हाशिये पर छोड़ दिया। आपकी क्या धारणा है?

सुधीर पटवर्धन : यह तो होता है। मेरे ख्याल से यह एक एक्सपीरिएन्स सभी का होता है। मैं आपको थोड़ा-सा डायवर्जन से बताऊँ कि हमने दो एक्ज़ीबिशन ऑर्गेनाइज़ किये। एक 2008-09 में और दूसरा 2014 में। 2008-09 के एक्ज़ीबिशन का नाम था- 'विस्तारवादी क्षितिज' और तीस कलाकार भारत के, उनकी हिस्ट्री लेकर। ये बम्बई के बाहर आठ छोटे शहरों में हमने किया। यह क्या था? जो समझा गया है केनन, कि मॉडर्न आर्ट इण्डिया का क्या है? प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप्ज़, मगर प्रोग्रेसिव मॉडर्न, प्रोग्रेसिव ग्रुप्ज़, उसके बाद में जो 80-90 का ग्रुप्ज़ हुआ- ये सब, फिर एब्स्ट्रेक्शन का दौर, फिर उसके बाद भूपेन वगैरह ये सब और आज तक सुबोध गुप्ता तक। इन सबका काम अमरावती, नागपुर, औरंगाबाद, सोलापुर- यहाँ पर देखने को नहीं मिलता है। यह हम इस प्रदर्शनी द्वारा लेकर गये। तो उनके लिए एक हुआ है। मतलब जो प्रादेशिक हैं और जो सेण्टर में नहीं हैं, उनको इससे इण्ट्रोड्यूज करना, उनके पास यह लेकर जाना तो यह सवाल है कि सेण्टर और जो प्रादेशिक है, उनका क्या सम्बन्ध होना चाहिए। क्या सम्बन्ध होता है? आज तक क्या हुआ है कि पेरिस सेण्टर है और ये सारा वर्ल्ड आउटसाइड है और सबको जाना है पेरिस। पिकासो को जाना है पेरिस। सबको जाना है पेरिस! उसके बाद हुआ न्यूयॉर्क। तो सेण्टर पर जाकर आपको सीखना है। जो सोलापुर में है उसको जाना है बम्बई या दिल्ली फिर 1990 के बाद इन्टरनेट आया है, सब चेंज हुआ है।

2014 की एक्ज़ीबिशन में सवाल यह था कि आप अगर सोल्हापुर में रहते हो- आप कलाकार हो तो आप कन्टम्परेरी हो या नहीं हो- आपको अगर कन्टम्परेरी समझना है तो आपको बम्बई में जो कुछ हो रहा है या फिर न्यूयॉर्क में हो रहा है, उसी का अनुकरण करना है और आपकी जो कन्टम्परेनिटी- समकालीनता है- वो सोल्हापुर में भी है और वो बम्बई वाली समकालीनता से अलग है। इसको लेकर यह प्रदर्शनी बम्बई में की- एनजीएमए में। ये जो लोग हैं, कोई लातूर में है, कोई सोलापुर में है, कोई औरंगाबाद में है- वो भी समझें कि हम समकालीन हैं, हमारा जीवन समकालीन है। साहित्य में यह तो ऑब्वियस है। कितने पोइट्स हैं, कितने रहते हैं, छोटे-छोटे गाँव में रहते हैं- उनको कोई नहीं कहता कि आप गाँव में रहते हो इसलिये आप समकालीन नहीं हो। आप लेखक सिर्फ अगर बम्बई के बारे में लिखो तो आप समकालीन बनते, यह कोई नहीं कहता, मगर चित्रकारी में यह होता है। यह गलत है।

आप बिल्कुल सही कह रहे थे। यह इफेक्ट होता है। चित्रकारों के मन में भी होता है। कुछ तो प्रेक्टिकल चीज़ें हैं, जैसे आपको एक्ज़ीबिशन करना है, कोई दिखाने वाला चाहिए, कोई खरीदने वाला चाहिए- तो शहर में आना ज़रूरी है। ये सब तो प्रेक्टिकल बातें हैं, मगर कान्सेप्चुअली आपको क्लियर होना चाहिए कि मेरा जीवन क्या है, मेरी भाषा क्या है और मैं अपनी भाषा में आज के जीवन के बारे में बोल सकता हूँ या नहीं।

विनय उपाध्याय : यह जो आप बात कह रहे है, वही हम मध्यप्रदेश के बारे में करें, तो हमारे यहाँ जो गोंड चित्र-परम्परा है वो पिछले पच्चीस-तीस सालों में फल-फूलकर कहाँ से कहाँ पहुँच गयी है। ग्लोबल रीच उसने बनायी है। आज तो पूरा कुनबा ही उनका चित्रकला से जुड़ गया है। जो सिर्फ और सिर्फ कला पर आश्रित है। यही उनकी जीविका का साधन हो गया है। जापान से लेकर तमाम यूरोपियन कण्ट्रीज़ में तो सबसे ज्यादा इसको जाना-पहचाना जाता है। एक तरफ यह भी है कि विश्व स्तर पर हम पहुँचे और एक वो जो आप कह रहे है कि अर्बन के पेंटर्स का दबाव बीच में बनता है। तो शायद कन्टम्परेरी सीन में वहाँ उनकी रीच नही बनती। देखिए, यह भी तो एक सच है।

सुधीर पटवर्धन : बिल्कुल सच है, मगर इसमें इर्म्पोटेण्ट चीज़ है। इसमें इन्टरवेन्शन हुआ है और इन्टरवेन्शन मॉडर्निस्ट इन्टरवेन्शन है। जो स्वामीनाथन ने किया, यह मॉडर्निस्ट इन्टरवेन्शन है और उसके द्वारा जो आदिवासी कला है उसको नया जीवन मिला।

देवीलाल पाटीदार : वो बदला भी है। जो गोंड या भील पेंटर्स है, अभी जो हम काम देख रहे थे वो- यह जो कला की दुनिया है उसके एकॉर्डिंग अपने को थोड़ा-सा रिडिजाइन किये है। समकालीन अपने काम को और जीवन को बनाये है। ऐसे और उदाहरण है। जैसे दूसरे माध्यमों में अगर हम बात करें, तो मान लो थियेटर में रतन थियम है जो मणिपुर में काम करते है, उनकी अपनी जो पारम्परिक रंगभाषा है उसी भाषा में उन्होंने समकालीन थियेटर हमारे देश का, यहाँ तक कि पूरी दुनिया में जिसे कन्टम्परेरी थियेटर कहते है, उसके वो बड़े हस्ताक्षर है। तो सम्भव दोनों तरह से है। मतलब कन्टम्परेरी होने के लिए हम हमारी हर चीज़ छोड़ दें जिसकी ज़रूरत नही है, हम पूरी तरह पारम्परिक रहते हुए भी कन्टम्परेरी अटेन और कन्टम्परेरी सेन्सेबिलिटी को हमारे अपने माध्यम का आधार बना सकते है। यह तो बिल्कुल अलग बात हो गयी।

मेरा व्यक्तिगत असन्तोष है कि यह जो हमारी कन्टम्परेरी आर्ट की गैलेक्सी है, जिसमें हम देश के सारे प्रमुख कलाकारों को रखते है- इनका बहुत क्रिटिकल रिव्यू नही हुआ। जैसे हुसैन हो, कि रज़ा हो, कि सूजा हो- उस पूरे बैच के जितने भी कलाकार है, हमको पच्चीस पेज का भी कोई अच्छा टेक्स्ट उनके काम के बारे में नही मिलता है, जो यह बताये कि ये क्यों श्रेष्ठ है। कोई एक चीज़ होती है न! जैसे हिन्दी कविता में या मराठी कविता में होता है। यह होता है कि अगर कोई बड़ा कवि है तो पाँच ऐसी किताबें है जो उसकी कविता को खोलकर आपको बताती है कि ये इस कारण बड़ा कवि है। ऐसा हम अपनी भारतीय चित्रकला के सन्दर्भ में- खासकर कन्टम्परेरी चित्रकला के सन्दर्भ में- नही कह सकते। कलाकारों ने एक तरह की चुप्पी साध रखी है। मतलब एक दूसरे के काम के बारे में कोई कुछ नही बोलता है। स्वामी जी कभी नही कहेंगे कि हुसैन का काम अच्छा है या बुरा है। जो लोग प्रेक्टिस करते है वो जानते है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है, उन्होंने कुछ नही कहा। जो प्रेक्टिस नही करते है, मान लो प्रयाग शुक्ल है या विनोद भारद्वाज है या बाद के लड़के है, जिन्होंने इन्ही के साथ बैठकर थोड़ा-सा कुछ जानना-समझना-सीखना शुरू किया इण्डियन सीन के बारे में। क्या है कि स्वामी से ही सीख रहे है प्रयाग जी या कृष्ण खन्ना से ही सीख रहे है, तो उनके मन में इनके काम को लेकर ऐसा अहोभाव है कि वो क्रिटिकल होते ही नही है। मतलब जो आर्टिकुलेशन है, जैसे हुसेन का हो या स्वामी का हो या आपका हो- मुझे यह लगता है कि इसका हमारे यहाँ थोड़ा-सा अभाव रहा। मतलब किसी को डेमेज करना है या किसी की पूजा करना है, उसके लिए मै नही कह रहा हूँ। जो नयी जनरेशन है, अगर वो सीखना चाहती है तो उसको वो रास्ता और टेक्स्ट नही मिल रहा है जिससे वो हमारे देश के पहले शीर्ष पचास कलाकार रहे या बीस कलाकार रहे, उनके काम के महत्त्व को समझ सकें या जान सकें। अभी उस महत्त्व को बताने के लिए सिर्फ बाज़ार आता है, कि वो कलाकृति एक करोड़ में बिक रही है इसका मतलब अच्छी है। जो सर्पोटिंग थॉट और टेक्स्ट है वो करीब-करीब न के बराबर है।

सुधीर पटवर्धन : मैं कुछ हद तक सहमत हूँ। एक तो यह सही है कि एक दूसरे के बारे में बोलना बहुत कम होता है और मैं देखता हूँ- उदाहरण के लिए- मराठी साहित्य में काफी होता है, एक दूसरे को फाड़कर खाते हैं, मगर चित्रकार एक दूसरे के बारे में बोलते नहीं हैं।

देवीलाल पाटीदार : हिन्दी लिटरेचर में भी है। जैसे आप म्यूजिशियन की बात कर रहे थे। वह क्या गायेगा, क्या करेगा- पेंटिंग में यह सिरे से गायब है।

सुधीर पटवर्धन : मगर हुआ है। मुझे लगता है कि सीरियस राइटिंग हुई है। जैसे मैं कहूँगा कि गीता कपूर की पहली किताब है, जो सिक्स पेंटर्स की किताब है, उसमें बहुत कड़ा क्रिटिसिज्म भी है। जैसे सूजा का हो और सभी पेंटर्स का हो, उसमें बहुत कड़ा क्रिटिसिज्म भी है- अगर हम ठीक से उसको पढ़ें। मगर बहुत कम लोग हैं जिन्होंने लिखा है और ज्यादातर इंग्लिश में लिखा है, यह भी सही बात है।

मराठी में सोचो तो ऐसी कोई सीरियस क्रिटिसिज्म हुई नहीं है। एक मैग्जीन तीस सालों से चल रही है, मगर उसमें सिर्फ यही नहीं, जैसे गायतोण्डे के बारे में बहुत ज्यादा, जैसे प्रेज़ बेसिक सभी आर्टिकल और फिर कैटलॉग के लिए लोग लिखते हैं, वो क्रेजी होता है। तो क्रिटिसिज्म कम होता है, यह बिल्कुल सही है। मगर आपस में जब बातें होती हैं- व्यक्तिगत- उसमें ज़रूर होती हैं। यह नॉलेज आर्ट वर्ल्ड में है। कौन अच्छा है, कौन बुरा है, कौन क्यों अच्छा नहीं है- यह अगर आप लोगों से मिलो, बात करो। सच्ची आलोचना से महरूम है हमारी चित्रकला।

देवीलाल पाटीदार : व्यक्तिगत बातचीत में कुछ हद तक वो है...

सुधीर पटवर्धन : मगर जो आनी चाहिए, जैसे किताबों में है, यह बहुत कम हुआ है। बिल्कुल सही बात है होना चाहिए। यह बिल्कुल होना चाहिए और उसको रिएसिसमेन्ट होना चाहिए और यह बदलता भी है। जैसे दस साल पहले जो आपको इर्म्पोटेण्ट लगता था, वो शायद आज न लगे। यह भी होना चाहिए। सो रिपीटेडली यह भी होना चाहिए।

विनय उपाध्याय : पर हम पेंटिंग की बात करें जिसमें क्रिटिसिज्म उतना ज्यादा फल-फूल नही पाया है बाकी विधाओं की तुलना में। नयी जनरेशन जो आ रही है, बहुत जल्दबाजी में है, अभ्यास की कमी है, धीरज की कमी है। ठीक परिदृश्य भी नही है चीज़ों को देखने-समझने के उस अर्थ में। इसके पास सिर्फ अपने विज्ञापन की छटपटाहट है। आज बनाया और कल किसी भी नुमाइश में दीवार पर चस्पा होना चाहते है। चित्रकला के भविष्य को लेकर यह कितना नुकसानदेह है?

सुधीर पटवर्धन : नुकसानदेह ज़रूर है, मगर यह सिर्फ चित्रकला की बात नहीं है। मैं आज का डॉक्टर देखता हूँ, आज का एम.बी.ए. देखता हूँ। इनको सिखाया ही यह जाता है। आप कितना जानते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, आप उसको कैसे प्रोजेक्ट करते हैं यह महत्त्वपूर्ण है। आप जो सामने बैठा है उसको कन्वेन्स करो कि आप कुछ हैं। यह तो अपनी सोसायटी की प्रॉब्लम है। सभी क्षेत्रों में है और चित्रकला में भी है। अभी भोपाल में बहुत पेंटिंग लगे हैं। मैं कोचीन से अभी आ रहा हूँ। वहाँ पर ऐसे एक-दो पेंटिंग दिखे, बाकी सब तो वीडियो आर्ट इंस्टालेशन है। तो यह भी क्रिटिसिज्म होता है कि ये सब लोग बाहर जो हो रहा है उसको देखकर नकल कर रहे हैं। इससे मैं सहमत हूँ भी और नहीं भी।

सुधीर पटवर्धन

क्योंकि जैसे आपने कहा, प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप्ज़ ने क्या किया था। वो तो फ्रेम को देखकर, पेरिस में जो हो रहा है वो उसकी एक तरह से- आप कहिये कि- नकल और दूसरी तरफ से आप कहो कि उसको ट्रांसफॉर्म करना, वो लैंग्वेज को लेकर अपने अनुभव को मानना- तो यह भी कोशिश! वीडियो आर्ट वाले जो इंस्टालेशन कर रहे हैं, वो भी कोशिश कर रहे हैं कि अपने अनुभव को नया माध्यम मिला है उसको कैसे। मगर कुछ समय लगता है उसको इंटरनलाईज होने में। एक तो यह है कि कला में ये प्रोसेस ही इर्म्पोटेण्ट है और फाइनल जो आप बनाते हैं, उसका इर्म्पोटेन्स कम हुआ है और इसके कारण आपको अगर कुछ करना है, अगर आपको अच्छा कोई सिरेमिक या कोई मटका बनाना है तो उसकी टेक्निक जानना ज़रूरी है। प्रिंट बनाना है तो उसकी टेक्निक जानना ज़रूरी है। आजकल थोड़ा-सा यह है कि टेक्निक जानना भी ज़रूरी नहीं समझा जा रहा है। कोई भी वीडियो कैमरा किसी के हाथ में रहता है या मेरा कोई कैमरा है, किसी का भी कैमरा है- तो आप फोटोग्राफी क्या है, सिनेमा क्या है, सिनेमा की हिस्ट्री क्या है, यह न जानते हुए भी आप वीडियो बना लेते हो। यह सब जो प्रॉब्लम है।

किसी दस साल में आप ले लो, कितने महान और कितने अच्छे चित्रकार या कलाकार हैं, तो अल्टीमेटली चार-पाँच ही होते हैं। बाकी सब तो होते हैं, सबका योगदान रहता है, मगर जिनका बहुत महत्त्वपूर्ण रहता है वो थोड़े लोगों का ही रहता है। वैसे हमेशा वही रहेगा।

विनय उपाध्याय : पटवर्धन साहब, ये सब कलाकार के पक्ष की बातें थी। कलाकार क्या रच रहा है, क्या सोच रहा है आदि। लेकिन कला किसके लिए हो रही है? यह हम दरअसल हमारे एक सामाजिक संवाद के प्रयोजन से कर रहे है, कि जो कुछ भी हो रहा है, वो दरअसल प्रेक्षक के पास जायेगा। इस दुनिया को देने के लिए हम क्या रच रहे है? यह जो दुनिया है आपके चित्रों के सामने खड़ी है, यह क्या सोच रही है? आप इतनी सारी यात्राएँ करते है, प्रेक्षकों से आपका संवाद भी होता है। यह बिरादरी खामोश भी होती है और कई बार बात भी करती है। क्या सोच रही है दुनिया?

सुधीर पटवर्धन : बहुत सारी चीज़ें हो रही हैं। एक तो यह कि एकदम जो कन्टम्परेरी, जो आजकल के सिटी-बेस्ड कलाकार हैं, उनका मन बहुत ज्यादा सोशल इन्टरवेन्शन करना और सोसायटी तक अपनी कला लेकर जाना- ये बहुत ज्यादा स्ट्रांग है। तो बहुत लोग करते हैं। यह सिर्फ स्टुडियो में बैठकर काम करना नहीं है, उसको बाहर लेकर जाना है। वीटी स्टेशन पर करना है, कहीं समुद्र के ऊपर जहाँ बहुत से लोग आते हैं, उनके सामने यह करना है और यह हो रहा है और यह अच्छी चीज़ है। इनका यह मन है कि सोसायटी के साथ जुड़कर कोई प्रोजेक्ट करें। इसमें डर यह रहता है कि कभी-कभी वो कला रहती है या नहीं रहती, यह सवाल आता है। आप जो करें, आप डाक्युमेन्टेशन कर रहे हों तो आप डाक्युमेन्ट करें कि इस बस्ती के लोग कैसे रहते हैं, उनके पास पानी की समस्या क्या है, ये है, वो है। जैसे सोशियोलॉजी में आप चले जाएँ और उसी का डाक्युमेन्टेशन फिर आप करें। वो तो हुआ तो हुआ, लेकिन फिर वो आर्ट गैलरी में लाकर उसको प्रजेन्ट किया- एज़ एन आर्ट वर्क। यहाँ प्रॉब्लम भी है कि फिर यह आर्ट वर्क कैसे बना? आर्ट बनने के लिए उसको क्या होना चाहिए? मगर अच्छा यह है कि वहाँ जाकर सोसायटी के साथ जुड़ना चाहते हैं।

पेरिस में जो हो रहा है वो उसकी एक तरह से आप कहिये कि नकल और दूसरी तरफ से आप कहो कि उसको ट्रांसफॉर्म करना, वो लैंग्वेज को लेकर अपने अनुभव को मानना- तो यह भी कोशिश! वीडियो आर्ट वाले जो इंस्टालेशन कर रहे है, वो भी कोशिश कर रहे है कि अपने अनुभव को नया माध्यम मिला है उसको कैसे। मगर कुछ समय लगता है उसको इंटरनलाईज होने में। एक तो यह है कि कला में ये प्रोसेस ही इर्म्पोटेण्ट है और फाइनल जो आप बनाते हैं, उसका इर्म्पोटेन्स कम हुआ है और इसके कारण आपको अगर कुछ करना है, अगर आपको अच्छा कोई सिरेमिक या कोई मटका बनाना है तो उसकी टेक्निक जानना ज़रूरी है। प्रिंट बनाना है तो उसकी टेक्निक जानना ज़रूरी है।

देवीलाल पाटीदार : यह अच्छी चीज़ भी है। बीच में बॉम्बे में पब्लिक आर्ट जैसा कुछ जगह पर स्टॉल भी किया कुछ लोगों ने।

सुधीर पटवर्धन : काफी यंग आर्टिस्ट करते हैं। दूसरा यह कि- अभी मैं खुद की फिर से बात करता हूँ- मेरी जो कला है वो इजीली एक्सेसेबल है, जनरली लोगों को समझती है। जो कुछ है, समझती है। यह अच्छा भी है। मगर उसमें प्रॉब्लम यह होती है कि उसके अन्दर जो कहानी के जैसे हैं या लोग हैं, उसमें कुछ हो रहा है, कोई बात कर रहा है- ये जो है, यह लोग समझ जाते हैं। मगर वो पेंटिंग है और पेंटिंग के लिए वो एक तरीके से उसका स्ट्रेक्चर है, उसमें शैप किस तरह से स्ट्रेक्चर किया, उसमें इन्टररिलेशन कैसे हैं- इस तरफ लोग जाते नहीं हैं, फिर उनको लगता है कि मैं समझ गया। जैसे रवि वर्मा की पेंटिंग है। यहाँ राम, लक्ष्मण, सीता है, जहाँ हनुमान हैं। वो ये समझ गये, बस वहाँ पर बन्द कर दिया। उससे आगे नहीं जाते। तो उसको कला की नज़रों से देखना, इसके लिए तो एजुकेशन चाहिए। वो एजुकेशन देना बहुत महत्त्वपूर्ण है। और जैसे फिल्मों में होता है कि अच्छी फिल्म है। वो फिल्म सिर्फ इसलिए अच्छी नहीं है कि उसकी कहानी अच्छी थी। मगर ज्यादातर लोग यह देखते हैं कि कहानी अच्छी थी, गाने अच्छे थे। ऐसा होता है। यह एजुकेशन बचपन से ही अगर स्कूलों में दी जाए, इसमें अगर लोगों को एक नज़रिया दिया जाए कि यह कला का जगत है, कुछ अलग है, उसको समझने के लिए कुछ कोशिश करने की ज़रूरत है। हर एक को!

विनय उपाध्याय : एक होता है खरीददार और एक होता है कला का रसिक। खरीददार प्रायः मिल जाते है और हम यह मानकर चलते है कि हमें अच्छा रसिक भी मिल गया। सच्चाई क्या है पटवर्धन साहब?

सुधीर पटवर्धन : यह यूँ समझो कि 70-80 तक और उसके पहले भी जो रसिक था, वही खरीददार था। कम थे, बहुत ही कम थे, मगर वो खरीदता था क्योंकि उसको उसके साथ लगाव था। उसके मन में यह नहीं था कि मैं दस साल के बाद इसको बेचकर कितना कमाऊँगा। यह 80 में शुरू हुआ। 80 में भी नहीं, 90 में। जैसे पहले ऑक्शन होने लगे। जब खरीददार रसिक था, उसके साथ में इनवेस्टर जुड़ गया। 'जुड़ गया' मतलब एक 'इनवेस्टर' मार्केट में आ गया। फिर यह इनवेस्टर है या सच्चा रसिक है, यह कहना बहुत मुश्किल है।

इनवेस्टर लोग इसको इसलिए लेते हैं कि उनको लगता है कि आज मैं खरीद रहा हूँ दो लाख में तो दो-चार साल के बाद इसकी कीमत चार लाख हो जायेगी, तो कम नहीं है। सात-आठ सालों तक, 2000 से लेकर 2007 तक यह माहौल रहा। 2007 वर्ष में फूट गया। उसके बाद इनवेस्टर हँसते-हँसते चले गये। तो जो रहा, फिर से वो एक रसिक रहा। जो चाहिए तो यह इण्डीविजुअल रसिक इज़ नॉट एनफ टु मेनटेन एन आर्ट वर्ल्ड। जैसे वेस्ट में है कि कार्पोरेट्स है। यह है तो वो इनवेस्ट करते हैं। उसमें सिर्फ इण्डीविजुअल नहीं है। कार्पोरेट्स का यह लगता है कि उनको एक आर्ट कलेक्शन बिल्ड करना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा अभी यहाँ पर हो रहा है, मगर कम है, और होना चाहिए।

देवीलाल पाटीदार : कोच्चि में एक इण्टरनेशनल आर्ट फेस्टिवल चल रहा है। वहाँ पर एकदम नया परिवेश बन गया है। अगर आप ब्रश से पेंटिंग बनाते है तो आप ऑर्थोडॉक पेंटर है। इस तरह का कुछ मामला बना रहे है या बन रहा है। अपने यहाँ 99 प्रतिशत पेंटिंग ही आया है और कोच्चि में सर जहाँ से आप आ रहे है वहाँ पेंटिंग 5 प्रतिशत नही आया है।

सुधीर पटवर्धन : बाकी वो जो मीडिया है, आजकल वो सब इण्टरनेशनली। इण्टरनेशनली आजकल जो देखा, अभी हम यूरोप गये वहाँ भी देखा। पेंटिंग बहुत कम देखने को मिलती है। यह नहीं कि पेंटिंग नहीं हो रही है, पेंटिंग हो रही है, मगर जिसको इन्टरनेशनल एक्जीबिशन में प्रोजेक्ट किया जाता है वो ज्यादा न्यू मीडिया का काम है। कान्सेप्चुअल काम है। यह नहीं कि वो खराब है, मगर वो अलग है और एक ज़माना ऐसा था कि आर्ट हिस्ट्री को यह मानते थे कि इसके बाद यह आता है, इसके बाद यह आता है- जो मूवमेन्ट्स हुए। तो एक एकेडमिक था, उसके बाद इम्प्रेशनिज्म आया, फिर एक्सप्रेशनिज्म आया, फिर क्यूबिज्म आया। तो उसमें एक ऐसे स्टेपवाइज़ प्रोग्रेस आया, ऐसे मानते थे।

आज ऐसा है कि आर्ट में प्रोगेज़्स का आइडिया ठीक नहीं है। जो कुछ आज हो रहा है वो अच्छा है या बुरा है, यही इर्म्पोटेण्ट है। वो नया है या पुराना हो गया है। आर्ट में कुछ पुराना होता ही नहीं है, यह लोग समझते हैं, मगर आज जब प्रोजेक्ट होता है कन्टम्परेरी आर्ट, तो अभी भी जो कटिंग-ऐज है, जो कल नहीं हुआ, मगर आज हुआ। उसको इर्म्पोटेन्स दिया जाता है। वो भी ठीक है, मगर बाकी का भी चले।

विनय उपाध्याय : पटवर्धन जी, अभी कुछ देर पहले हम लोग आईसेक्ट स्टुडियो में बहुत ही ट्रेडिशनल किस्म का म्यूज़िक सुन रहे थे। ब्रज और मैनपुरी की बोली में कुछ पारम्परिक भजन। आप जिस तन्मयता के साथ यह संगीत सुन रहे थे, तो मुझे वहाँ से इंम्प्रेशन मिला कि मै यह सवाल आपसे ज़रूर पूछूँ। यह जो विभिन्न कला माध्यम है। एक्सप्रेशन के माध्यम की बात करें तो उसमें साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि किसी भी अनुशासन में सृजन हो, जीवन और सोच को गहरा तो बनाते ही है। इसकी आपसदारी को लेकर आपका क्या कहना है?

सुधीर पटवर्धन : बहुत ही ज्यादा। मुझे लगता है कि बाकी कलाओं का अनुभव बहुत मायने रखता है। डायरेक्टली उसका कितना इनफ्लुएन्स आता है, यह तो कहना मुश्किल है, मगर जो एक सेन्सेबिलिटी बनती है अपनी- इनको अनुभव करने की सेन्सेबिलिटी- अगर मैं डांस शान्ता के साथ रहकर देखता रहा, तो कोई मूवमेन्ट है या अगर रास्ते में कोई चल रहा है, उसको एक नज़र देख लूँ तो यह जो इनफ्लुएन्स है- किसी ने हाथ आगे किया, किसी ने नमस्ते किया तो किस अन्दाज़ से वो हुआ या कोई गायक है तो उसके मुख के ऊपर क्या भाव है या म्यूज़िक में लय है या पेंटिंग का स्ट्रेक्चर हो रहा है और एक लाइन यहाँ भी बनी, एक लाइन यहाँ बनी, यह कौन-सी लय बन रही है या जैसे अली अकबर में एक जो पैन है- खिंचाव है- वो कैसे रंगों में आ सकता है- यह सब तो मन में चलता रहता है। मतलब उस अनुभव से तो और ज्यादा प्रभाव होता है और लेखकों से, कविता से भी अलग विचार। विचार भी पेंटिंग में होते हैं। यह सब- मुझे लगता है- इसी से पूरा, जैसा आपने कहा कि जीवन अनुभव बनता है, कला-अनुभव और जीवनानुभव साथ में बनता है।

विनय उपाध्याय : एक सवाल चित्रकार होने के साथ-साथ एक व्यक्ति सुधीर पटवर्धन से भी बावस्ता है। कला में लीन रहते हुए जीवन के दीगर मोर्चों से कैसा सामंजस्य बना पाते है?

सुधीर पटवर्धन : उसमें इनका मेरी पत्नी शांताजी का बड़ा योगदान है। नहीं तो, नहीं हो सकता था। यह सच है। जैसे कलाकार कुछ हटकर होता है, उसका मन कुछ हटकर होता है, संसार के उठकर होता है। यह सब चीज़ें सच हैं और होना भी चाहिए, मगर यह भी नहीं कि उसकी जो रिस्पॉन्सिबिलिटीज़ हैं और जो जीना है उसको नकारना भी नहीं चाहिए। मतलब वो पर्सनल बात है।

एक तो स्वभाव से ऐसे कोई वाइल्ड हैं नहीं हम तो सँभलकर जीते है और- पहले जैसे मैंने कहा कि- मैं लकी रहा कि एक डॉक्टरी का पेशा था तो खाने-पीने का सँभल गया था। ऐसी प्रॉब्लम नहीं थी। कॉनफ्लिक्ट जब आता है तो एक कलाकार अल्टीमेटली खुद को एक्सपोज़ करता है, उसको नंगा होना पड़ता है और ये नंगे होने में प्रॉब्लम यह आती है कि वह अपने साथ दूसरों को भी नंगा करता है और जो एक नॉर्मल जीवन है उसमें कानफ्लिक्ट आ सकती है- अगर कला को देखने का नज़रिया और काफी कलाकारों के साथ यह हुआ है कि अगर ये लाइन क्रॉस की जाए- क्रॉस होती है या लोग उसको ठीक से नहीं समझते- तो वो उसको गलत नज़र से देख सकते हैं। म्यूज़िशियन्स को भी मैंने सुना है। म्यूज़िशियन जब बैठते हैं तो उनको यह साहस होना चाहिए कि मैं

विनय उपाध्याय : भारत भवन आप आए और समकालीन कला द्वैवार्षिकी का शुभारम्भ आपने किया। जो कुछ भी काम गैलरी में इस समय लगाया गया है, जो चस्पा है, उसको देखकर आपके मन में क्या इम्प्रेशन्स आते है?

सुधीर पटवर्धन : यहाँ पर एक चीज़ यह है कि ज्यादातर सब युवा कलाकार हैं, जो चालीस के अन्दर के कलाकार हैं। यह समझ में आया कि यह जो आजकल के और कल के कलाकार हैं, इसमें ज्यादा हैं और बहुत सारे काम बहुत हाई क्वालिटी का काम यहाँ पर है और उसकी ट्रेडीशन काफी भारत भवन में भी है और भारत भवन भेजने की ट्रेडीशन है कि सारे देश में भारत भवन का नाम है और इससे एक उम्मीद भी है लोगों को यहाँ दिखाने में उनको गौरव का अनुभव होता है। इसलिए अच्छे-अच्छे लोग, सारे भारत के लोग, युवा कलाकार यहाँ एक्जीबिट होना इम्पॉटेण्ट समझते हैं। इसलिए बहुत सारे काम बहुत अच्छे हैं। एक ध्यान में आया, मैं कोच्चि से होकर आया हूँ, वहाँ पर आठ दिन रहा और वहाँ से डायरेक्टली यहाँ आया। यहाँ पर इतने पेंटिंग्स देखने को मिले। स्कल्पचर्स, पेंटिंग्स, सिरेमिक- यह जो ट्रेडीशनल समझो, अभी कन्टम्परेरी आर्ट सीन भी यह ट्रेडीशन मीडियम बनी। बहुत अच्छा लगा, क्योंकि मैं पेंटर हूँ तो- हाँ, पेंटिंग इज़ नॉट येट डाइड।

खुद को नंगा करके गाऊँ। अगर सिर्फ पढ़ा हुआ गाया और आप कुछ दे नहीं सके- यह तो कायम का स्ट्रगल है। यह तो कोई ऐसे नहीं कि- हाँ, जम गया। हर साँस के साथ उसको जमाना है।

विनय उपाध्याय : यूँ तो आदरवश कई चित्रकारों का आपने ज़िक्र किया अपनी बातचीत में। फिर भी कही कोई एक प्रियता हमारी किसी के पास ठहर ही जाती है। आप अपने समय का एक बड़ा चित्रकार किसे मानते है?

सुधीर पटवर्धन : यह कहना मुश्किल है वैसे, मगर मैं दो-चार नाम लेता हूँ। अकबर पदमसी जो सीनियर हैं, उनको मैं बहुत मानता हूँ। उनकी सोच, माध्यम के बारे में सोच, चित्रकार होने के बारे में सोच। चित्रकार होने का क्या अर्थ है, इसके बारे में सोच और माध्यम- मतलब रंगों के बारे में यह सब और बाहर से क्या ले सकते हैं, दूसरा ट्रेडीशन से हम क्या ले सकते हैं, उसको कैसे ट्रांसफॉर्म हम कर सकते हैं, यह एक चीज़ है।

भूपेन खख्खर को मैं बहुत चाहता हूँ। उनका काम बहुत इर्म्पोटेण्ट लगता है। मतलब यह है कि एक समय पर उनका इर्म्पोटेन्स इसलिए भी आया कि वह गे थे और होमो-सेक्सुअल होने के कारण उनको बहुत प्रोजेक्ट किया गया। मगर वह एज़ ए पेंटर बहुत अच्छे हैं, यह मैं मानता हूँ और उन्होंने जो किया है, उनका ड्राइंग करने का तरीका मैंने देखा है, उनके साथ रहा हूँ और उनके पास सीखने के लिए बहुत कुछ था।

गिव पटेल मेरे बहुत ही करीब के दोस्त हैं, उनका काम मैं पहले से देखते आया हूँ। उनके बारे में यह कहना ज़रूरी है कि हमेशा वो एक सस्पीशन की नज़र से देखते हैं। जब मैं अपना काम दिखाता हूँ तो वह इजीली मान नहीं जाएँगे, कि इसके पीछे क्या है। इसलिए हमेशा एक क्रिटिकल- नज़र से उन्होंने देखा है। दैट हैज बीन व्हैरी यूजफुल। बाकी भी हैं।

विनय उपाध्याय : भारत भवन की 35वीं सालगिरह के शुभारम्भ समारोह में कलाकृतियों के रखरखाव को लेकर बात हुई थी- कि पुरानी कलाकृतियाँ अपना रंग खो रही है। यह प्रॉब्लम केवल भारत भवन की नही है, यह तो समूचे विश्व की हो सकती है क्या सीन है और क्या किया जाना चाहिए?

सुधीर पटवर्धन : कोई भी बड़ा कलेक्शन हो और भारत भवन का कलेक्शन तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसलिए कि एक आर्टिस्ट ने उसको शुरू किया, एक विज़न था और उसमें जो बाकी के आर्टिस्ट थे, उन्होंने ये सब एक पीरियड में कलेक्शन किया। तो उस पीरियड में रिप्रजेन्ट करने वाला यह इण्डिया का सबसे ज्यादा इर्म्पोटेण्ट कलेक्शन हुआ। अभी जैसे आप दिल्ली में एन.जी.ए. में देखो या बम्बई में एन.जी.एम.ए. में देखो, या प्रिंस ऑफ वॉल जिसे अब म्यूज़ियम देखो, छत्रपति शिवाजी म्यूज़ियम कहते हैं। हर जगह पर एक कन्जर्वेशन की

सुधीर पटवर्धन

विनय उपाध्याय : आपके किसी चित्र की चर्चा कीजिये, जिसमें कि आपने यह सब करते हुए बहुत शिद्दत से महसूसा।

सुधीर पटवर्धन : एक चित्र आता है मन में, उसका नाम है- 'द एब्स्ट्रेक्शनिस्ट'। इसे मैं डिस्क्राइब करता हूँ- एक आदमी एक कुर्सी पर, सोफा जैसी कुर्सी पर राइट साइड में सिर्फ शॉर्ट्स पहनकर बैठे हैं और रूम के दूसरी तरफ, चित्र के दूसरी तरफ एक एब्स्ट्रेक्ट ड्राइंग बनी है, सिर्फ रेशों की और पीछे बड़ी खिड़की है और खिड़की के बाहर कुछ बिल्डिंग्स हैं और रूम के अन्दर बुक-केस है और ज़मीन पर कुछ, थोड़ा-सा, जैसे सुबह अगर उठते हैं, उसके बाद में जो पलंग के ऊपर जैसे डिस्टर्ब्ड और चादर वगैरह पड़ी है, ऐसे है।

मेरे मन में ये जो बैठे हैं वो हैं शंकर पलशीकर, जो डीन थे जे.जे. के और वे एब्स्ट्रेक्शनिस्ट ही थे और जो बिल्डिंग्स मैंने बनायी हैं वो ज्यॉमैट्रिक एब्स्ट्रेक्शन ही है, मगर बिल्डिंग्स हैं। दिखने में तो बिल्डिंग्स हैं मगर उसका स्ट्रेक्चर जो है वो एब्स्ट्रेक्ट ही है और उसका प्रतिबिम्ब बुक-केस के ऊपर है। वो और एक स्टेज एब्स्ट्रेक्ट होता है, जैसे डेबिन क्रॉन जो केलिफोर्निया के आर्टिस्ट थे, उनकी जैसी पेंटिंग होती है, उस तरह की पेंटिंग उसमें बनी- सिर्फ रिफ्लेक्शन में। मेरे मन में जो था कि रियलिज्म और एब्स्ट्रेक्शन दो अलग चीज़ नहीं हैं। रियलिज्म का बेस एब्स्ट्रेक्शन ही है। अगर पेंटिंग अच्छी है- जो एब्स्ट्रेक्ट मूल्य है उसको छोड़कर तो रियलिस्ट पेंटिंग बन नहीं सकती। अगर आप रेम्ब्रा देखो या आप रूबेन्स देखो या कोई भी ग्रेट रियलिस्ट पेंटिंग को देखो, तो वो एब्स्ट्रेक्ट मूल्य उसके अन्दर हैं, इसलिए वो अच्छी पेंटिंग हैं।

यह सोच कि एब्स्ट्रेक्शनिस्ट है, मगर यह रियलिज्म जो है वो उसी के ऊपर बेस्ड है और एब्स्ट्रेक्शन भी रियलिज्म के बिना हो ही नहीं सकता। अनुभव जो है, वो अनुभव तो हमें जीवन से आता है, रियलिटी में आता है और उस रियलिटी को लेकर हम अनुभव को स्ट्रेक्चर करते हैं। ये सारी बातें उस पेंटिंग में मालूम नहीं इमेज कैसे हुआ। आपको कितनी मैं समझा सकूँ, मगर ये बाते हैं।

टीम कायम है, काम करती है और अलग-अलग तरीके के जो कलेक्शन में हैं, जैसे पेपर वर्क्स हो, वुड वर्क्स हो, कोई भी और पेंटिंग्स हो- हर चीज़ को कन्जर्वेशन की ज़रूरत होती है, अलग-अलग तरीके से होती है। वेस्ट में तो ज्यादा प्रॉब्लम नहीं होती। यह ह्यूमेडिटी कण्ट्रोल, टेम्परेचर कण्ट्रोल, ट्वेन्टी फॉर ओर्स कण्ट्रोल- ये सब म्यूज़ियम में होता है। यह यहाँ सम्भव नहीं है। मगर जो चीज़ हर दस साल में, कुछ तो उसमें डिटेरियोरेशन होता है मटेरियल में- तो उसको समझना और उसको रिस्टोर करना, उसको फिर से स्टेबलाइज़ करना, यह होना चाहिए। हर म्यूज़ियम में एक कन्जर्वेशन का डिपार्टमेन्ट होना ही चाहिए और आजकल यह माना गया है, हर बड़े म्यूज़ियम में यह होता है। अपने यहाँ यह है कि लखनऊ की एक सेण्ट्रल एजेन्सी है जो सारे गवर्नमेन्ट म्यूज़ियम्स को और बहुत ज्यादा प्रेशर है, ओवियसली इतने सारे म्यूजियम्स हैं उनके पास।

अब स्टोन हो तो इतनी प्रॉब्लम नहीं है, मगर मिनिएचर्स है, पेंटिंग्स है, पेपर वर्क्स है, टेक्सटाइल के कलेक्शन इतने हैं! अभी अहमदाबाद में कलेक्शन है तो उसके कन्जर्वेशन के लिए लोग कितना इर्म्पोटेन्स देते हैं। अहमदाबाद के जो म्यूज़ियम हैं तो बहुत ज़रूरी है और हम लोग जानते हैं कि हमारे इण्डिया में जो क्लाईमेट है, उसकी वजह से हम काफी कुछ खो चुके हैं। यह तो हिस्ट्री हमको सिखाती है। जो कुछ यूरोप में बचा है, हज़ार साल हुए, दो हज़ार साल हुए, वो बच गया, मगर यहाँ नहीं बच सकता, क्योंकि यहाँ का जो क्लाइमेट है, इसलिए हमको और इर्म्पोटेन्स देकर ये कन्जर्वेशन को बहुत सीरियसली लेना चाहिए। आजकल बहुत इंस्टीट्यूट हैं जो सिखाते हैं, तो हर इंस्टीट्यूट होना बहुत इर्म्पोटेण्ट है।

विनय उपाध्याय : हर कस्बे में, गाँव में कलाकृतियाँ एक्जीबिट हों, लेकिन उसके लिए माकूल अवसर की भी ज़रूरत होती है, उस तरह के स्पेस की ज़रूरत होती है। भारत में आर्ट गैलरी को लेकर बहुत अच्छी स्थिति नही है। इसको लेकर आपको नही लगता कि कहीं उत्साह की कोई कमी है? क्या सरकारों के पास ऐसा कोई प्रस्ताव नही जाता कि वो हर शहर में अच्छी आर्ट गैलरी ज़रूर बनाये?

सुधीर पटवर्धन : ऐसा है कि गवर्नमेन्ट जो गैलरीज़ खोलते हैं, अभी म्युनिसिपल गैलरीज़ काफी जगह पर देखी हैं, चलाने वालों को इन्ट्रेस्ट नहीं होता, सच कहूँ। गवर्नमेन्ट सर्वेन्ट्स है तो कोई एक टाइम पर कोई कमिश्नर आ गया जिसको आर्ट में इन्ट्रेस्ट है तो उसने गैलरी खोल दी, फिर वह चला गया तीन साल के बाद, फिर कोई दूसरा आया, उसको रास्तों में ज्यादा इन्ट्रेस्ट है तो रास्ते अच्छे बना दिये, लेकिन गैलरी रह गयी- यह होता है। प्राइवेट इनिशिएटिव से जब बनती है, वो होना चाहिए। अभी इसमें प्रॉब्लम है। प्राइवेट इंस्टीटयूट, अगर वो कॉमर्शियली वायवल है, तभी वो चलेगी, वरना नहीं चलेगी। तो इसका बजट चाहिए। अभी प्रॉब्लम यह है कि अपने यहाँ ऐसा मल्टीपल स्तर का आर्ट मार्केट नहीं है। अपने यहाँ एक ऊपर का आर्ट मार्केट है, जो दस बड़े कलाकार हैं उनकी कला बिकती है, करोड़ों में जाती है। बाकी कुछ नहीं बिकता। यह स्थिति है। मगर अभी हर एक होटल में अच्छी कला लगाना अच्छा होगा। प्रिंट्स लगते हैं, पर अगर ऑरिजनल काम लगें तो अच्छा होगा। कोई अच्छा लैण्डस्कैपिस्ट है, कोई अच्छी ट्रेडीशनल कला बनाता है तो उसके काम लगने चाहिए। पॉसिबिलटीज हैं।

जीवन संगिनी के साथ पटवर्धन

मैं इसलिए कह रहा हूँ कि आजकल छोटे शहर बहुत बढ़ गए, वहाँ पर इण्डस्ट्रीज बढ़ रही हैं और वहाँ पर होटल्स बनते हैं- और लोगों के पास पैसा भी है। ऐसा नहीं है कि पैसा नहीं है। मगर इस तरफ से उसको डायवर्ट करना और इसको एक मल्टीलेबल सिस्टम बनाना, कि आर्टिस्ट काम दे उनको और वो बिक सकें। ऐसे मल्टीपल लेबल के हो सकते हैं। अभी मुझे लगता है, यह दिख नहीं रहा है। आहिस्ता-आहिस्ता कहीं-कहीं दिखता है, जैसे पूना में कहीं। तो मुझे कुछ जगह पर ऐसा लगता है कि कुछ सिरेमिक्स के बारे में एक गैलरी है, जो सिर्फ सिरेमिक्स में डील करती है। वो कहते हैं कि हमारे पास काफी अच्छे क्लाइन्ट्स आते हैं, अच्छी-अच्छी सिरेमिक्स लेते हैं। तो होगा, मगर इसको और बढ़ावा देना चाहिए।

विनय उपाध्याय : यह जो हमारी सरकारों के कला संस्थान है, राष्ट्रीय ललित अकादमी की बात करें, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र है या और भी बहुत सारे संस्थान। इन लोगों का रोल आपको कैसा लगता है? इनसे क्या अपेक्षा बनती है?

सुधीर पटवर्धन : अपेक्षा यह है कि यह ज्यादा आउटवर्ड हो, कि अभी कैसे हैं, कि उनका ऑफिस है, एक बिल्डिंग है, एक सेण्टर है, वहाँ पर कुछ काम हो रहा है, कुछ डाक्युमेन्टेशन हो रहा है, कुछ पब्लिकेशन हो रहा है- मगर ये लोग बाहर जाकर कुछ नहीं करेंगे। इनको यह ज़रूरी है कि अपने पास जो कुछ है उसको लोगों तक पहुँचाये। अभी किताबें छपती हैं, पड़ी रहती हैं स्टोर में, रिप्रोडक्शन छापते हैं, वो पड़े रहते हैं। अगर हैं तो उनको लेकर कौन जायेगा? वो कहते हैं आपको चाहिए तो आप लेकर जाओ, खरीदकर लेकर जाओ। तो ये नहीं। इनको जाना है, इनका काम बनता है। नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट है, इसका काम बनता है कि वो अलग- उसके पास कुछ फण्ड है, यह तो मैं नहीं जानता। मगर इंस्टीट्यूशन का काम हमारे यहाँ हुआ नहीं है जो समाज में जाए- कला का। जैसे बाकी के क्षेत्रों में भी मुझे लगता है कि नहीं हुआ। शायद हेल्थ के बारे में कुछ हुआ है, वो ज़रूरी है। साइंस के बारे में, साइंस एजुकेशन के बारे में जैसे आज हम देख रहे हैं कि प्राइवेट इंस्टीट्यूट से इतना हो रहा है। एक्चुअली ये सब गवर्नमेन्ट इनिशिएटिव से होना चाहिए। यह नहीं होता है।

फिर एक ऑटोनॉमी का प्रश्न भी आता है। अगर कण्ट्रोल हो तो उसमें ऑटोनॉमी देकर आप उसको कितना अनुदान दें, फिर आपको कॉन्फीडेन्स होना चाहिए कि ऑटोनॉमस बॉडी चले और अच्छी तरह से चले। नहीं तो, फिर उसमें हर बार कुछ इन्टरफीरियन्स होता है। ये सब चीज़ें हैं। ये आसान नहीं है।

देवीलाल पाटीदार : जितना बड़ा हमारा देश है, उसके आधार पर कल्चर में जो गवर्नमेन्ट सेक्टर है, वो कम है। बहुत ज्यादा अर्ज है इंस्टीट्यूशन्स की। मतलब जैसे पूरे देश में अगर 46 राज्य है तो गवर्मेन्ट सेक्टर में 46 आर्ट गैलरी भी नही है। इस सबसे उसका कोई बहुत सीधा सम्बन्ध नही है, पर जितनी आबादी और जितने लोग आर्ट से जुड़े है, और बीच में जो थोड़ा-सा ग्लैमर और थोड़ा कला बाज़ार और यह सब होने से वो नम्बर काफी बढ़ गया है। मतलब विज़ुअल आर्ट के साथ जो नम्बर है लोगों का, तो उसके एकॉर्डिंग हमारे पास कोई इंफ्रास्ट्रक्चर नही है। पैसे के कारण जो प्राइवेट आर्ट गैलरी वाले कुछ आये थे, भाग गये वापिस।

अब आखिर में कुछ गुरुमंत्र जैसा, जो बच्चों के काम आए। अभी आपने बताया न, कि जीवन भी है, परिवार भी है, प्रोफेशन भी है आपका मेडिकल वाला- सभी चीज़ों के साथ और फिर काम के जो गुण है जो किसी चित्र को चित्र बनाते है, उनको कैसे अपने जीवन से या अपने काम से या एक तरह की...

सुधीर पटवर्धन : एक आता है मन में, कि यह सवाल पूछते रहना चाहिए कि वो क्या चीज़ है जो सिर्फ कला दे सकती है? हर कलाकार को, खुद को यह पूछना चाहिए कि क्या मैं कर रहा हूँ, यह सिर्फ कला दे सकती है? और फिर इस सवाल के अन्दर से आप कितना इनक्लुसिव हो सकते हैं कि मुझे यह भी करना है, वो भी करना है, समाज से भी जुड़ना है और अगर कोई इनजस्टिस है तो उसके अंगेस्ट मुझे आवाज़ भी उठानी है। अगर तुमको लगता है कि यह भी होना चाहिए- मगर ये सब प्रश्न ऐसे होने चाहिए कि यह सिर्फ से ही हो सकता है, तभी उसका इनफ्लुएन्स या इनफ्लुएन्स से ज्यादा वो एक कलाकृति के प्रजेन्स पर टिका रहेगा और उसमें यह सब चीज़ें आ सकती हैं।

रंग सप्तक

अशोक भौमिक

हमें अच्छा लगे या न लगे, लेकिन बदलते समय के साथ-साथ नए नाटक का रूप और आकार, मुहावरा और मिज़ाज तो बदलेगा ही। उसकी संरचना और प्रस्तुति तथा शैली भी निरन्तर बदल रही है। यदि नाटक और रंगमंच को ज़िन्दा रहना है, तो इसे समय के अनुरूप बदलना भी होगा और निरन्तर नए प्रयोग भी करने ही होंगे।

नाटक की नई कौंध

जयदेव तनेजा

हिन्दी नाटककारों की प्रजाति खत्म हो चुकी है। नाटककार को रंगकर्म से 'अलविदा' कहा जा चुका है। मौलिक हिन्दी नाट्य-लेखन का क्षेत्र बिल्कुल बंजर और उजाड़ पड़ा है। नए और अच्छे मंचन-योग्य नाटकों के अभाव के कारण ही रंगकर्मियों को पुराने एवं बहुमंचित मौलिक अथवा अन्य भाषाओं के देशी-विदेशी अनुवादों को बार-बार अभिमंचित करना पड़ता है। यही नहीं, कहानियों-उपन्यासों के रूपान्तरण या उन्हें ज्यों-का-त्यों मंच पर उतारने के साथ-साथ जीवनी, संस्मरण, व्यंग्य-लेख, पत्र, डायरी और कविता जैसी विधाओं को मंच पर प्रस्तुत करने का प्रमुख कारण भी नए मौलिक रंग-नाटकों का अभाव ही है- पिछले लगभग पचास वर्षों से छाती पीट-पीटकर और दहाड़ें मार-मारकर हम ये सियापा लगातार करते रहे हैं। फिर भी, सच ये है कि हर चार-पाँच वर्ष के अन्तराल से कोई-न-कोई प्रबल सम्भावनापूर्ण नया नाटककार या नाटक रंगमंच पर चर्चित और प्रशंसित होकर हमारे इस सायास खड़े किए गए भ्रम को तोड़कर अनायास चुनौती खड़ी कर देता है।

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में नई पीढ़ी के प्रतिभावान नाटककार-रंगकर्मी उभर रहे हैं। अपनी-अपनी भाषाओं में महत्वपूर्ण रंगमंचीय नए प्रयोग करके ये इक्कीसवीं सदी के नाट्यकर्म के प्रति उम्मीद और उत्साह जगाते हैं। परन्तु इसकी सही एवं प्रामाणिक जानकारी तब तक नहीं मिल पाती जब तक ये रचनाएँ हिन्दी या अंग्रेजी में अनूदित होकर प्रकाशित या प्रदर्शित नहीं हो जातीं। फिर भी, उनकी अपनी भाषाओं में किए गए प्रभावशाली नाट्य-प्रदर्शनों के माध्यम से भी राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सम्भावनाओं को रेखांकित करने में किसी हद तक सफल हो ही जाते हैं। इनसे साक्षात्कार का सबसे सशक्त जरिया, अखिल भारतीय स्तर पर होने वाले सरकारी, गैर-सरकारी नाट्योत्सव होते हैं।

मराठी के ऐसे ही एक नाटककार-निर्देशक हैं- मोहित टाकलकर। थिएटर के जुनून में एक पाँच सितारा होटल की बड़ी नौकरी छोड़कर पूना की पुरानी एवं प्रतिष्ठित नाट्य-संस्था 'प्रोग्रेसिव ड्रमेटिक एसोसिएशन' से जुड़ गए। फिल्मों में पटकथा लेखन और सम्पादन करने के साथ-साथ सन् 2003 में अपने कुछ कलाकार मित्रों के साथ मिलकर इन्होंने 'आसक्त' (पूना) नामक संस्था की स्थापना की। तब से अब तक ये 'नानेफक', 'छोटीआश्या सुतीत', 'फ्रिजमद्ध्ये थेव्लेला प्रेम', 'तू', 'मात्र रात्र', 'चर्से कोटि बिसर भोले' तथा एक हिन्दी नाट्य-रूपान्तर 'बेड के नीचे रहने वाली' जैसे प्रशंसनीय नाट्य-प्रदर्शन कर चुके हैं। अनेक समारोहों एवं प्रतियोगिताओं में मोहित टाकलकर को सम्मानित और पुरस्कृत भी किया जा चुका है। प्रकाश रमाकान्त वजरीकर मराठी और कोंकणी दोनों भाषाओं के चर्चित युवा नाटककार हैं। इन्होंने मराठी में 'इथे इथे पाणी', 'बुरूज ढासलताना', 'जूनी काणी' तथा कोंकणी में 'आनी एक बुटो फुल्लो', 'घट्टाघ कोणांचे', 'काणीतशी जुनीवपूण', 'साद अन्तर्मनाचो' और 'आणी एक प्रस्न पर्व' - ये सभी नाटक मंच पर सफलतापूर्वक खेले जा चुके हैं। श्रेष्ठ नाट्य-लेखन के लिए संगीत नाटक अकादमी के 'बिस्मिल्ला खाँ युवा

पुरस्कार' से सम्मानित मनस्विनी लता रवीन्द्र ने मराठी में 'सिगारेट्स', 'अलविदा' और 'माझ्या वारणीचमं खुरंखुरं' -ये तीनों नाटक युवाओं की समस्याओं एवं उनके बदलते सरोकारों को बड़ी सच्चाई और ईमानदारी से प्रस्तुत किए हैं। इन्हें मुम्बई की नाट्य-संस्था 'ललित' ने सतीश के निर्देशन में अभिमंचित किया है। 'अलविदा' के लिए इन्हें 'मामा वरेरकर' पुरस्कार से अलंकृत किया जा चुका है। यही पुरस्कार 'सिगारेट्स' के निर्देशन के लिए सतीश अनवर को भी दिया जा चुका है। इन नाटकों के सौ से अधिक चर्चित प्रदर्शन हो चुके हैं।

गुजरात के भीषण दंगों पर आधारित सौम्य जोशी के गुजराती नाटक 'दोस्त, चोकस अहीं, नगर वस्तुन हतुम' स्वयं सौम्य जोशी के ही निर्देशन में प्रदर्शित किया गया है। सौम्य जोशी नाटककार, निर्देशक और अभिनेता भी हैं। यह इनके अदम्य साहस का ही प्रमाण है कि गुजरात में रहकर, गुजराती भाषा में और गुजरात के दर्शकों के सामने ये गुजरात के बर्बर नर-संहार को बेपर्दा कर सके।

हिन्दी में युवा पीढ़ी के नाटककारों में योगेश त्रिपाठी के 'हस्ताक्षर', 'मुझे अमृता चाहिए'; श्रीकान्त किशोर के 'अरण्य कथा', 'चाँद जमीन का टुकड़ा और मैं', 'हरसिंगार', 'मंगल डॉट कॉम'; जयवर्द्धन के 'हाय! हैंडसम', 'अर्जेंट मीटिंग'; विभा रानी के 'आओ तनिक प्यार करें', 'अगले जनम मोहे बिटिया ना कीजो'; आसिफ अली के 'काफ्का', 'बादर मन देखो सपना' और 'शाहजहाँपुर की शहजादी' जैसे न मालूम कितने ऐसे नाटककार हैं जो तमाम भारतीय भाषाओं में अपनी-अपनी प्रतिभा और मौलिक रंग-दृष्टि के साथ कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हैं। यहाँ हम केवल चार ऐसे रचनाकारों की अपेक्षाकृत अधिक चर्चा कर रहे हैं, नाटककार के रूप में जिनका उदय सन् 2000 के बाद हुआ है।

ये उपलब्धिपूर्ण सम्भावना वाले ऐसे नाटककार हैं जो पिछले लगभग नौ-दस वर्षों में हमारे सामने आए हैं और जिनके लगभग सभी नाटक न केवल मंचित होकर चर्चित ही हुए हैं, बल्कि कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नाट्य-समारोहों में ससम्मान आमंत्रित भी किए गए हैं और प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत एवं सम्मानित भी हुए हैं। परन्तु हम हिन्दी वालों का यह दुर्भाग्य है कि स्वयं अपनी रचनात्मक प्रतिभाओं को पहचानने के बजाय दूसरों द्वारा स्वीकृति मिलने के बाद ही उस ओर ध्यान देते हैं।

इक्कीसवीं सदी की नई पीढ़ी के अनेक नाटककारों की नई कृतियों के रंग-शिल्प पर मीडिया का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। तीन अंकीय नाटकों की पद्धति और संकलन-त्रय की परम्परा समाप्तप्राय हो गई है और टी.वी. धारावाहिकों की पद्धति पर चौदह-पन्द्रह लगातार दृश्यों वाले नाटक ज़्यादा लिखे जा रहे हैं। मंच पर स्क्रीन का प्रयोग बढ़ता जा रहा है और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अनेक युक्तियाँ नाटकों में इस्तेमाल की जाने लगी हैं। छायालोक का महत्व और समय की निरन्तरता का बोध नए नाटकों में स्पष्ट दिखाई देने लगा है। नाटकों की गति और लय आधुनिक संगीत की तरह तीव्र होती जा रही है। एक दृश्य का दूसरे में विलयन आम बात हो गई है। यथार्थवादी स्थूल दृश्य-बन्ध की अपेक्षा प्रतीकात्मक, सांकेतिक अथवा अमूर्त दृश्य-संयोजन पर बल है। विज्ञापन-लेखन का प्रभाव संवादों की चुटीली भाषा, शब्दों की मितव्ययिता, बिम्बों की प्रधानता और वाग्विदग्धता के रूप में दिखाई पड़ता है। मल्टी-मीडिया का असर भी नए नाटककारों पर पड़ रहा है।

यहाँ हम ऐसे बहुसंख्य युवा नाटककारों, रंगकर्मियों में से केवल मीरा कान्त, नादिरा ज़हीर बब्बर, शाहिद अनवर और मानव कौल के नाट्य-कर्म की समीक्षा कर रहे हैं।

यह टिप्पणी मेरी 2010 में छपी पुस्तक ''आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श'' के अंतिम अध्याय ''इक्कीसवीं सदी के नए नाटककार'' का परिचयात्मक अंश है। आज 2017 तक आते-आते कम-से-कम दर्जन भर नए नाटककार हिन्दी रंगमंच पर सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। इसलिए मैं तब के मुकाबले 'अब' और स्वयं को 'उम्मीद और उत्साह' से भरा महसूस करता हूँ।

इक्कीसवीं सदी की नई पीढ़ी के अनेक नाटककारों की नई कृतियों के रंग-शिल्प पर मीडिया का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। तीन अंकीय नाटकों की पद्धति और संकलन-त्रय की परम्परा समाप्तप्राय हो गई है और टी.वी. धारावाहिकों की पद्धति पर चौदह-पन्द्रह लगातार दृश्यों वाले नाटक ज़्यादा लिखे जा रहे हैं। मंच पर स्क्रीन का प्रयोग बढ़ता जा रहा है और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अनेक युक्तियाँ नाटकों में इस्तेमाल की जाने लगी हैं।

विविधता का विस्तृत केनवास

त्रिपुरारी शर्मा

आयाम

पिछले दिनों हुए राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के नाट्य समारोह के बहाने रंगमंच के विस्तार और विविधता पर बात की जा सकती है। यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि रंगमंच कैसे विविधताओं को समेट रहा है। एक ओर लोकनृत्य और संगीत से पगा घासीराम कोतवाल है तो दूसरी ओर महानगर की जद्दोजहद से गुंथा नाटक आधा चांद भी है। यथार्थ को खदेड़ता बायेन है और कल्पना-वास्तविकता के बीच का व्यंग्य ताजमहल का टेंडर है। घासीराम कोतवाल में राजनीति पर कटाक्ष है जो मंच पर हिन्दी के मौलिक नाटक की कमी को शानदार तरीके से भरते हैं। ऐसे नाटक बताते हैं कि हिंदी नाटक के दायरे संकीर्ण नहीं हुए हैं। हिंदी रंगमंच पर अंतर्राष्ट्रीय कृतियों का भी प्रभाव है और युवा निर्देशकों की रचनात्मकता के साथ सक्रियता का भी। इधर कई निर्देशक प्रयोगधर्मी हुए हैं और सफलता भी पाई है। इतने सूत्रों का समावेश इस मंच को संपन्न करता है और उन संभावनाओं की ओर इंगित भी करता है जो इस मंच से उपज सकती हैं।

यह अभिनेताओं के लिए भी चुनौती है कि उन्हें विभिन्न शैलियों में पारंगत होना पड़ता है। क्योंकि दर्शक भी कई तरह के व्याकरण समझते हैं। भिन्न संवेदनाएं और दृष्टि आपस में जब टकराती हैं तब नाट्योत्सव दोनों के बीच संवाद का सिलसिला बनाता है। दर्शक भी इस भिन्नता को ग्रहण करते हैं। क्योंकि अंत में नाटक वही है जो दर्शक के भीतर टिका रह जाता है।

विविधता का एक आयाम यह भी है कि दर्शक के सामने चुनाव की गुंजाइश हो। हिंदी रंगमंच ने ऐसी स्थिति की रेखा को छू लिया है। इसकी वजह है कि टिकट लेकर नाटक देखने की आदत धीरे-धीरे मजबूत हो रही है। अब रंगमंच लीक से हटकर काम करने की प्रवृत्ति बढ़ा रहा है जिससे हिंदी मंच की अपनी पहचान बनी हुई है। भारतेंदु के समय से ही प्रयोगधर्मी नाट्यकर्म का चलन बना हुआ है। नाटक का कोई निश्चित ढर्रा कभी नहीं रहा। लोककलाओं के साथ पश्चिमी शिल्प से भी रचनाकारों ने तत्व ग्रहण किए हैं। इससे रंगभाषा समृद्ध हुई है। नाट्य आलेख के अलावा उपन्यास, कहानी, कविता लोकगाथा-सभी ने इस मंच पर स्थान पाया है। इसका श्रेय रंगकर्मी और दर्शक दोनों को जाता है। बदलते व्याकरण की स्वीकृति ने इसे प्रयोगशील बनाए रखा है।

मिथक का भी मंच पर विशेष प्रभाव रहा है। साधारण जब विशिष्ट रूप धारण कर प्रकट होता है तो वह बिंब कई युगों को अपने में समेट लेता है। सदियों का इतिहास एक भंगिमा में उजागर हो जाता है और समकालीन तथा ऐतिहासिक जड़ के साथ प्रस्तुत होता है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि द्रोपदी के कई रूप आज मंचित हो रहे हैं। कर्ण, द्रोणाचार्य के माध्यम से आज की वास्तविकता पर प्रश्न उठाए जा रहे हैं। आसपास जो घट रहा है उसे लेकर सवाल करना भी इस मंच के स्वभाव में है। अरविंद गौड़ द्वारा निर्देशित कोर्ट मार्शल वर्षों से सफलतापूर्वक खेला जा रहा है। गांधी और आंबेडकर के बीच का विवाद भी दर्शकों को बांधता है इतिहास को लेकर भी जिज्ञासा दिखाई

पड़ती है। चाणक्य, औरंगजेब, दारा पुनः मंचित हो रहे हैं। इतिहास की परिकल्पना में जब आज की प्रतिध्वनि मुखरित होती है, तब दर्शकों के लिए मंच जीवन से जुड़ जाता है। रंग क्रिया की यही परिभाषा है। नाटक किसी भी काल या स्थान का चित्रण कर रहा हो मगर उसका बोध तो उस वर्तमान में निहित है जब उसे खेला जा रहा है। मंचन सदा इसी वर्तमान के लिए है, यही उसे प्रासंगिक बनाता है, उसकी पुष्टि करता है, उसे अर्थ प्रदान करता है। हिंदी मंच समय के साथ अपने इस संबंध को बनाए रखने का भरसक प्रयास कर रहा है। इसके कुछ अपवाद हो सकते हैं, मुख्य रूप से कई धाराएं आपस में भिन्न होते हुए भी इस सार्थकता की तलाश में सक्रिय हैं।

नाटक किसी भी काल या स्थान का चित्रण कर रहा हो मगर उसका बोध तो उस वर्तमान में निहित है जब उसे खेला जा रहा है। मंचन सदा इसी वर्तमान के लिए है, यही उसे प्रासंगिक बनाता है, उसकी पुष्टि करता है, उसे अर्थ प्रदान करता है। हिंदी मंच समय के साथ अपने इस संबंध को बनाए रखने का भरसक प्रयास कर रहा है। इसके कुछ अपवाद हो सकते हैं, मुख्य रूप से कई धाराएं आपस में भिन्न होते हुए भी इस सार्थकता की तलाश में सक्रिय हैं।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के ग्रीष्मकालीन नाट्य समारोह में इस बार जो सात नाटक हुए उस श्रृंखला में पहला नाटक था बायेन। यह महाश्वेता देवी की कहानी पर आधारित था। इस नाटक की मंच प्रस्तुति का श्रेय सुप्रसिद्ध रंग निर्देशिका उषा गांगुली को दिया जाना चाहिए। डोम परिवार की लड़की गांव के स्वार्थ और रूढ़िवादिता से अकेले जूझती है। विडंबना और विषमता से टकराता कथानक संवेदना को झकझोरता है। उत्सव का प्रारंभ इस नई प्रस्तुति से हुआ तो दूसरा नाटक ताजमहल का टेंडर ऐसा नाटक था जिससे दर्शक भलीभांति परिचित हैं। नाटक अपने विचित्र ढंग से भ्रष्टाचार का खुलासा करता है। यदि शाहजहां आज के युग में होते तब क्या टेंडरों के घोटालों के बीच ताजमहल बन पाता? इसी मूल प्रश्न से नाटक का व्यंग्य उभरता है और चितरंजन त्रिपाठी का निर्देशन उसे हास-परिहास युक्त कई स्थितियों में बांधता चला जाता है। यही रंगमंच की ताकत है कि दो विभिन्न आयामों का एक साथ कदमताल करा सके।

मोहन महर्षि द्वारा रचित विद्योत्तमा ने भी युग लांघा। कालिदास और विद्योत्तमा की रचना यात्रा का पारस्परिक सूत्र एकाएक टूट जाता है, जब समय और काल की सीमा को पार करती विद्योत्तमा भयावह परिस्थितियों का शिकार हो जाती है। तब विद्योत्तमा आज की स्त्री जान पड़ती है जिसका अस्तित्व निजी स्वतंत्रता से समझौता नहीं कर सकता, जो अंधेरे में भी मुक्त रहना चाहती है किंतु चौराहों पर जुटी भीड़ को यह स्वीकार्य नहीं। उसी के क्रूर प्रहार का परिणाम है कि विद्योत्तमा का जीवन छिन जाता है और कालिदास की रचना-शक्ति लुप्त हो जाती है। रंग प्रस्तुति में जब विद्योत्तमा आधुनिक शहर की रेड लाइट पर खड़ी होती है तो नाटक की अकस्मात समकालीन घटनाओं के दुष्चक्र का मुहावरा बन जाता है। आज स्त्री, जिस तेजी से स्वतंत्र हो रही है, उसी रफ्तार से माहौल खतरनाक होता जा रहा है। इस अंधेरे को तोड़ता उत्सव का अगला नाटक आधा चांद महानगर के जीवन पर आधारित है। कॉल सेंटर में काम करने वाले युवक और युवतियां यदि नए अवसर पा रहे हैं तो दूसरी ओर इसी जीवन शैली से उत्पन्न कई विरोधाभास उन्हें घेरे हुए भी हैं। गरीब माँ-बाप के बच्चे जो विदेशी लहजे से अंग्रेजी बोलना सीख लेते हैं और फोन पर व्यापार के एजेंट बन जाते हैं, वास्तविक जीवन और वर्चुअल जोन के दरम्यान अपनी धुरी को थाम कर रखने का प्रयास करते हैं। उनकी मेहनत और ईमानदारी किसी के कारोबार के लिए मात्र जरिया है, जिसे कभी भी किनारे किया जा सकता है। ग्रीक नाटक लिसिसटाटा से प्रेरित ग़ज़ल तेरी अदा वामन केंद्रे का ऐसा नाटक है जो युद्ध की पृष्ठिभूमि में स्त्री संकल्प को दर्ज करता है। स्त्री की लड़ाई व्यक्तिगत नहीं है, उसकी लड़ाई उस सत्ता और प्रवृत्ति से है जो पुरुष को युद्ध में धकेलती है। घर-घर में पनपता संकल्प, पुरुष की कामुकता पर आघात करता, गंभीर हास्य और गंभीरता के बीच एक संगीतमय रास्ता बनाता है। वामन केंद्रे द्वारा निर्देशित दूसरा नाटक लागी लगन भी संगीत में घुला है। नाटकों की उम्र उनकी सफलता है। घासीराम कोतवाल का फिर-फिर मंचन यही बताता है। वरिष्ठ रंग निर्देशक राजेंद्रनाथ के निर्देशन में रंगमंडल ने इसे पहली बार 19 जून 1993 को प्रस्तुत किया था। सन् 1999 में प्रथम भारत रंग मंहोत्सव के लिए उन्होंने इसे पुनः तैयार किया। इतिहास नाटक को बिंब प्रदान कर सकता है। लेकिन रंगमंच उस बिंब को अमर कर सकता है।

स्मृति

चन्दैनी गोंदा, टेमरी और हबीब...

सतीश जायसवाल

गेंदा के फूल को छत्तीसगढ़ में गोंदा भी कहते और सिन्दूरी गेंदा को चन्दैनी गोंदा।

अब तो 4 दशक से भी ऊपर की बात हुई, इसी नाम से छत्तीसगढ़ में एक लोकनाट्य-दल की स्थापना हुयी थी। वह बहुत लम्बे समय तक नहीं चला। लेकिन उनसे छत्तीसगढ़ की प्राय: सभी लोक-कला विधाओं को एक साथ जोड़कर अंचल के लोक-कलाकारों को एक संगठित मंच उपलब्ध कराया था। दुर्ग जिले के एक गांव-बघेरा के दाऊ रामचन्द्र देशमुख उसके प्रणेता भी थे। बघेरा, एक तरह से दुर्ग शहर का ही बाहरी किनारा है, जहाँ से उस समय ग्रामीण क्षेत्र की शुरुआत हो जाती थी। अब तो खैर,बघेरा दुर्ग शहर का हिस्सा हो गया है।

यह बात उल्लेखनीय है कि एक दाऊ ने लोक-कलाकारों को एक संगठित मंच उपलब्ध कराया। और इस मंच पर छत्तीसगढ़ के शोषण की कहानियों की नाट्य प्रस्तुति का क्रम शुरू किया। छत्तीसगढ़ का दाऊ एक छोटा-मोटा ज़मींदार ही होता है। इसलिए इस बात पर भी ध्यान जाना चाहिए कि छत्तीसगढ़ के एक ज़मींदार ने छत्तीसगढ़ के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई। और उसे लोक-मंच के ज़रिये प्रसारित भी किया। इसके साथ इस तथ्य को भी ईमानदारी से मंजूर करना होगा कि दाऊ जी के पास शोषण के विरुद्ध संघर्ष की कोई सुविचारित दृष्टि नहीं थी। और ना ही लोकमंच की सुनियोजित धारणा।

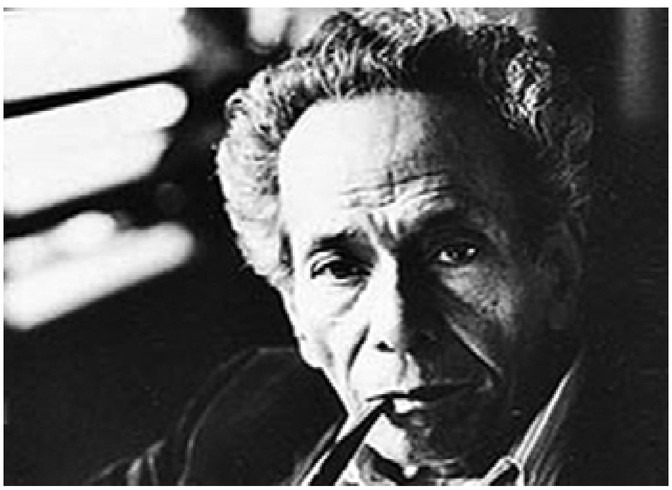

'चन्दैनी गोंदा' एक भावनात्मक पहल थी। लेकिन जब भी छत्तीसगढ़ के लोकमंच और लोककला रूपों की बात होगी, वह 'चन्दैनी गोंदा' के अवदान के बिना हो ही नहीं सकती। इस तथ्य को ठीक-ठीक समझने का और समझकर उसे एक वैश्विक फलक उपलब्ध कराने का काम हबीब तनवीर ने किया।

हबीब तनवीर का अध्ययन अब तक प्राय: व्यक्ति केंद्रित ही होता रहा है। जबकि हबीब तनवीर अपने जीवन-काल में ही व्यक्ति की अपनी एक सीमित पहिचान से बहुत आगे निकलकर एक परम्परा के प्रवर्तक हो चुके थे। इसलिए अब उन्हें व्यक्ति-केंद्रित दृष्टि से आगे अब इतिहास-केन्द्रित क्रमिक दृष्टि से देखना होगा। वह जिस लोक-कला परम्परा के प्रवर्तक थे वह छत्तीसगढ़ की लोक-कला परम्परा है। इस तथ्य को उनकी बेटी नगीन से बेहतर और कौन समझ और समझा सकेगा! नगीन वनमाली सृजन पीठ के साथ सक्रिय रूप से जुडी हुई हैं। मैंने सबसे पहले उन्हें वनमाली सृजन पीठ के आयोजन में ही सुना। उनकी आवाज़ में-माटी के चोला... सुनना छत्तीसगढ़ को उसकी देह और आत्मा में सुनने जैसा अनुभव होता है।

बिलासपुर से रायपुर के रास्ते में एक छोटा सा गांव है- टेमरी। कोई 40-42 बरस पहले इस गांव में 'चंदैनी-गोंदा' का प्रदर्शन हुआ था। वह चन्दैनी-गोंदा का सबसे बड़ा और सबसे सफल आयोजन था। उस रात भर चले आयोजन की स्मृतियां टेमरी के लोगों के पास किसी मिथक की तरह बनी हुई हैं।

बिलासपुर से रायपुर के रास्ते में एक छोटा सा गांव है- टेमरी। कोई 40-42 बरस पहले इस गांव में 'चंदैनी-गोंदा' का प्रदर्शन हुआ था। वह चन्दैनी-गोंदा का सबसे बड़ा और सबसे सफल आयोजन था। उस रात भर चले आयोजन की स्मृतियां टेमरी के लोगों के पास किसी मिथक की तरह बनी हुई हैं।

मिथक की तरह सुरक्षित ये स्मृतियां छत्तीसगढ़ लोक-नाट्य परम्परा को उसके क्रमिक विकास में समझने के लिए एक ज़रुरी उपकरण हो सकती है। इसलिये इनकी सहेज-सम्हाल के उपाय हमें करने होंगे। अंततोगत्वा यह हबीब तनवीर को इतिहास क्रम में देखने की ही एक ज़मीनी शुरुआत होगी। छत्तीसगढ़ की लोक कला परम्परा ही हबीब तनवीर की ज़मीनी शुरुआत है। और इस छोटे से गांव-टेमरी के पास उस लोक-परम्परा के उन प्रतिनिधि लोक कलाकारों का शुरूआती परिचय स्मृतियों में सुरक्षित है, जिन्हें हबीब तनवीर ने वैश्विक आकाश तक पहुँचाया था। मैंने वनमाली सृजन पीठ के अध्यक्ष संतोष चौबे से आग्रह किया है कि हमें एक बार यहां मिलना चाहिए। और मिलकर बात करनी चाहिए। नगीन भी उसमें शामिल हों। वह हबीब तनवीर को दो सिरों से देखने-समझने की शुरुआत होगी।

एक सिरा वह होगा जहां से हबीब तनवीर चलना शुरू करते हैं। और इसका दूसरा सिरा वह होगा जो उनसे आगे बढ़ता है।

कई बार ऐसा होता है कि किस्से इतिहास ही नहीं, हमारी जीवन शैली और सांस्कृतिक चेतना के सत्व को निचोड़ कर हमारे सामने रख देते हैं। इतिहास घटनाओं की प्रामाणिकता को रेखांकित करता है पर बहुत बार लोक कथाएं और किंवदंतियां अतीत के अंधेरे में गुम हो गई हमारी विरासत को आलोकित करती हैं। जैसे, किसी खंडहर के अंधेरे को चीरकर टॉर्च की रोशनी में हम अपनी खोई हुई कीमती चीज़ को पा लेते हैं। हमारे जैसे प्राचीन देश को समझने में किस्से कभी-कभी समय के तिलस्म में गुम गुप्त खज़ाने की कुंजी का काम भी करते हैं।

रमाकांत श्रीवास्तव

मेरा रोग उनका राग

क़िस्सागोई

रात में कवि जागे तो काव्य मंजूषा समृद्ध होती है वर्ना सामान्य आदमी के लिये तो रात विश्रामदायिनी नींद के लिये होती है। कवि बिहारी ने तो प्रमाण पत्र दे दिया है कि 'सुबरन' की खोज में कवि, व्यभिचारी और चोर जागते हैं। मेरा दुर्भाग्य कि इन तीनों में से कुछ भी बनने की क्षमता मुझमें नहीं है अतः तीनों को मिलने वाले लाभों से वंचित रहा। कुछ ना बन पाने के बावजूद मुझे नींद अक्सर बड़ी मुश्किल से आती है। मैं अनिद्रा का रोगी हूँ। आप चाहें तो मुझे निशाचर कह सकते हैं। कभी-कभी तो यह स्थिति भी होती है कि बेहद थका होने पर भी नींद पास नहीं फटकती। यह मानकर भी संतुष्ट नहीं हो पाता कि कम से कम इस मामले में तो मैं ग़ालिब की बराबरी कर लेता हूं - यानी नींद को कोसने में- मौत का एक दिन मुअय्यन है/नींद क्यों रात भर नहीं आती

निराला ने अपनी कविता में संध्या सुंदरी के आगमन का भव्य और उदात्त चित्र खींचा है। उसके आने पर प्रकृति के विराट फलक पर नीरवता का गरिमामय प्रसार होता है। पर सबसे उम्दा बात यह है कि संध्या सुंदरी सारे संसार को अपने आगोश में ले लेती- थके हुए जीवों को वह प्याला एक पिलाती/सुलाती उन्हें अंक पर अपने/दिखलाती फिर विस्मृति के मीठे सपने

किन्तु महाकवि की उदार और ममतामयी संध्या सुंदरी मुझ पर मेहरबान नहीं है। एलोपैथी, होम्योपैथी, एक्यूपंक्चर, योग चिकित्सा के उपरांत- ढाक के तीन बात। वर्षों पहले की बात है, मेरे एक संगीतज्ञ मित्र ने मुझे बतलाया कि कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि राग पूरिया धनाश्री सुनने से अनिद्रा के रोग का निदान संभव है। संगीत, विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत सुनना मेरी दिनचर्या में शामिल रहा है इसलिये यह जानकारी मुझे प्रफुल्लित करने वाली थी। दवा मीठी हो और पिलाने वाली नर्स खूबसूरत हो तो कौन अपना इलाज नहीं करवाना चाहेगा। मैंने फौरन अपने प्रिय गायक राशिद खाँ का गाया पूरिया धनाश्री राग का कैसेट खरीद लिया। तब ज़माना कैसेट का था। जल्दी मुझे अजय चक्रवर्ती के गायन और रविशंकर के सितार वादन के कैसेट भी उपलब्ध हो गये।

राशिद की मीठी-वजनदार आवाज़ और पारंपरिक बंदिशों को अद्भुत सहजता और कुशलता से बरतने की उनकी क्षमता श्रोता को आकृष्ट करती है। अजय चक्रवर्ती को पहली बार मैंने इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के दरबार हॉल में सुना था। तब वे उभरते हुए युवा कलाकार थे। आई.टी.सी. की फेलोशिप के अंतर्गत घरानेदार गुरुओं से संगीत की गहन शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने कला जगत में कदम रखा ही था। उनकी सुमधुर गायकी के प्रति आकर्षण का एक कारण यह भी था। उनकी इत्मीनान से भरी सुमधुर प्रस्तुति का अपना मज़ा है। सितार मेरा प्रिय वाद्य है और रविशंकर की कला की ऊंचाई का तो क्या कहना। किन्तु कुछ संकोच के साथ स्वीकार करना चाहता हूं कि मुझे उपलब्ध सामग्री में रविशंकर की बजाई पूरिया धनाश्री से अधिक आनंद राशिद और अजय चक्रवर्ती के गायन में मिला। वजह कुछ भी हो सकती है। वैसे भी, गुणियों से सुना है कि राग, रसोई और पगड़ी तो बनते-बनते जैसी बन जाय किन्तु मुख्य कारण मेरी अल्पज्ञता है जिस पर मैं स्वयं मुहर लगाता हूँ। अनाड़ी होना कभी कभी बड़े फ़ायदे और मज़े का होता है। कम जानने वाला अपने किस्म का आनंद उठाता है। उसके रस ग्रहण की क्रिया नितांत मौलिक होती है। काव्यशास्त्र के महान आचार्यों के द्वारा रस

निष्पत्ति का जो तलदर्शी सिद्धांत बनाया है उससे अनाड़ी के आनंद का क्या लेना देना। उसके आस्वाद का धरातल ही ऊबड़-खाबड़ होता है।

मेरा संगीत का आनंद ऐसे ही अनाड़ी जिज्ञासु का आनंद है। अपना मनपसंद संगीत सुनकर मन प्रसन्न हो जाता है। राग संपूर्ण है, षाड़व है या औड़व है; वह सुबह का है, दोपहर, शाम या रात का है। इस समय सिद्धांत को ना जानना भी मेरे बड़े फ़ायदे का है। मानाकि इसे जानने-समझने वाला यानी उसके शास्त्रीय पक्ष से परिचित रसिक अधिक आनंद उठाता होगा। कभी-कभी सोचता हूँ कि यदि कोई संगीत प्रेमी इस बात पर अड़ जाय कि राग भैरवी को दोपहर दिन के समय सुनने में मजा आ ही नहीं सकता तो फिर उसे मजा आ भी कैसे सकता है। अच्छा गाया-बजाया कोई भी राग क्या किसी भी समय मन को पुलकित नहीं करता? मैं एक विद्वान और एक दौर में अपने सहयोगी रह चुके संगीत मर्मज्ञ को जानता हूँ जिन्हें मैंने तो क्या, उनके साथी संगीत शिक्षकों ने भी कभी अच्छा श्रोता नहीं माना। वे बेहद सफल शिक्षक और एक विख्यात कला गुरु के शिष्य थे। उच्च पद पर आसीन होने के कारण, संगीत सभाओं में सबसे आगे बैठने का अधिकार भी उन्हीं का होता था। वे एक परीक्षक की मुद्रा में भौंहें सिकोड़ कर और माथे पर बल डालकर कलाकार को घूरते हुए संगीत सुनते थे। विभोर होकर वाह-वाह कहकर दाद देते हुए बहुत कम पाये जाते थे।

यूं वे अन्य समय एक ख़ुश मिज़ाज व्यक्ति होते थे लेकिन संगीत के कार्यक्रमों में उनकी मुद्रा ऐसी होती थी कि 'कलाकार' ने जरा भी गलती की तो वे उठकर उसे पीट देंगे। उनके मन में कुछ इस तरह की कमेन्ट्री चलती होगी- 'ठीक है...ये ज़रा लड़खड़ाया...हाँऽ...संभल गया। ऊंह...कोमल निषाद में कुछ कमी रह गई... अबे, ठीक कर। हाँ, आया थोड़ा सा लाइन पर।' मेरा ख्याल है कि बड़े-बड़े कलाकार भी उन्हें देख कर कुछ तो भयभीत ज़रूर होते रहे होंगे।

मैं ठहरा अनाड़ी। अच्छा लगता है यानी अच्छा लगता है। बस, इतना ज्ञान है कि श्रोता के रूप में गलत जगह पर 'वाह' नहीं बोलता। सही वक्त पर तारीफ़ में वाह कहना भूलता नहीं हूँ। रात्रि भोजनोपरांत अपने शयन कक्ष में अपनी कुर्सी पर बैठकर पढ़ना मेरा नियम हुआ करता था। वहीं संगीत सुनने का सरंजाम था। मैं राग पूरिया धनाश्री का कैसेट लगा देता और पढ़ने लिखने लगता। मगन रहता कि मधुर संगीत सुन रहा हूँ और मेरी अनिद्रा का इलाज भी हो रहा है। राशिद का कैसेट खत्म होता तो अजय चक्रवर्ती का कैसेट लगाता फिर रविशंकर का सितार सुनता। रात होती और संगीत की मस्ती होती। इतना मधुर संगीत आप सुन रहे हों तो किस कमबख्त को नींद आयेगी। फिर, मैं कला संगीत सुनते हुए ऊंघने का भी आनंद उठा लूं।

किस्से में से किस्सा निकालना भारतीय कथा-कथन की परंपरा है, अतः ऊंघने के प्रकरण का बयान कर दूं। जब मैं इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के हिन्दी विभाग में व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुआ तब आदरणीय शिवशरण पाण्डेय विश्वविद्यालय के कुलपति थे। उनके कार्यकाल में संगीत के कार्यक्रम बहुत होते थे। वे भीड़-भाड़ एकत्र कर उत्सव जैसा वातावरण निर्मित करने में काफी रुचि रखते थे। उनके ज़माने में भातखण्डे - पलुस्कर जयंती के आयोजन जिस गरिमा के साथ संपन्न हुआ करते थे। वे कला प्रेमियों के लिये यादगार कार्यक्रम होते थे। पाण्डेय जी संगीत के व्यक्ति नहीं थे लेकिन उस समय के बड़े कलाकारों को आमंत्रित करते थे और जहाँ भी जाते वहाँ विश्वविद्यालय के संबंध में लोगों को बतलाते और किसी न किसी को आमंत्रित कर आते थे। भातखण्डे - पलुस्कर आयोजन तो बेहद उत्साहजनक होता था। शायद वह खैरागढ़ का तीन दिवसीय सबसे बड़ा और काम्य उत्सव होता था। तब भोर तक होने वाली संगीत सभाओं का भरपूर आनंद हम लोगों ने लिया। उनके बाद वैसी गहमागहमी डॉ. अरुण कुमार सेन के कार्यकाल में हुई। तब भी रातभर के आयोजनों की बहार थी। कई बार कार्यक्रम समाप्त होने के

मोक्ष मिले ना मिले, कुंठाओं और तनाव से मुक्ति तो तय है

...हो सकता है कि इस किस्से को सुनकर किसी को यह लगे कि एक ईश्वर भक्त फकीर की अपने मन पसंद राग के प्रति ऐसी आसक्ति! ऐसी भावुकता!! और जहां तक उस बनिये का प्रश्न है, दुनियादार किस्म के लोग तो उसे परम मूर्ख ही कहेंगे। ऐसे भी कहीं व्यापार किया जाता है! दरअसल लोग तेजी से भूलते जा रहे हैं कि कभी कला की साधना को मोक्ष का साधन तक माना जाता था। मेरे सम्माननीय मित्र डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कभी मुझे यह बतलाया था कि उस्ताद हैलाल खाँ कहा करते थे कि अपने संगीत से मैं ख़ुदा का दीदार भले ही ना करवा सकूं लेकिन आपको ऐसी जगह खड़ा कर दूंगा जहां से आपको ख़ुदा दिखलाई देगा। और दूसरी बात यह कि व्यवसायी हो, प्रशासक हो या किसान; एक दुनियादार को यदि एक अच्छा इंसान बनने की कोशिश करना हो तो उसे कलाओं के करीब जाना चाहिए। मोक्ष मिले ना मिले, कुंठाओं और तनाव से मुक्ति तो तय है। ख़ुदा दिखे ना दिखे लेकिन आदमी, आदमी से तो जुड़ेगा। आदमी के बेहतर आदमी बनने की संभावनाएं उस ज़मीन पर ज़रूर हैं।

इस कर्मकाण्डीय दिखावे और संस्कृति की आड़ में वस्तुतः संस्कृति विरोधी समय में, यह किस्सा किसी फिल्म के ड्रीम सीक्वेंस जैसा लगता है। सत्य का आभास देने वाले स्वप्न जैसा!! किसी व्यापारी ने राग को धन के किसी भी अन्य स्थूल रूप से भी अधिक कीमती समझा! समय के इस दौर में यह सत्य हमारी आंखों से ओझल हो रहा है कि सुमधुर संगीत आत्मा की जीवनी शक्ति और घायल हृदय की औषधि है। देश की अटूट सांस्कृतिक धारा में संगीत हमारे अस्तित्व का प्रमाण है। धर्म और जाति की संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण करके कलाकारों ने जिसे निर्मित और विकसित किया है वह हमारी पहचान को उजागर करता है। बाज़ारू संगीत के महाजनी सभ्यता के समय में भी हमारा शास्त्रीय और लोक संगीत अपनी आंतरिक शक्ति से जीवित है। अमीर खुसरो के ही शब्दों में कहूं- किसी भी देश का संगीत भारतीय संगीत के समान नहीं कहा जा सकता। वह मन और प्राणों में ज्वाला भड़का देता है।

बाद जब हम घर लौटते तो शमशेर की कविता हमारे साथ होती। कभी आकाश बहुत नीले शंख जैसा दिखलाई देता तो कभी भोर का नाम राख से लीपे हुए गीले चौके की तरह लगता। सुबह की ठंडी हवा यूं ताजगी भर देती कि रात्रि जागरण की थकान का आभास भी नहीं होता। ऐसे अद्‌भुत आनंद के साधन देने वाले पाण्डेयजी की चर्चा पर फिर लौटें।

यह वह समय था जब संगीत के कार्यक्रम विश्वविद्यालय के सभा भवन (रियासत के समय से ही वह दरबार हॉल के नाम से जाना जाता था) में दरियाँ, गद्दे, गाव तकिये रखे जाते थे और मंच पर कालीन, गाव तकिये और गद्दे की बिछायत होती थी। देर रात जब बड़े कलाकारों का मंच पर आगमन होता तभी पाण्डे जी का ऊंघना शुरू होता। सामने की पंक्ति में आसीन गाव तकिये से टिक कर बैठे पाण्डेजी के नींद के झोंके कलाकार के आलाप के साथ ही प्रारंभ होते। उनकी गरदन कभी इधर लटकती, कभी उधर। गरदन को अधिक झटका लगता और उनकी तंद्रा भंग होती तो चैतन्य होकर, चश्मा ठीक करते हुए कहते...वाह...वाह। कलाकार मुस्कुराते हुए गरदन झुका कर इस कुल सम्मान को शिरोधार्य करते। कुछ ही देर में कुलपति फिर ऊंघने लगते। उनके पीछे बैठे हम लोगों को इस ऑडियो विजुअल जुगलबंदी का अतिरिक्त लाभ मिलता। कलाकार का गायन-वादन समाप्त होने पर तालियां बजतीं तो नींद से जागकर, ताली बजाते हुए कुलपति जी कहते... वाह... कुछ और हो जाय। उनके इस संगीत प्रेम पर लोग कुर्बान। परवीन सुलताना, भीमसेन जोशी, पं. जसराज को उन्होंने इसी शैली में सुना। प्रसिद्ध गायिका बेग़म अख़्तर के जीवन की घटना तो हमारे समय की है। विवाह के बाद उन्होंने गाना बंद कर दिया। इसे यूं कहना अधिक संगत होगा कि अपने पारिवारिक कारणों से उन्हें गाना छोड़ना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि गहरे अवसाद के कारण वे बीमार हो गईं। संगीत का माहौल ही उन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराता था। यदि बेग़म अख़्तर स्वास्थ्य लाभ के लिये फिर से संगीत की दुनिया में नहीं लौटती तो हमने ऐसा कुछ खो दिया होता जिसका आकलन संभव नहीं है। नृत्य देखने में भी पांडेजी यह अभ्यास काम में आता।

उन्हें शायद इस बात का एहसास था कि संगीत सुनने की इस शैली का भास लोगों को हो गया है। एक दिन हम लोगों की उपस्थिति में उन्होंने बतलाया कि एक बार पं. रविशंकर के सितार वादन कार्यक्रम में अगली पंक्ति में बैठे नेहरूजी सो गये थे। फिर हम लोगों की ओर देखकर कहा- 'ज़रूर नेहरूजी काफी थके हुए रहे होंगे और रविशंकर ने इतना बढ़िया सितार बजाया होगा कि उन्हें आराम मिला होगा और उन्हें नींद आ गई होगी।' यानी, इशारे से उन्होंने बतला दिया कि वे सो जाते हैं तो इसका कारण उनकी थकान और संगीत कलाकार की शानदार प्रस्तुति होती है। इस तरह कलाकार की श्रेष्ठता को तय करने के एक नये मापदण्ड की जानकारी भी हमें मिली।

नीरव रात्रि तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर हो रही है, उसने अपनी अंधकार रूपी केश राशि तुम्हारी प्रतीक्षा में बिछा दी है। तुम्हारी वीणा से उतर कर आज किस गान ने सृष्टि को प्लावित कर लिया है। इस स्वर के उठान ने भुवन को एकाकार कर दिया है। इस गीत की वेदना में खो गया हूँ... हे मेरे बंधु। ...मेरी अनिद्रा पर राग पूरिया धनाश्री का कितना असर हुआ यह तो मालूम नहीं किंतु नई पीढ़ी के दो कलाकारों की गायकी के साथ जितनी दूर तक एक विनम्र श्रोता जा सकता है, वहां तक जाने की मैंने कोशिश की। आदमी अपनी प्रिय वस्तु तक पहुंचने का प्रयास ही तो कर सकता है।

...तो, जानने वाले जानते हैं कि रात के सन्नाटे में अपने किस्म का एक जादू होता है। नदी पार से आती किसी अनाम पंछी की आवाज़ या बगीचे की माधवी लता के कुंज में बने पक्षी के घोंसले से आती खग शावक की चिहुंक। आधी रात के बाद कभी पत्तों पर बजती ओस की बूंद की बेहद हल्की ध्वनि-किसी ठुमरी की नज़ाकत लिये हुई। विराट प्रकृति की नीरवता का अख्यायेय एहसास और इस सबके बीच हल्के स्वर में गूंजती राशिद की मीठी वज़नदार आवाज़ से झंकृत होते हृदय के तार! किसी निष्णात कलाकार के संगीत को सुनते हुए कवि गुरु का गीत समानान्तर, चुपके से संगीत के साथ हो लेता है- नीरव निशि तब चरण निछाये/आंधारो केश भार दिये हो बिछाये/आज ये कोन गान निखिल प्लाबिया/तोमारो बीना होते आशिलो नामिया/भुवन मिले जाय सुरेरो रन ने/गानेरो बेदनाय जाइ जे हरा से/ बंधु हे आभार...

नीरव रात्रि तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर हो रही है, उसने अपनी अंधकार रूपी केश राशि तुम्हारी प्रतीक्षा में बिछा दी है। तुम्हारी वीणा से उतर कर आज किस गान ने सृष्टि को प्लावित कर लिया है। इस स्वर के उठान ने भुवन को एकाकार कर दिया है। इस गीत की वेदना में खो गया हूँ.... हे मेरे बंधु।

मेरी अनिद्रा पर राग पूरिया धनाश्री का कितना असर हुआ यह तो मालूम नहीं किंतु नई पीढ़ी के दो कलाकारों की गायकी के साथ जितनी दूर तक एक विनम्र श्रोता जा सकता है, वहां तक जाने की कोशिश की। आदमी अपनी प्रिय वस्तु तक पहुंचने का प्रयास ही तो कर सकता है।

राग पूरिया धनाश्री से संबंधित एक किस्सा उस्ताद हाफ़िज़ अहमद खां साहब ने मुझे सुनाया था। सबसे पहले उन्होंने राशिद खाँ की तारीफ़ करते हुए उसे सुनने की प्रेरणा दी थी। हाफ़िज़ साहब के पास किस्सों का

....कई दिन गुज़र गये और खुसरो नहीं लौटे! इधर ख़ानकाह में राशन पानी खत्म होने लगा। खानकाह के पास जो बनिये की दुकान थी वहीं से जरूरत की चीजें आती थीं और खुसरो दाम चुकाते थे। खुसरो की गैरहाज़िरी में औलिया ने सामान मंगवाया। बनिया खुद औलिया के हुज़ूर से हाजिर हुआ। हाथ जोड़कर बोला- 'बाबा, आप जो भी हुक्म करेंगे वह पूरा कर दिया जाएगा। पर हुज़ूर माफी दें, व्यापार के कुछ नियम होते हैं, उन्हें पालन करने की इज़ाज़त दीजिये।'

भंडार था। कई बार ऐसा होता है कि किस्से इतिहास ही नहीं, हमारी जीवन शैली और सांस्कृतिक चेतना के सत्व को निचोड़ कर हमारे सामने रख देते हैं। इतिहास घटनाओं की प्रामाणिकता को रेखांकित करता है पर बहुत बार लोक कथाएं और किंवदंतियां अतीत के अंधेरे में गुम हो गई हमारी विरासत को आलोकित करती हैं। जैसे, किसी खंडहर के अंधेरे को चीरकर टॉर्च की रोशनी में हम अपनी खोई हुई कीमती चीज़ को पा लेते हैं। हमारे जैसे प्राचीन देश को समझने में किस्से कभी कभी समय के तिलस्म में गुम गुप्त खज़ाने की कुंजी का काम भी करते हैं।

किस्से यानी किस्से। उपन्यास, इतिहास, पुरातत्व की पारिभाषिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए, इनसे कुछ भिन्न! यूं...अतीत के इतिहास का सर्वाधिक ठोस प्रमाण पुरातत्व को माना जाता है लेकिन उसकी सीमा भी उतनी ही स्थूल और संकुचित है। कभी-कभी पुरातत्व ऐसे पुलिस अधिकारी या निगम के बाबू की तरह व्यवहार करता है जो आपसे कहता है कि आप ज़िन्दा हैं इसका प्रमाण लेकर आइये।

हाफ़िज़ अहमद खाँ साहब हमारे विश्वविद्याय में कुलपति के पद पर एकाध साल ही रहे फिर अपने घरेलू कारणों से कार्यकाल पूरा किया बगैर ही वापस दिल्ली लौट गये थे। जैसा सुदर्शन उनका व्यक्तित्व वैसी ही मीठी बोली-बानी। खूबसूरत उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी बोलते। साहित्य के प्रेमी, फ़ासिज्म की बू नहीं। कोई मिलने जाता तो चाय शाय के साथ खूब बातें होतीं। खाने के शौकीन और पीने के सख्त ख़िलाफ़ इतने कि ग़ालिब की महानता को बमुश्किल स्वीकार करते। यूं बातों में उनके शेर उद्धृत करते लेकिन ग़ालिब के साहित्य पर चर्चा चलती तो बोलते- अरे छोड़िये भी। वो तो पक्के शराबी थे। उनके पास चुटकिलों और किस्सों का भंडार था।

अमीर ख़ुसरो विख्यात सूफ़ी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। खुसरो यानी इस देश के सार्वकालिक जीनियस जिनकी साहित्य और संगीत में समान रूप से गति थी। फ़ारसी के विद्वान लेकिन अपने गुरु की प्रेरणा से हिन्दी में भी लिखा और खड़ी बोली के पहले रचनाकार कहलाए। कव्वाली जैसी विधा को जन्म दिया। मान्यता है कि सितार और तबले का आविष्कार किया। शास्त्रीय संगीत की मुकाम पद्धति के आविष्कार लोकगीतों, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों के अनोखे जानकार और संग्रहकर्ता। यद्यपि संगीत शास्त्री मानते हैं कि तबला और सितार के आविष्कर्ता अमीर खुसरो नहीं थे। बेशक, किसी और ने यह काम किया होगा। प्रसिद्धि मिली खुसरो को। पर मैं तो किस्सा बतला रहा हूं। इन किंवदंतियों से यह तो साबित होता है कि वे अद्‌भुत प्रतिभा के धनी थे। वैसे ही जैसे जनश्रुतियों के आभाचक्रों से घिरे कबीर, बीरबल, भर्तृहरि और केशवदास! अमीर खुसरो में अवश्य ही कुछ नया करने का माद्दा और साहस था।

गुरु शिष्य का अद्‌भुत प्रगाढ़-प्रेम-परक रिश्ता था। अपने शिष्य के विषय में औलिया कहा करते थे कि हश्र में मैं अल्लाह से कहूंगा कि मैं नैवेद्य के रूप में खुसरो को लाया हूं। अपने शिष्य की तरह ही निज़ामुद्दीन भी ग़ज़ब के संगीत प्रेमी थे। ख़ानकाह में हर शाम कव्वाली की महफ़िल सजती। कव्वालियां भी शास्त्रीय रागों पर आधारित होतीं। औलिया को राग पूरिया धनाश्री जब तक सुन ना लेते, चैन नहीं पड़ता! एक बार अमीर खुसरो को बादशाह के हुक्म से कुछ दिनों के लिये बाहर जाना पड़ा। शायद युद्ध पर गये होंगे। सामंत जो थे। हर तरह के काम निपटाते थे।

कई दिन गुज़र गये और खुसरो नहीं लौटे! इधर ख़ानकाह में राशन पानी खत्म होने लगा। खानकाह के पास जो बनिये की दुकान थी वहीं से जरूरत की चीजें आती थीं और खुसरो दाम चुकाते थे। खुसरो की ग़ैरहाज़िरी में औलिया ने सामान मंगवाया। बनिया खुद औलिया के हुज़ूर से हाज़िर हुआ। हाथ जोड़कर बोला- 'बाबा, आप जो भी हुक्म करेंगे वह पूरा कर दिया जाएगा। पर हुज़ूर माफी दें, व्यापार के कुछ नियम होते हैं, उन्हें पालन करने की इजाज़त दीजिये।'

औलिया ने कहा- 'अरे भाई, जैसे मेरे उसूल हैं, तेरे भी होंगे। बिना हिचक अपनी बात कह।'

बनिया बोला- 'मैं तो आपका सेवक हूं। फिर जिसके शिष्य अमीर हैं उनसे क्या बहस की जा सकती है। पैसे का क्या है, कहां भागा जा रहा है। पर हुज़ूर व्यापार के सिद्धांत होते हैं। आप जो भी कहें फौरन हाजिर कर दूंगा पर गुस्ताखी माफ, आपको कुछ चीज गिरवी रखनी होगी।'

औलिया ने कहा- 'अरे भाई मैं ठहरा फकीर। मेरे पास भला गिरवी रखने को क्या है?'

'है, बंदा परवर,' बनिये ने हाथ जोड़कर कहा- 'आप मेरे पास राग पूरिया धनाश्री गिरवी रख दें।'

औलिया हैरान, अजब बंदा है तू भी!

'हाँ हुज़ूर, जब तक अमीर खुसरो नहीं आ जाते आप पूरिया धनाश्री नहीं सुनेंगे।'

...तो, इस तरह राग गिरवी रख दिया गया। बनिये ने ज़रूरत का सारा सामान भेज दिया इस निवेदन के साथ कि बाबा जो भी मांग करेंगे उसे पूरा करते रहना उसका सौभाग्य होगा। खानकाह का काम बादस्तूर चलता रहा लेकिन अपना प्रिय राग सुने बिना औलिया इतने बेचैन हुए कि बीमार हो गये। शरीर को भोजन मिल रहा था लेकिन आत्मा प्यासी थी। जब अमीर खुसरो लौटे तो बनिये का भुगतान करके पूरिया धनाश्री को छुड़वाया। औलिया स्वस्थ हुए। राग ने अपना असर दिखलाया।

...जैसे उनके दिन फिरे वैसे सबके फिरें।

दैहिक उत्तेजना में पर्यवसित हो जाने वाले बाज़ारू संगीत के बरक्स, दुनिया के हर देश को, भारत की ही तरह, संगीत की ऐसी परंपरा मिली है जो देश की सीमाओं को लांघ कर अपने से जुड़ने का आमंत्रण देती है। निज़ामुद्दीन औलिया अपने पसंदीदा राग सुने बगैर बीमार हो गये थे तो मुझ नाचीज़ को भी यह उम्मीद रखनी चाहिए कि संगीत सुनकर मैं अपने अनिद्रा रोग से मुक्त हो सकूंगा।

हिंदी साहित्य में इस समय कई युवा पीढ़ियां एक साथ सक्रिय हैं, अलावा वरिष्ठ पीढ़ियों के। वे इस समय साहित्य में परिवर्तन के लिए सक्रिय हैं और ज़िम्मेदार भी, भले सारे परिवर्तन युवा ही कर रहे हों यह सोचना सही नहीं है। लेकिन इतना तो सच है ही कि परिवर्तन और उसे स्पष्टतः विन्यस्त करने, समझाने का ज़िम्मा युवाओं पर ही है। परिवर्तन भी अनिवार्यतः कई स्तरों पर है : भाषा, शैली, अन्तर्वस्तु, विचार और दृष्टि आदि। इस सबको एकीकृत और सामान्यीकृत करना कठिन काम है और इसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि पहली पीढ़ियों की तरह युवाओं में यहां भी इन मामलों में काफी और कई बार जटिल लगती बहुलता है। कई परिवर्तन अपने मूल में भले पहले भी रहे हों, बदले हुए समय और परिवेश में नये रूपाकारों में प्रगट होते हैं।

यह याद रखना ज़रूरी है कि साहित्य में परिवर्तन की भी निरंतरता होती है। समूचा साहित्यिक इतिहास इसका गवाह है। यह भी सही है कि प्रायः परिवर्तन को पहचानने में देर होती है। कई बार उसके लिए युवाओं को कुछ नाटकीयता या अतिरंजना और आक्रामकता से काम लेना पड़ता है। इसमें, कई बार, अपने से पहले के अवदान को भुला देने या सिरे से अस्वीकार करने की मुद्रा शामिल होती है जो शायद

पहला यह कि युवाओं को अपनी रचना में आये परिवर्तन को समझाने या उसका विश्लेषण करने के लिए जो नयी अवधारणाएं विकसित कर सकना चाहिये उसके ठोस संकेत अभी स्पष्ट नहीं हैं। कई युवा अकादेमिक या मीडिया की संस्थाओं में कार्यरत हैं और उनकी रूढ़ पड़ गयी भाषाओं और मुहावरों से वे मुक्त नहीं हो पाये हैं। तीसरा यह कि युवाओं की नितांत समसामयिकता उन्हें स्मृति में जाने से रोक रही है। उन्हें पिछले संघर्ष और प्रतिरोध अधिकतर याद नहीं आते। चौथा यह कि युवा आलोचकों को इस परिवर्तन को समझने-समझाने के लिए नये अवधारणात्मक और विश्लेषणात्मक पद विन्यस्त करना चाहिये रामचन्द्र शुक्ल या मुक्तिबोध के पदों से कब तक काम चलेगा या चल सकता है।

के. रवीन्द्र

परिवर्तन की ज़िम्मेदारी और युवा

अशोक वाजपेयी

ज़रूरी भी होती है। परिवर्तन की शक्तियों को अपने गतिशीलता और आवेग में इसकी फुरसत नहीं होती कि वे, बीच में कुछ ठिठककर, आत्मविश्लेषण और आत्मसंशय भी करें। हर परिवर्तन टिकाऊ हो यह ज़रूरी नहीं। वे लगातार परंपरा में भी जज्ब होते रहते हैं और उसका अलग से पहचाना न जाने वाला हिस्सा बन जाते हैं। परिवर्तन का लगातार परंपरा बनते जाना, जैसे जीवन में वैसे ही साहित्य में, हमारी मानवीयता और सजग कल्पना का ही प्रमाण होता है।

न परिवर्तन रोके जा सकते हैं, न परंपरा को दबाया जा सकता है। यह पहचान भी कभी धूमिल नहीं पड़ना चाहिये कि एक को अपने औचित्य के लिए दूसरे की ज़रूरत होती है। जैसे जीवन में वैसे ही साहित्य में, हमारा काम दोनों के बिना नहीं चल सकता: हमें परंपरा की स्थिरता और आश्वस्ति और परिवर्तन का तेज और गतिशीलता दोनों ही चाहिये।

युवा प्रतिभा को अपने अनुकूल परिवेश बनाने के लिए कुछ कोशिश, कुछ संघर्ष करने पड़ते हैं। परिवेश कुछ तो बना-बनाया मिलता है, पर बहुत कुछ बनाना पड़ता है। इसके अकादेमिक, व्यावसायिक आदि अनेक पक्ष होते हैं। कई बार इस तरह के काम और दबाव बहुत झंझट के लगते हैं और युवा प्रतिभा को उनसे ऊब हो सकती है। पर इन्हें टाला भी नहीं जा सकता। अब यों तो साहित्य रचना, किसी भी समय में, झंझट मोल लेना है। जब एक झंझट में फंस ही गये तो बाकी झंझटों से बचना मुमकिन या ज़रूरी नहीं।

के. रवीन्द्र

हिंदी के युवा परिदृश्य पर इस समय दो-तीन पीढ़ियां एक साथ सक्रिय हैं। उनमें से कई 'युवा-2016' के नाम से आयोजित युवा लेखकों के जा समारोह में शामिल हुए थे और कल्पना, स्मृति, बहुलता, भाषा, बखान, अनुपस्थिति, नये प्रश्न आदि विषयों पर उन्होंने असाधारण संक्षेप बरतते हुए बात की। कई कुशाग्र और सटीक ढंग से बोले, दिल्ली के कई वरिष्ठ लेखकों ने उन्हें ध्यान से सुना। उन्हें सुनकर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पहला यह कि युवाओं को अपनी रचना में आये परिवर्तन को समझाने या उसका विश्लेषण करने के लिए जो नयी अवधारणाएं विकसित कर सकना चाहिये उसके ठोस संकेत अभी स्पष्ट नहीं हैं। कई युवा अकादेमिक या मीडिया की संस्थाओं में कार्यरत हैं और उनकी रूढ़ पड़ गयी भाषाओं और मुहावरों से वे मुक्त नहीं हो पाये हैं। तीसरा यह कि युवाओं की नितांत समसामयिकता उन्हें स्मृति में जाने से रोक रही है। उन्हें पिछले संघर्ष और प्रतिरोध अधिकतर याद नहीं आते। चौथा यह कि युवा आलोचकों को इस परिवर्तन को समझने-समझाने के लिए नये अवधारणात्मक और विश्लेषणात्मक पद विन्यस्त करना चाहिये रामचन्द्र शुक्ल या मुक्तिबोध के पदों से कब तक काम चलेगा या चल सकता है।

नितांत समसामयिकता से आसक्ति कई बार आलोचना की रचना का समर्थन नहीं करती। वह उसका प्रतिरोध भी करती है। अकसर प्रतिरोध ही नई अवधारणाएं उकसाता है। पिछले सौ बरस का साहित्य का इतिहास देखें तो आलोचना में प्रतिरोध की यह वृत्ति साफ़ देखी जा सकती है। इधर लगता है कि यह वृत्ति कमज़ोर हो रही है।

सच तो यह है कि सहधर्मिता और प्रतिरोध, आलोचना में, साथ-साथ चलते हैं। उनकी परस्परता गहरी सावधानी और सतर्कता की मांग करती है। वे न हों तो फिर आलोचना में विचारोत्तेजना घट जाती है। उसका निरंतर प्रश्नवाचक होना भी शिथिल पड़ जाता है। आलोचना साहित्य-विवेक और जीवन-विवेक दोनों की मुस्तैदी से चौकसी करे यह हर पीढ़ी के साहित्य के लिए स्वस्थ और हितकर है।

हिंदी की रंगयात्रा 'नटरंग' का योगदान स्वीकार किये बिना अधूरी ही रहेगी। साठ से अधिक वर्ष पहले 1965 में जब कवि-आलोचक और रंगचिंतक नेमिचंद्र जैन ने हिंदी में नाटक और रंगमंच पर एकाग्र पत्रिका 'नटरंग' का संपादन और प्रकाशन आरंभ किया था तो यह उम्मीद करना मुमकिन नहीं था कि उसके सौ अंक निकल पायेंगे। हिंदी में नाटक और रंगमंच को लेकर एक तरह का उपेक्षा भाव रहा है, भले रंगमंच की उपस्थिति और सक्रियता बढ़ती रही है। 'नटरंग', अनेक कठिनाइयों के बावजूद, इस उपेक्षा का प्रतिरोध करता मंच रहा है। उसके शतांक का इसी महीने प्रकाशन इसलिए एक महत्वपूर्ण घटना है।

शुरुआत में नेमिजी 'नटरंग' की सामग्री एकत्र करते, छपाई के प्रूफ सुधारते, पत्रिका की प्रतियां डिस्पैच करते याने सारे काम खुद ही निपटाते थे। तब 'नटरंग प्रतिष्ठान' जैसी संस्था भी स्थापित नहीं हुई थी। सत्तर का दशक हिंदी रंगमंच में निर्णायक दशक था। अनेक श्रेष्ठ रंगप्रस्तुतियां, नये नाटककार, कल्पनाशील निर्देशक, नये दर्शक, नयी रंगालोचना आदि सामने आ रहे थे और 'नटरंग' उनका बौद्धिक रंगमंच बनकर उभरा था। हिंदी की रंगचेतना को भारतीय रंगचेतना का हिस्सा बनाने और दोनों में परस्परता को बढ़ावा देने की भूमिका भी 'नटरंग' ने साहस और ज़िम्मेदारी से निभायी। हिन्दी की रंगयात्रा 'नटरंग' का योगदान स्वीकार किये बिना अधूरी ही रहेगी।

शतांक की विशेषता यह है कि इसमें छः नाटक प्रकाशित हैं- मानव कौल, अविनाशचन्द्र मिश्र, त्रिपुरारी शर्मा, अभिराम भडकमकर, दानिश इकबाल और राजेश कुमार। याद नहीं आता कि पहले भी किसी पत्रिका में इतने सारे नाटक एक साथ प्रकाशित हुए हों। पांच नाटक मूलतः हिंदी में लिखे गये हैं और एक मराठी से हिन्दी में अनूदित है। हिंदी में नाटक न होने की शिकायत अरसे से की जाती रही है। यह स्पष्ट है कि नाटक लिखे और खेले जा रहे हैं।

साहित्य की तरह नाटक बहुलता और नवाचार का परिसर है। ये छः नाटक रंगशिल्प, कथानक, रंगभाषा, प्रस्तुति आदि की मनोरम बल्कि कहें रंगारंग विविधता और संभावना प्रगट करने वाली कृतियां हैं। हिन्दी अंचल की कुख्यात रूढ़िवादिता, ठसपन आदि को नया नाट्य व्यवहार प्रश्नांकित कर सकता है। उसकी प्रस्थारना के रूप में इन नाटकों पर विचार किया जा सकता है।

हम आज शायद यह तो नहीं कह सकते कि हमारा समय रंग-समय है हालांकि उसमें बेहद नाटकीयता है। किसी युवा ने पिछले दिनों यह कहा कि हमारी राजनीति और सार्वजनिक जीवन में नाटक, स्वांग, ढोंग और पाखंड इस कदर बढ़ गये और व्यापक हो गये हैं कि समूचा समाज रंगमंच हो गया है और सभी दृश्य माध्यम रंगदृश्य। इतना तो, फिर भी, मानना ही पड़ेगा कि हमारा समय रंग-संभावना का समय है। यह संभावना समय में बदले इसकी प्रतीक्षा है।

सांस्कृतिक हस्तक्षेप की युवा पहल

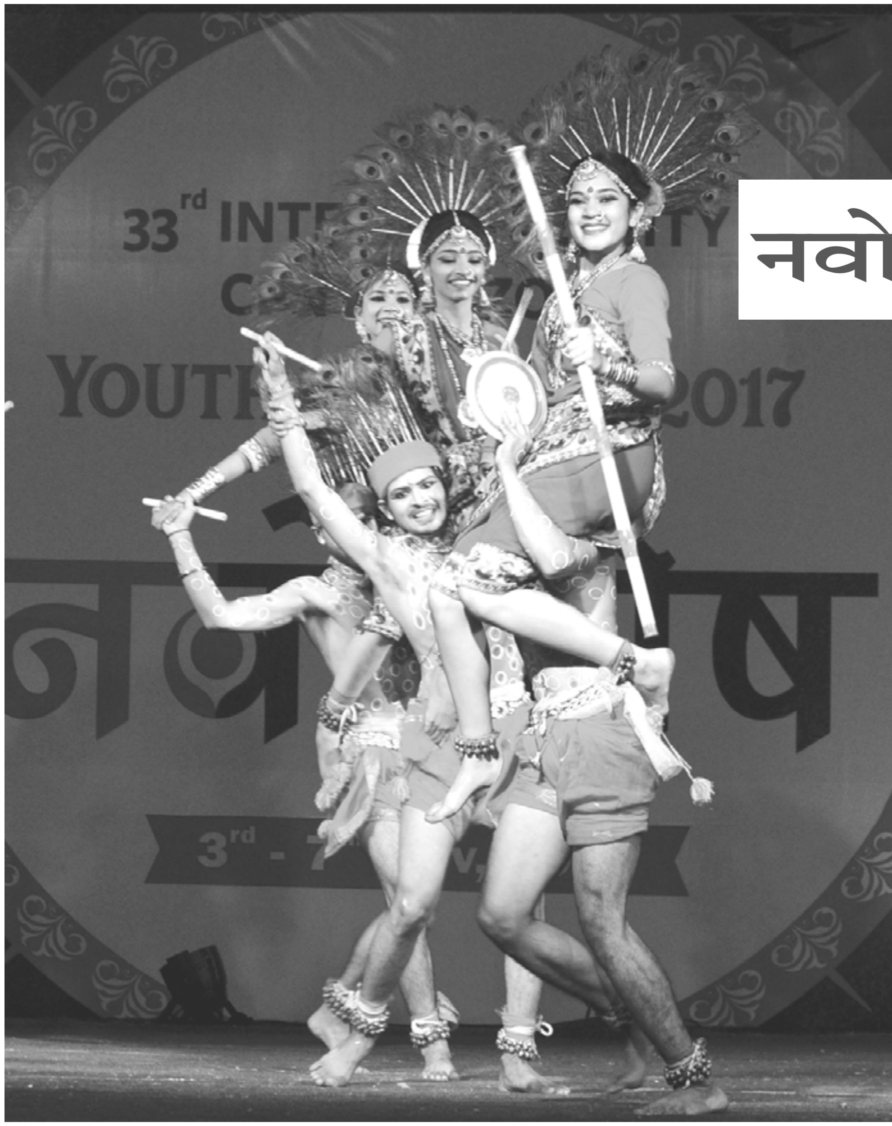

नवोन्मेष

विनय उपाध्याय

सृजनात्मक बेचैनियाँ सौगंधों की सतह पर ही अपने उत्सव रचती हैं। एक ऐसी ही रूपहली दुनिया गढ़ने के इरादे के साथ 'नवोन्मेष' ने अपनी आँखें खोलीं और तरुण पीढ़ी के साथ कला की लुभावनी लेकिन रचनात्मक डगर पर पाँव नापना शुरू किया। भारत की हरियाती सांस्कृतिक भूमि पर यह एक और बीज के चटखने की आवाज़ थी। 'नवोन्मेष का बावरा मन अपने सपनों के मिट्टी-गारे को संजोकर एक नई कायनात को आकार देने मचल पड़ा है। यह सूत्र हाथ लगा कि जीवन को गहरे में समझने और बेहतर बनाने के रास्ते रंगमंच और कलाओं से होकर गुज़रते हैं। ये वो ज़रिया है, जहाँ से नई प्रेरणा और सोच का उजाला फूटता है। बस, यही दर्शन नई दिशाओं के सुदूर विस्तार की ओर ले गया। 'नवोन्मेष' एक ऐसे कला-कुटुम्ब की शक्ल ले चुका है जिसके पास आचरण, अभ्यास जिज्ञासा, उत्साह हौसले और परिश्रम की पूँजी है। मन में अपनी परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति गहरा मान है। अपने वक्ती दौर की बदलती सूरत और ज़रूरत को लेकर चिंताएँ हैं। यह फिक्र भी कि हमारे समय का रंगमंच महज़ मनोरंजन का सतही ताना-बाना नहीं बल्कि सांस्कृतिक हस्तक्षेप और वैचारिक उद्वेलन की जगह भी बने।

दिलचस्प यह कि 'नवोन्मेष' की अब तक की बहुत छोटी यात्रा में दर्ज़ सक्रियता के आसपास इन तमाम मंशाओं को साकार होता देखा जा सकता है। निश्चय ही इसका श्रेय भारतीय विश्वविद्यालय संघ को जाता है। हमें इस बात की प्रसन्नता और संतोष है कि 'नवोन्मेष' के इस प्रतिभा उत्सव की तैंतीसवीं व्यापक गतिविधि को आयोजित करने का सौभाग्य आईसेक्ट विश्वविद्यालय को भोपाल में हासिल हुआ। यह विश्वविद्यालय अपनी शैक्षिक यात्रा और मकसद में शुरू से ही साहित्य और संस्कृति का हिमायती रहा है। और इसका पूरा श्रेय विश्वविद्यालय के संस्थापक, कुलाधिपति श्री संतोष चौबे को है। उन्हीं के मार्गदर्शन में विश्वविद्यालय अपने अनूठेपन के साथ उपलब्धियों के शिखर छू रहा है। यह भी कि आईसेक्ट विश्वविद्यालय 'नवोन्मेष' की इस अंतरविश्वविद्यालयीन गतिविधि को संयोजित करने वाला पहला निजी विश्वविद्यालय है। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश के करीब डेढ़ हज़ार छात्र-छात्राओं की सृजनात्मक ऊर्जा से पाँच दिनों तक हमारा परिवेश महकता रहा और सांस्कृतिक सौहार्द, समरसता और रचनात्मक विनिमय का एक खुला मंच इस तरह तैयार हुआ। हमारा समूचा सांस्कृतिक मानस इसी कलात्मक विविधता, सौन्दर्य बोध और अपार आनंद से सराबोर रहा। एक विधा से दूसरी विधा गुपचुप संवाद करती रही।

कहीं कोई कविता, कोई छंद, सुर-ताल से हमजोली करती रही। कहीं देह की भाषा उसके मर्म को नृत्य में अभिव्यक्त करती रही। कहीं कोई कथा नाटक रंगमंच पर अभिनय की छवियों में साकार होते रहे तो रंग-रेखाओं और मूर्ति-शिल्पों में कोई भावमय लगन जीवन के देखे-अनदेखे दृश्यों को उकेरती रही। बेशक इस उत्सव की आहट स्मृतियों में अमिट रहेगी।

गमक उठा मादल थिरक उठे पाँव...

सुनीता सिंह

पाँच दिनों के बंद लिफ़ाफ़ों में, खुशबुओं की चिट्ठियाँ थीं, रंगों के पाँव थे, रौशनी के गाँव थे। एक-एक कर ये लिफ़ाफ़े खुलते गए...और उन चमकीले दिनों की डोरी पर झूलने लगा इन्द्रधनुष। धूप, तितली, हवा, चाँद...सब सँवर रहे थे... महक रहे थे... कि कला की कस्तूरी बह रही थी। अपने 50 एकड़ के विस्तार में आईसेक्ट विश्वविद्यालय (भोपाल) 'नवोन्मेष' देख रहा था।

तैंतीसवाँ अंतरविश्वविद्यालयीन युवा उत्सव 2017, जिसकी मेजबानी भी उसी के जिम्मे थी। किसी निजी विश्वविद्यालय के हिस्से आई मेजबानी की ये पहली उपलब्धि थी, सो आईसेक्ट परिवार का उत्साह भी दुगुना था। भारतीय विश्वविद्यालय संघ द्वारा आईसेक्ट विश्वविद्यालय भोपाल में आयोजित, सेन्ट्रल जोन का ३३वाँ यूनीफेस्ट 2017 'नवोन्मेष' युवाओं के लिए कला के असीम में प्रवेश का द्वार बना। दरअसल कलाओं का आह्वान, चलते चले जाने का रहा है, कोई गंतव्य नहीं है उसका। बस, एक राह है, जो क्षितिज के पार जाती नजर आती है। कुछ फ़ासला तय कर लें तो एक 'नया क्षितिज' नज़रों की नई हद हर बार एक नया क्षितिज रच देती है और इस निस्सीम में कला यात्रा, सतत जारी रहती है। छः राज्यों म.प्र., छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडू और आंध्रप्रदेश के विश्वविद्यालयों से आईं डेढ़ हजार युवा प्रतिभाओं ने, एक दूसरे के कला संसार के संस्पर्श से निश्चित ही कला के इस अनंत आकाश को जाना भी और माना भी। इतना ही नहीं, इस 5 दिनी जश्न के आरंभ के साथ ही छः राज्यों के, अलग रंग, अलग खुशबुओं ने अलग बोली भाषा के जायकों, अलग स्वर संगीत और भरी-पूरी संस्कृति ने एक दूसरे को जाना-पहचाना और इस आयोजन के समापन तक एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले वो टहलती नजर आईं।

छः राज्यों म.प्र., छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडू और आंध्रप्रदेश के विश्वविद्यालयों से आईं डेढ़ हजार युवा प्रतिभाओं ने, एक दूसरे के कला संसार के संस्पर्श से निश्चित ही कला के इस अनंत आकाश को जाना भी और माना भी। इतना ही नहीं, इस 5 दिनी जश्न के आरंभ के साथ ही छः राज्यों के, अलग रंग, अलग खुशबुओं ने अलग बोली भाषा के जायकों, अलग स्वर संगीत और भरी-पूरी संस्कृति ने एक दूसरे को जाना-पहचाना और इस आयोजन के समापन तक एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले वो टहलती नजर आईं।

ये सब कुछ मात्र एक दृश्य नहीं था बल्कि 'नवोन्मेष 2017' के आयोजन को लेकर आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे की आश्वस्ति का साकार रूप था कि ये समारोह स्थाई सांस्कृतिक मैत्री का प्रतीक बनेगा। सांस्कृतिक, आदान-प्रदान के माध्यम से विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के युवाओं के बीच, स्नेहिल आपसदारी और अपनी एक राष्ट्रीय पहचान की दिशा में जागरूकता के विराट उद्देश्यों को खुद में समेटे, 'नवोन्मेष 2017' का शुभारंभ शुक्रवार 3 नवंबर को, सांसद आलोक संजर, भारतीय विश्वविद्यालय संघ के संयुक्त सचिव सैम्पसन डेविड, आईसेक्ट विश्वविद्यालय कुलाधिपति, शिक्षाविद् और संस्कृतिकर्मी संतोष चौबे, कुलपति डॉ. ए.के. ग्वाल, पर्यवेक्षक रंजनराय सहित देश-विदेश से पधारे गणमान्यजनों की उपस्थिति में हुआ।

नवोन्मेष के पहले दिन पारंपरिक वेशभूषा और आंचलिक संगीत और नृत्य के साथ होशंगाबाद रोड स्थित वृंदावन गार्डन से लेकर स्कोप कैम्पस तक निकला युवाओं का चल समारोह हमारे सांस्कृतिक वैविध्य की एक गौरवशाली कविता-सा लग रहा था। जो भी देखता, कुछ पल ठहर कर उसे पढ़ना चाहता। इस अवसर पर उद्घाटन समारोह में, आईसेक्ट विश्वविद्यालय ने एक भारत की अतिथि परंपरा को अभिव्यक्त करती नृत्य प्रस्तुति दी। और इस अतिथि सत्कार के साथ ही आरंभ हुआ रंगारंग प्रस्तुतियों का सिलसिला जो पूरे पांच दिन कला के विभिन्न स्वरूपों में अपने रंग बिखेरता रहा।

देश के छः अलग-अलग राज्यों के लगभग 25 विश्वविद्यालय की चयनित युवा प्रतिभाओं ने कबा की विभिन्न विधाओं में अपनी मौलिक प्रस्तुति देते हुए छात्र-छात्राओं/विद्यार्थियों कला रसिकों और निर्णायक मण्डल का मन मोह लिया। इन युवा प्रतिभाओं ने, जहाँ विश्व पटल पर स्वर संवाद स्थापित करने की मज़बूत ज़िद रखते हुए पाश्चात्य संगीत की दमदार प्रस्तुति दी। वहीं हमारी विरासत, हमारी अनमोल निधि भारतीय शास्त्रीय संगीत की, दोनों धाराओं (हिन्दुस्तानी और कर्नाटक शैली) के ज़िम्मेदार (और रियाज़ी) कण्ठों में संरक्षित होने की पुष्टि भी की। सार्वभौमिक भाषा, सार्वभौमिक वेशभूषा में ढलता और अत्याधुनिक गैजेट्स से लेस आज के युवा का लोक से जुड़ना जैसे अपने हस्ताक्षर तलाशना था। खुद से बा होश दोबारा परिचय करना था। लोक के बहाने से, सिनेप्लैक्स में एन्जॉयमेन्ट का आदी आज का युवा, नीम की छाँव का अर्थ भी समझ रहा था।

साहित्य, संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकारी जैसी बहुरंगी कलाओं का ये जलसा उस रंगमंच को भी छूकर गुज़रा, जिससे जीवन का कोई भी स्वाद अछूता नहीं है। रंगमंच जीवन का मिनिएचर है। समग्र जीवन की व्याख्या और विमर्श की उसकी लंबी परंपरा रही

है। उस परंपरा से जुड़कर इन युवाओं ने कुछ गंभीर तो कुछ चुटीले विषयों पर सार्थक संवाद भी किया। मनुष्य की सोच का विषय और दिशा, उसके समाज, देश और दुनिया की दिशा तय करते हैं। जीवन उसके विचारों का आईना ही है। इसलिए आवश्यक है किसी बात, विषय, घटना के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल। नवोन्मेष में इन युवाओं की बानगी, विचार और विश्लेषण की कला का वाद-विवाद, पक्ष-प्रतिपक्ष सुनना भी एक बेहद रोमांचक अनुभव रहा।

कलाएँ, भावनाओं की रचनात्मक और सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति तो हैं ही, वो मनुष्य के आदिम अवकाश का उद्घोष भी हैं। अस्तित्व के उन आरंभिक दिनों में किसी विषय, किसी संतुष्टि, किसी उपलब्धि के बाद जब संघर्ष ने किसी गुफा से टिक कर, अपनी उखड़ती सांसें संभाली होंगी, जब जीवन में पहले-पहल, निश्चिंतता ने प्रवेश किया होगा उस पहले निश्चिंत पल उस अवकाश का उत्सव है- ''कलाएं''। नवोन्मेष भी, घोर प्रतिस्पर्धा और तनाव से घिरी आज की युवा पीढ़ी के लिए एक सुरीला, रचनात्मक अवकाश बना।

बहुत कुछ हासिल करने के पारिवारिक और सामाजिक दबाव तथा आभारी दुनिया और वास्तविक दुनिया के बीच उलझे युवा मन में ऐसे कला उत्सव एक अल्पविराम की तरह उतरते हैं जहां, दरअसल वो खुद को पाता है। वो जमीन, जहाँ तमाम दुनियाबी शोर से किनारा करके, वो अपनी धड़कनें सुन सकता है। अपना मन, कह सकता है। क्षेत्र कोई भी हो। पृष्ठ तथ्य यही है कि इस दुनिया में सफलता के शीर्ष पर बैठे अधिकांश व्यक्तियों में अपने विचारों को 100 प्रतिशत अभिव्यक्त करने का कौशल रहा है। और कला का आँगन अभिव्यक्ति कौशल की पाठशाला भी है। नवोन्मेष शब्द, स्वर, ताल, लय, रंग और भावों का आधार लिये विभिन्न कला विधाओं के माध्यम से, युवाओं के इस कौशल की जांच परख का मंच भी रहा। यहां अथक परिश्रम और लगन से की गई अनेक प्रस्तुतियां थीं, सघन प्रतिस्पर्धा थी, जीत हार भी थी लेकिन सर्वश्रेष्ठ के लिए, हर हथेली से गूँजता उदार स्वीकार्य भी था। कला कोई भी हो उसका अंकुरण संवेदना की ज़मीन पर ही लेता है। कलाएँ, कोमलता के बीजमंत्र से ही, प्रस्फुटित होती है, और हमारे भाव संसार को, अंतरतम को नम बनाए रखती हैं। मन का ये भीगा होना कहीं न कहीं मनुष्य के इंसान बने रहने की आश्वस्ति भी है। वो भीगा सा मन ही है, जो दूसरों को, उनके हिस्से की ज़मीन, उनके हिस्से का आसमान दे पाता है। वो भीगा सा मन ही है जो दोनों बाहें फैलाकर दूसरे की जीत को भी गले लगा पाता है।

दरअसल जीवन में कलाओं की उपस्थिति मनुष्य के मस्तिष्क व्यवहार को भी बदल देती है इसीलिए 'कला समय' प्रार्थना के पलों सा पवित्र माना गया है जिसमें हमेशा से, शुभ और मंगल की सर्जना होती रही है, जिसमें जीवन का सौंदर्य मुस्कुराता रहा है। फ्रांज काफ्का का कथन है- ''युवा खुश रहता है, क्योंकि उसमें सौन्दर्य देखने की क्षमता होती है। जो व्यक्ति खूबसूरती को तलाश सकता है, कभी बूढ़ा नहीं होता।'' और निश्चित ही जीवन में प्रवाहित सौन्दर्यधारा को एक रूप देने की कोशिश है कला।

कलाएँ हमारे आसपास बिखरे तमाम रंग रौशनी और महक का अनुवाद है और इस अनोखी अनुवाद परंपरा के संजोए, इन युवा प्रतिभाओं ने पांच दिन बाद ७ नवंबर को जब आईसेक्ट के आत्मीय परिसर से विदा ली... तो भविष्य के अनगिनत मयूरपंखी सपने कितनी ही देर हवाओं में तैरते रहे... कहते रहे कि जीवन के अपने हिस्से के सारे बरस जी लेने के बाद भी ये 'मन' कभी बूढ़े नहीं होंगे। ...हम कभी बूढ़े नहीं होंगे।

नवंबर का महीना झीलों, शैल शिखरों और कलाओं की नगरी भोपाल और यहां के युवाओं के लिए ख़ास रहा। सात राज्यों के दो दर्जन विश्वविद्यालयों के लगभग डेढ़ हजार युवाओं के आगमन से संस्कृति के अनेक रंग एक बार फिर यहां कि फ़िज़ाओं में घुल गए। युवाओं के इस महाकुंभ ने एक बार फिर ये साबित कर दिया कि भारत का युवा महज गीत-संगीत, डांस, ड्रामा, वेस्टर्न म्यूजिक और हल्ला-गुल्ला करने तक ही नहीं सीमित है बल्कि उसके पास विचारों और तर्कों की तेज़ धार, ओजपूर्ण भाषा और ग़ज़ब का आत्मविश्वास भी है। प्रकृति की गोद और हरी-भरी वादियों के बीच स्थित आईसेक्ट विश्वविद्यालय में आयोजित इस पांच दिवसीय इस आयोजन में आए ये बच्चे अपने साथ सांस्कृतिक मैत्री और समरसता का संदेश दे गया।

संस्कृति की तन्मय तान

वासंती रंगों से महकी आईसेक्ट विश्वविद्यालय की वादियाँ

विक्रांत भट्ट

ये आयोजन महज एक प्रतियोगिता ही न रहकर विभिन्न संस्कृतियों का समागम बन गया, जहां अलग-अलग प्रांतों से आए युवाओं ने अपनी संस्कृति और लोक कलाओं को एक दूसरे से साझा किया और ये सिखाया कि वो कौन सा भाव रस है जो सारे सरहदी फासलों को मिटाकर एक आंगन में ले आता है और मनुष्यता का संचार करता है। युवाओं का ये समागम आईसेक्ट विश्वविद्यालय में युवा उत्सव नवोन्मेष-2017 के बहाने हुआ।

भारतीय विश्वविद्यालय संघ के इस इंटर यूनिवर्सिटी युवा उत्सव का आगाज़ 3 नवंबर को होशंगाबाद रोड स्थित वृंदावन गार्डन से लेकर स्कोप कैम्पस तक एक चल समारोह से हुआ। अपने क्षेत्रीय संगीत और नृत्य से युवाओं ने अपनी आमद दर्ज कराई तो राहगीर भी ठिठक कर उनके इस उत्साह के साक्षी बने और एक बार फिर ये साबित हुआ कि भारत की संस्कृति अनेकता में एकता की संस्कृति है, सौहार्द्र की संस्कृति है और सामाजिक समरसता की संस्कृति है।

शुभारंभ समारोह 3 नवंबर को विश्वविद्यालय परिसर में सांसद श्री आलोक संजर के मुख्य आतिथ्य में हुआ। इस मौके पर आईसेक्ट विवि के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, आईसेक्ट विवि के कुलपति श्री ए.के. ग्वाल, भारतीय विवि संघ के संयुक्त सचिव डॉ. सैम्पसन डेविड एवं पर्यवेक्षक प्रो. रंजन रॉय भी मंचासीन थे। आमंत्रित अतिथियों ने एक स्वर में युवाओं का इस्तकबाल करते हुए ये आशा जताई कि आने वाले भारत का सांस्कृतिक भविष्य इन युवाओं पर ही निर्भर है। ये युवा शक्ति ही हमारे देश का सच्ची धन संपदा है। आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने आईसेक्ट विश्वविद्यालय की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि आईसेक्ट विश्वविद्यालय एक अलग सोच से निर्मित विश्वविद्यालय है जिसका खास ध्यान इस बात पर है कि युवाओं में कौशल विकास पर विशेष ध्यान दिया जाए। स्वागत भाषण विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री विजय सिंह ने दिया। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री ग्वाल ने इस आयोजन की रूपरेखा बताई। इस मौके पर उद्घाटन सेरेमनी में आईसेक्ट विश्वविद्यालय की टीम ने एक वेलकम फ्यूजन डांस की प्रस्तुति दी। समारोह का संचालन प्रसिद्ध कला समीक्षक व उद्घोषक श्री विनय उपाध्याय ने किया।

चिकलोद रोड पर स्थित आईसेक्ट विश्वविद्यालय के लगभग 50 एकड़ के इस परिसर में छ: राज्यों के 25 विश्वविद्यालयों की टीम ने इस युवा उत्सव के लिए पंजीयन कराया।

4 नवंबर को विश्वविद्यालय के मैदान में निर्मित विशाल डोम में प्रातः 10 बजे से थियेटर में वन एक्ट प्ले प्रतियोगिता हुई। इस प्रतियोगिता में लगभग 11 विश्वविद्यालय की टीमों ने शिरकत की। जिसमें पहली प्रस्तुति रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर के नाट्य दल की हुई। उन्होंने विजयदान देथा की कहानी स्वांग पर आधारित नाटक प्रस्तुत किया। जिसमें एक भांड वहां के राजा की इच्छा पर डायन का रूप धर कर उसके साले का कलेजा निकाल देता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। इस पर राजा की पत्नी उस भांड को मृत्यु दंड देने को कहती है। राजा भी उस भांड को पुरस्कृत करने के बजाय उसे छल से मौत के घाट उतारने की योजना बनाता है। इसके अलावा इस प्रतियोगिता में उस्मानिया विवि हैदराबाद, विक्रम विवि उज्जैन, आईसेक्ट विवि भोपाल, पंडित रविशंकर विवि, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विवि छतरपुर, बरहामपुर विवि ओडिशा, आरटीएम विवि नागपुर, बुंदेलखंड विवि झांसी, और माखनलाल विवि भोपाल ने विभिन्न विषयों पर गंभीर संदेश देने वाले नाटकों की प्रस्तुति दी। इस प्रतियोगिता में प्रत्येक दल को लगभग 30 मिनिट का समय दिया गया था, और हर दल में 9 कलाकारों के साथ तीन सहयोगी शामिल थे। नाट्य प्रतियोगिता में प्रवीण वशिष्ठ, हितेन्द्र गोयल और अजित राय निर्णायक के रूप में उपस्थित थे।

क्लासिकल और वेस्टर्न सोलो : शारदा ऑडिटोरियम में क्लासिकल सोलो गायन प्रतियोगिता में लगभग २५ विश्वविद्यालय के युवाओं ने सुमधुर रागों पर आधारित गीतों की प्रस्तुति देकर उपस्थित श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया। इस प्रतियोगिता में रानी दुर्गावती विवि जबलपुर, उस्मानिया विवि हैदराबाद, विक्रम विवि उज्जैन, आईसेक्ट विवि भोपाल, पंडित रविशंकर शुक्ल विवि रायपुर, माखनलाल चतुर्वेदी विवि भोपाल, राजीवगांधी प्रौद्योगिकी विवि भोपाल, आईटीएम ग्वालियर, दुर्ग विवि, बेहरामपुर विवि ओडिशा, डॉ. हरि सिंह गौर विवि सागर, बुंदेलखंड वि.वि. झांसी, संत गाडगे बाबा विवि अमरावती, इंदिरागांधी कृषि विवि रायपुर, इंदिरा कला संगीत विवि खैरागढ़, मानसिंह तोमर विवि, बस्तर विवि जगदलपुर, देवी अहिल्या विवि इंदौर, आरटीएम विवि, महाराष्ट्र, जीवाजी वि.वि., ग्वालियर ने शिरकत की। यहां इन प्रतिभाओं में से चयन करने के लिए ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ उस्ताद साजिद खान, श्री सारंगधर साठे और देवेन्द्र कुमार वर्मा निर्णायक के रूप में मौजूद थे।

इसी तरह वेस्टर्न सोलो गायन प्रतियोगिता में लगभग 17 विश्वविद्यालय के प्रतिभागियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। यहां श्री बेनी शर्मा, श्री ललित नारंग और श्री राजेश मैथ्यू निर्णायक के रूप में उपस्थित थे। इस प्रतियोगिता में पहली प्रस्तुति आईसेक्ट विश्वविद्यालय की छात्रा ने दी। उन्होंने डिजिटल इंडिया पर आधारित एक अंग्रेजी गीत प्रस्तुत किया।

स्पॉट पेंटिंग : इंजीनियरिंग ब्लॉक के सेमिनार हॉल में स्पॉट पेंटिंग के लिए करीब 23 विश्वविद्यालय के फाइन आर्ट्स के विद्यार्थियों ने शिरकत की। इस प्रतियोगिता में प्रतिभागियों को मेरा शहर और त्यौहार ये दो विषय पर आधारित चित्र बनाने थे। जिसके लिए उन्हें लगभग 2 घंटे 30 मिनिट का समय दिया गया था। इस प्रतियोगिता में दिल्ली के श्री वकार हुसैन और उज्जैन से श्री आर.सी. भावसार निर्णायक के रूप में उपस्थित थे।

नवोन्मेष 2017 में अपनी आमद दर्ज़ करते हुए मध्यप्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री जयभान सिंह पवैया और संस्कृति मंत्री सुरेन्द्र पटवा साथ में आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे, कुलसचिव विजय सिंह और निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी

रंगोली बनी आकर्षण : कैम्पस की साज सज्जा के लिए बनाई गई रंगोली सभी के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। रंगोली के निर्माण के लिए रायपुर से रंगोली विशेषज्ञ श्री शिवा मानीकपुरी को आमंत्रित किया गया है, जो अपनी इस रंगोली कला में माहिर हैं। कैम्पस में निर्मित विशाल डोम के बाहर उन्होंने एक रंगोली का निर्माण किया है जिसमें उन्होंने बाहुबली फिल्म की देवसेना का चित्र निर्मित किया है। वे एक और रंगोली का निर्माण कर रहे है जिसमें वे चर्चित फिल्म पद्मावती का दृश्यांकन कर रहे हैं। उन्हें इस तरह की एक रंगोली को बनाने में लगभग 10 घंटे का समय लगता है।

कैम्पस में स्क्रीन : विस्तृत रूप से फैले हुए आईसेक्ट विवि के इस कैम्पस में लगभग चार-पांच जगह विभिन्न प्रतियोगिताओं के आयोजन को बाहर से आए सभी विद्यार्थियों तक पहुंचाने के लिए भोजन शाला और मैदान एवं प्रतियोगिता स्थलों पर स्क्रीन भी लगाई गई है। ताकि वे दिन भर की गतिविधियों का लुत्फ ले सकें।

वाद-विवाद प्रतियोगिता में उजागर हुआ युवाओं का वैचारिक विमर्श : युवा उत्सव के तीसरे दिन वाद-विवाद प्रतियोगिता में युवाओं का वैचारिक विमर्श उभरकर सामने आया। एक ओर जहां पक्ष के प्रतिभागियों ने दृढ़ता से कहा कि युवा महोत्सव देश में शांति, विकास और प्रतिभाओं को बढ़ावा देने का ज़रिया है वहीं विपक्ष के प्रतिभागियों ने अपने तीखे तर्कों से ये साबित करने की कोशिश की कि ये प्रतिस्पर्धाएं महज एक होड़ को बढ़ावा देने का उपकरण मात्र है। इस स्पर्धा में युवा सोच की मौलिक और अनूठी बानगी देखने को मिली। पक्ष के प्रतिभागी आपसी सद्भाव, संस्कृतियों के समन्वय, सोच के विस्तार और ज्ञान एवं स्नेह के विकास की सुंदर और सकारात्मक बात कर रहे थे वहीं विपक्ष के छात्र इन महोत्सव को गलाकाट स्पर्धा वर्ग-भेद, भाषा भेद, नगरीय और ग्रामीण क्षेत्र इत्यादि के संघर्ष से आहत थे। इस स्पर्धा में 25 विश्वविद्यालय से लगभग 50 प्रतिभागियों ने शिरकत की। स्पर्धा में श्री के.पीएस. शांतेय चंडीगढ़, श्री विभांशु जोशी भोपाल और श्री अनूप मंचलवार नागपुर निर्णायक के रूप में उपस्थित थे।

लोक वाद्य वृंद : इस प्रतियोगिता में जब युवाओं के बीच जब हुलगी, ताशा, ढ़ोल, मृदंग, डायका, तुंगी, तुनतुना, टिमकी, बगल बच्चा, तोड़ी बांस गीत जैसे अनेक पारंपरिक वाद्यों की जुगलबंदी जब शुरू हुई तो पाश्चात्य धुनों और हाईवोल्टेज डीजे पर झूमने वाला युवा अपने आप को हर्ष ध्वनि और तालियों की गड़गड़ाहट से रोक नहीं पाया। पुस्तकालय के समीप निर्मित मंच पर फोक आर्केस्ट्रा स्पर्धा का आयोजन हुआ। इस प्रतियोगिता में कुल 4 विश्वविद्यालय के प्रतिभागियों ने अपनी प्रस्तुति दी। पहली प्रस्तुति आरटीएम विवि नागपुर के विद्यार्थियों ने दी। इंदिरा गांधी कृषि विवि रायपुर के विद्यार्थियों ने नगाड़ा, निशान, तुड़तुड़ी, ढुंढरा, मोहरी, बांसुरी, तोड़ी, बांसगीत, झांझ, चुटकी, मांरी, मांदल, सुपा, जगार घुमर जैसे वाद्यों से छत्तीसगढ़ की पांरपरिक धुनें पंथी, जसगीत, गौरीगोरा, गनेश, काकसार आदि प्रस्तुत की। 9 मिनिट की इस प्रस्तुति में 9 प्रतिभागियों और 3 सहयोगियों ने उपस्थित श्रोताओं का मनमोह लिया। इसी तरह संत गाड़गे विश्वविद्यालय अमरावती के विद्यार्थियों ने लगभग 40 वाद्यों का उपयोग करते हुए महाराष्ट्र की पारंपरिक धुन नांदड़ी, पावरा, गुदड़ प्रस्तुत की। उन्होंने हुलगी, ताशा, ढ़ोल, ढ़ोलकी, मृदंग, डायका, तुंगी, घुंघरू, बांसुरी, तुनतुना, टिमकी, चंडा जैसे वाद्यों का उपयोग किया। चौथी व अंतिम प्रस्तुति आईसेक्ट विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की रही। उन्होंने ढ़ोलक, ढ़ोल, नगाड़ी, नगाड़ा, ढफ, मंजीरे, झांझ, कांसे का लौटा, बांसुरी वाद्यों से मालवी, लांगुरिया, झाबुआ के आदिवासी धुन और बुंदेलखंड का राई नृत्य पेश किया। इस प्रतिस्पर्धा में जय श्री राय, सारंगधर साठे और मदन मोहनलाल निर्णायक के रूप में उपस्थित थे।

स्क्रिप्ट, मिमिक्री और माइम-मिमिक्री : राजा मानसिंह तोमर विवि के छात्र सिद्धार्थ विजय ने ट्रेन से देश में घुमते हुए ट्रेन की आवाज़, जानवरों की आवाज, चाय वाले की आवाज़, भिखारी की आवाज़ निकाली। इसके अलावा अभिनेताओं की आवाज़ सुनील शेट्टी, सन्नी देओल, नाना पाटेकर, इरफान खान की आवाज़, के साथ हाल ही के भोपाल गैंग रेप का समाचार, और अंत में भगवान की आवाज़ निकालते हुए कहा कि जब तक कलयुग खत्म नहीं होगा सत युग नहीं आएगा प्रभावी रहा। इसके अलावा आईसेक्ट विश्वविद्यालय के छात्र संतोष ने गोलमाल ५ सिक्वेल का प्रस्तुतिकरण दिया। उन्होंने इस फिल्म के कलाकारों की आवाज़ दी। इसके अलावा सन्नी देओल, अमरीश पुरी, तुषार कपुर नाना पाटेकर की आवाज़ें निकाली। बुंदेलखंड विवि के छात्र ने भी अपनी प्रस्तुति से मनमोहा। उन्होंने

जंगल के जानवरों हाथी मोर, कुत्ते की विभिन्न नस्लों की आवाज़ निकाली। विक्रम विवि के छात्र ने विभिन्न प्रकार की मशीनों की आवाज़ और बंगाल का मुर्गा आदि। जीवाजी विवि के छात्र ने ट्रेन की आवाज़ निकाली।

स्कीट-इस प्रतियोगिता में लगभग 18 विश्वविद्यालयों ने प्रतिभागिता की। इसमें बुंदेलखंड विवि झांसी के विद्यार्थियों ने छुआछुत पर आधारित स्कीट प्रस्तुत किया। आईसेक्ट विश्वविद्यालय के छात्रों ने पर्यावरण का संदेश देते हुए पेड़ लगाओ और पेड़ बचाओ का संदेश दिया। डॉ. सीवी रमन विवि के बच्चों ने बढ़ते हुए वायु प्रदूषण पर अपनी चिंता व्यक्त की। देवी अहिल्या विवि इंदौर के बच्चों ने भ्रष्टाचार पर करारा प्रहार किया। डॉ. हरिसिंह गौर विवि सागर के बच्चों ने नवोन्मेष एक्सप्रेस से भारत भ्रमण करते हुए देश में व्याप्त अव्यवस्थाओं और घोटालों पर रौशनी डाली। दोनों ही प्रतियोगिता में डॉ. हितेन्द्र गोयल, श्री प्रवीण वशिष्ठ निर्णायक के रूप में उपस्थित थे।

लाइट वोकल सोलो : इसमें लगभग 21 विवि के प्रतिभागियों ने शिरकत की। इसमें राजा मानसिंह तोमर विवि विद्यार्थी वीरेन्द्र ने अहमद रज़ा साहब की ग़ज़ल अब से मकां में मेरा चिराग जलता है जहां पहुंच के हवाओं का दम निकलता है पेश किया। इससे पूर्व देवी अहिल्या विवि की छात्रा ने दिल धड़कने का सबब याद आया, वो तेरी याद थी अब याद आया। दुर्ग विवि के प्रतिभागी ने राजेश रेड्डी की लिखी ग़ज़ल और नमन दत्त का कंपोजिशन ये जो ज़िंदगी की किताब है ये किताब भी क्या किताब है प्रस्तुत की। स्पॉट फोटोग्राफी प्रतियोगिता का आयोजन भी हुआ। इसमें भी बाहर से आई विश्वविद्यालयों की टीमों ने प्रतिभागिता की।

नवोन्मेष के चौथे दिन हुई क्लासिकल सोलो डांस और फोक ग्रुप डांस प्रतियोगिता- सुबह के सत्र में आयोजित हुई क्लासिकल सोलो डांस कॉम्पिटीशन में लगभग 11 विश्वविद्यालय के प्रतिभागियों ने शिरकत की। बेहरामपुर विश्वविद्यालय ओडिशा की प्रतिभागी ने ओडिशी डांस में राग मिश्रपीलू पर कृष्ण लीला का वर्णन किया। उन्होंने अपने नृत्य में कृष्ण की बाल लीलाओं के साथ पूतना वध और यशोदा मैया को मुख में ब्रम्हांड दर्शन की झांकी प्रस्तुत की। डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर की प्रतिभागी आरोही श्रीवास्तव ने कत्थक नृत्य द्वारा भगवान शिव की वंदना प्रस्तुत की। उन्होंने शिव के मन शरण हो तब तन

से प्राण निकले भजन पर बेहतरीन भाव भंगिमा और अपने नृत्य कौशल से दर्शकों से दाद बटोरी। संत गाडगे विश्वविद्यालय अमरावती की प्रतिभागी राधिका कुबड़े ने वसंत वासंती कुसुम सुकुमार पर ओडिशी नृत्य प्रस्तुत किया। इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ की प्रतिभागी ने लखनऊ घराना का कत्थक डांस प्रस्तुत किया। उन्होंने भवानी दयानी भजन पर देवी स्तुति प्रस्तुत की। इसके बाद राजा मानसिंह तोमर संगीत विश्वविद्यालय ग्वालियर की प्रतिभागी साक्षी ने नृत्य प्रस्तुत किया। इस प्रतियोगिता में प्रत्येक प्रतिभागी को 15 मिनिट की प्रस्तुति देनी थी। इस प्रतियोगिता में कलीमा मणि इंलेगोवन, डॉ. निष्ठा शर्मा और श्री मदन मोहन लाल निर्णायक के रूप में उपस्थित थे। शाम 4 बजे से ग्रुप फोक डांस प्रतियोगिता हुई। इस प्रतियोगिता में 21 विश्वविद्यालय के प्रतिभागियों ने अपनी आमद दर्ज कराई। क्विज कॉम्पिटीशन के पहले राउंड में लिखित टेस्ट हुआ। इसमें 12 विश्वविद्यालय के बीच प्रतियोगिता रही। हर टीम में3 प्रतिभागी शामिल थे। इस तरह कुल 36 प्रतिभागियों ने इस क्विज के लिखित टेस्ट में हिस्सा लिया। इस क्विज के फाइनल राउंड में 6 टीमों के बीच प्रतिद्वंद्विता रही। जिसमें रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, आरटीएम विश्वविद्यालय नागपुर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय भोपाल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल, बेहरामपुर विश्वविद्यालय ओडिशा शामिल है। इस प्रतियोगिता में क्विज मास्टर श्री के.पी.एस. शांति चंडीगढ़ और अनूप मनचलवार नागपुर रहे। रंगोली प्रतियोगिता में 24 विश्वविद्यालय के प्रतिभागियों ने

पांरपरिक और अपने राज्य व शहर की झांकियों को अपनी रंगोली कला में प्रस्तुत किया। उन्होंने रंगों को अपनी अभिव्यक्ति की लेखनी बनाते हुए अपनी कला में परंपरा को कुछ इस तरह प्रस्तुत किया कि देखने वाले देखते रह गए। इस प्रतियोगिता में श्री पद्मचंद्र, श्री अनुपम भटनागर और श्री आर.सी. भावसार निर्णायक के रूप में मौजूद रहे।

समापन समारोह में स्मारिका नवोन्मेष का विमोचन- भारतीय विश्वविद्यालय संघ और आईसेक्ट विश्वविद्यालय द्वारा सेन्ट्रल जोन के इंटरयूनिवर्सिटी युवा उत्सव नवोन्मेष का 7 नवंबर को विधिवत समापन हुआ। इस मौके पर पांचों दिन आयोजित विभिन्न प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कृत भी किया गया। इस मौके पर आमंत्रित अतिथियों द्वारा आईसेक्ट विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित स्मारिका नवोन्मेष का विमोचन भी किया गया। इस स्मारिका में नवोन्मेष के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सृजनात्मक गतिविधियों पर केन्द्रित आलेख एवं गतिविधियों पर आधारित सामग्री सम्मिलित की गई।

समापन समारोह में मप्र शासन के उच्च शिक्षा मंत्री श्री जयभान सिंह पवैया मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि इस पूरे पांडाल में मुझे एक लघु भारत नज़र आ रहा है। ये सच में भारतीय संस्कृति पर आधारित युवा उत्सव है। उन्होंने कहा कि किसी देश की तरक्की की ताकत इस बात पर निर्भर होती है कि हम अपने देश के प्रति कितना आत्म गौरव करते हैं। शिक्षा पर बात करते हुए उन्होंने कहा कि

सिलेबस की सीमाओं में सिमटा ज्ञान लेकर डिग्री प्राप्त करना ही शिक्षा नहीं है। बल्कि सामाजिक सरोकारों से विद्यार्थी को जोड़कर उसे एक संपूर्ण नागरिक बनाना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। भारत के सुदूर इतिहास पर ग़ौर करें तो यह स्पष्ट है कि शिक्षा मानव के जीवन की समग्र तैयारी का पूर्ण ज्ञान है। समग्रता का यह बोध कला साहित्य और संस्कृति से अंतरंग होकर ही हासिल होता है।

मप्र शासन के संस्कृति एवं पर्यटन मंत्री श्री सुरेन्द्र पटवा विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि ये हम सभी का कर्त्तव्य है कि हम भारतीय परंपरा संस्कृति को सृजित करने का कार्य करें। उन्होंने कहा कि हमें सकारात्मकता के साथ लक्ष्य निर्धारित कर कार्य करना चाहिए। मप्र निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग के अध्यक्ष डॉ. अखिलेश पांडे विशेष अतिथि के रूप उपस्थित थे। उन्होंने भी संस्कृतिपूर्ण शिक्षा पर जोर देते हुए कुछ उदाहरणें से संस्कृति के महत्व पर प्रकाश डाला।

इस मौके पर आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने विश्वविद्यालय कि गतिविधियों पर प्रकाश डालते हुए संस्था द्वारा किए जा रहे नवाचारों पर विस्तार से बताया। उन्होंने कहा कि आईसेक्ट ने हमेशा ही हिन्दी भाषा और ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा और विज्ञान के प्रचार-प्रसार पर ध्यान दिया है। उन्होंने कहा कि आईसेक्ट में नवाचार की एक लंबी परंपरा रही है। जो आज भी निरंतर जारी है। रजिस्ट्रार डॉ. विजय सिंह ने स्वागत भाषण दिया। भारतीय विश्वविद्यालय संघ के पर्यवेक्षक प्रो. रंजन रॉय ने इस आयोजन की सफलता के लिए आईसेक्ट को बधाई दी। इस मौके पर डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर के टीम लीडर श्री राकेश सोनी और तेलंगाना की उस्मानिया विश्वविद्यालय की क्रोनिया इस्कला ने भी अपने अनुभव सुनाएँ। इस मौके पर कुलपति ए.के. ग्वाल भी मंचासीन थे। संचालन प्रसिद्ध कला-समीक्षक विनय उपाध्याय ने किया।

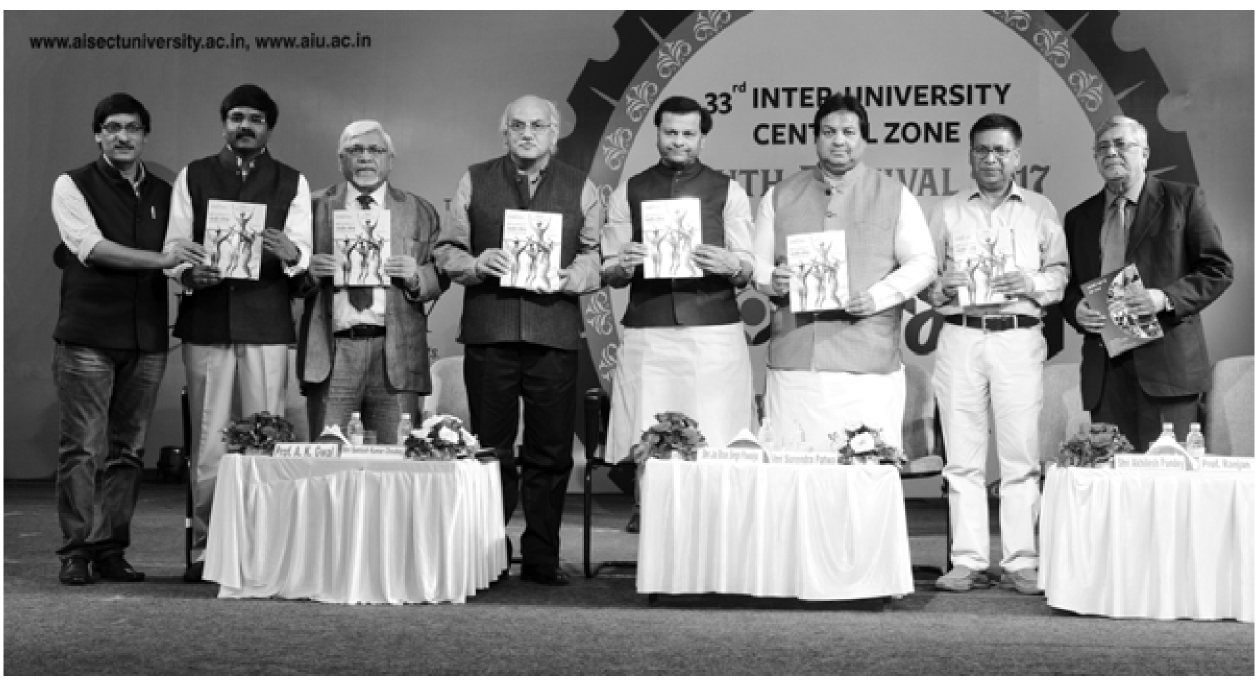

स्मृतियों का बहुरंगी दस्तावेज़ : स्मारिका 'नवोन्मेष 2017'

स्मृति शेष

सचिदा नागदेव

सहृदय चितेरा

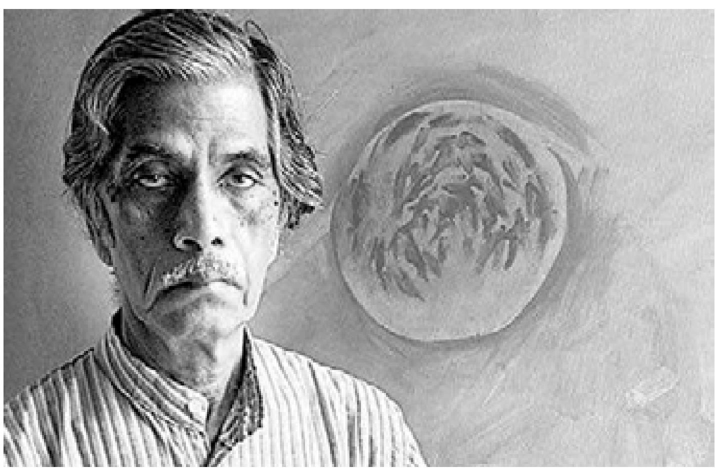

अखिलेश

सचिदा नागदेव चित्रकला की दुनिया में एक ऐसा नाम है जो अपने सद्भाव, सहृदय और उदार होने के कारण कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। सचिदा जी से मेरी मुलाकात की पहली स्मृति से ये छवि अमिट रही है। पिता के चित्रकार होने के कारण और वाकणकर साहेब के सान्निध्य में बहुत से कलाकारों से मिलना अत्यन्त औपचारिक रहा और ये मेरा सौभाग्य ही है कि मुझे शुरू से उन कलाकारों का सान्निध्य, मार्गदर्शन मिला जिनसे मेरे समकालीन मिलने के लिए प्रयत्न करते रहे। बेंद्रे, हुसैन, रज़ा, जोशी, चिंचालकर, दुबे सर या सचिदा इन सबसे मुलाकात सहज ही हुई और सबसे सम्बन्ध भी उतने ही सहज रहे। सचिदा जी के चित्रकार होने का परिचय मुझे वर्ष चौहत्तर में 'अँधेरे में' प्रदर्शनी से हुआ। ये प्रदर्शनी कला परिषद् की दीर्घा में थी और उन दिनों मैं पिता के साथ भोपाल आया हुआ था।

एक दोपहर मैं कला परिषद् पहुँचा और पाया कि वहाँ ये प्रदर्शनी चल रही है जिसमें मध्य प्रदेश के तीन कलाकारों के काम प्रदर्शित हैं। उस वक़्त मुझे अंदाज़ा नहीं था कि शीर्षक किसी कविता से लिया गया है, इसके पहले मैं एक प्रदर्शनी अँधेरे में देख चुका था सो सोचा ये भी कोई प्रदर्शनी होगी बिना रोशनी के किन्तु जगमगाती दीर्घा में बड़े कैनवास टंगे हुए थे और कुछ शिल्प प्रदर्शित थे। इस प्रदर्शनी के जिन चित्रों ने मुझ पर कुछ असर किया वे सचिदा के चित्र थे। विशाल कैनवास के अमूर्त आँगन के एक कोने में छोटी सी नायिका, अभिसारिका चित्रित थी। उन दिनों मैं दूसरे वर्ष का विद्यार्थी था और मेरे सपने इसी तरह के विशाल चित्र बनाने के हुआ करते थे। पहली बार इतने बड़े कैनवास दीर्घा में देख जो रोमांच हुआ उसका अन्दाजा आप नहीं लगा सकते। सचिदा ने जिस सहज ढंग से आधुनिक और पारम्परिकता का मेल करवाया वह दर्शनीय था। विशाल कैनवास, सहज चित्रण, उदार विषय वस्तु और अनिर्णित कविता सब संग था।

इस प्रदर्शनी को देखने के बाद मैंने कला परिषद् में किसी को ढूंढना शुरू किया कि अँधेरे में प्रदर्शनी कहाँ चल रही है। बड़ी मुश्किल से एक चौकीदार कहीं किसी कौने में मिला और पूछने पर पता चला कि यही वो प्रदर्शनी है। मैं चकराया फिर उसने एक पन्ने का ब्रोशर लाकर दिया जिससे खुलासा हुआ कि ये मुक्तिबोध की कविता पर बने चित्र और शिल्प हैं। यहाँ उस अँधेरे में प्रदर्शनी का ज़िक्र ज़रूरी है। कुछ समय पहले अमेरिकन एम्बसी ने इन्दौर विश्वविद्यालय में एक प्रदर्शनी आयोजित की थी जिसे हम लोगों ने देखा था। ये प्रदर्शनी अँधेरे में थी और अल्ट्रा वायलेट रोशनी, जो दिखाई नहीं दे रही थी, का प्रबन्ध था। हॉल की ज़मीन पर कुछ फ्लोरोसेंट काग़ज के टुकड़े काट कर रखे हुए थे। इस अल्ट्रा वायलेट रोशनी में सिर्फ ये टुकड़े चमक रहे थे और दीर्घा में इसी रोशनी का परावर्तित प्रकाश फैला हुआ था। ज़मीन इस कारण पानी की सतह सी दिख रही थी और उसमें ये तैरते हुए टुकड़े, जिन्हें जानबूझकर मछली के आकार का नहीं काटा गया था, मछली कि तरह तैरते हुए दिख रहे थे। सब कुछ जादुई सा लग रहा था और ये मेरी पहली प्रदर्शनी थी जो अँधेरे में थी। इसी प्रदर्शनी का अनुभव था जो अँधेरे में शीर्षक से भ्रमित हुआ। खैर उस प्रदर्शनी में दूसरा काम जो मुझे याद रहा वो एक शिल्प था जो तपस्वी की तरह बैठे हुए मनुष्य का था जिसे कबाड़ से बनाया गया था। शाम को मैंने पिता को अपने इस अनुभव के बारे में बताया और जाना कि सचिदा से मैं मिल चुका हूँ। फिर हम लोग मिलने भी गए। मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इतना मृदुभाषी, संकोची और संशय से भरा भी कोई कलाकार हो सकता है, घर पर मुझे आदत थी बड़बोले, अहंकारी, आत्मदया के मारे, वाचाल और हर विषय पर अपनी राय रखने वाले अनेक चित्रकारों को देखने की, इसके ठीक विपरीत एक कलाकार मेरे सामने था जो अपने होने को लेकर संशयग्रस्त था।

इस तरह मेरा परिचय दूसरी तरफ़ मौजूद कलाकारों से हुआ जो अपने होने को लेकर बड़बोले नहीं हैं। सचिदा की विनम्र उपस्थिति कला जगत के लिए हमेशा एक उदाहरण की तरह मौजूद रहेगी। उनकी रुचियाँ पुराने संसार में पुरानी वस्तुओं में और गुज़रे हुए समय में इतनी गहरी थी कि वे अक्सर उस समय की बात किया करते, उनके पास अच्छा खासा संग्रह भी अपनी रुचि की वस्तुओं का हुआ करता है जिसे वे हर किसी को नहीं दिखाया करते थे, मैं उनके घर कई कलाकारों को लेकर गया जिसमें रज़ा, लक्ष्मा गौड़, विश्वनाथन, मनजीत बावा, आदि अनेक कलाकार रहे हैं और इनसे सचिदा के सम्बन्ध जीवन्त और संकोच भरे रहे। सचिदा कभी भी आक्रामक ढंग से प्रस्तुत नहीं होते थे, वे अक्सर परदे के पीछे ही रहे। रज़ा के साथ उनकी घनिष्ठता सभी को मालूम है। उन्होंने अपने चित्रकार होने को भी हमेशा पीछे रखा और एक बेहतर मनुष्य की तरह हर जगह, हर मौके पर, हर व्यक्ति के साथ बने रहे, ये दुर्लभ है, इस तरह अपनी मौजूदगी को अंतराल देना आसान नहीं है। आने वाले युवा कलाकारों के लिए वे प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

एक भरापूरा संगीत-जीवन

अशोक वाजपेयी

ओमप्रकाश चौरसिया को पहली बार 1970 के दशक में संतूर बजाते भोपाल में अपने एक आयोजन में सुना था। वे मेरे ज़िले सागर के थे और बनारस में उन्होंने विचित्र वीणा के वादक-गुरु पण्डित लालमणि मिश्र से वादन सीखा था। उन दिनों मुझे शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में संस्थागत गतिविधियाँ बढ़ाने और उसमें नयी पहल कर सकने में समर्थ किसी व्यक्ति की तलाश थी। निष्णात संगीतकार होने के साथ-साथ, मुझे लगा, चौरसिया जी में ऐसी क्षमता हो सकती है। वे तब संगीत विदुषी डॉ. प्रेमलता शर्मा के निर्देशन में एक प्रोजेक्ट पर काम भी कर रहे थे। मैंने उनसे भोपाल आकर मेरी सहायता करने का आग्रह किया जो उन्होंने, सौभाग्य से मान लिया।

हम दशकों तक सहकर्मी रहे, उनकी संगीत की समझ, उसमें सुरुचि और कल्पनाशीलता पर मैंने शुरू से जो विश्वास किया, वह समय और अनुभव के साथ गहराता ही गया। हम उन दिनों शास्त्रीय संगीत के मध्यप्रदेश में बहुत सारे आयोजन करते थे। उनके लिए कलाकारों के चुनाव में चौरसिया जी की बड़ी भूमिका होती थी। ऐसा कोई अवसर याद नहीं आता जब मुझे उनकी सलाह न मानने की नौबत आयी हो या उन्होंने किसी कमज़ोर कलाकार की सिफ़ारिश की हो।

संगीत-समारोहों में सितार, शहनाई, सरोद, बाँसुरी आदि की लगभग तलाश ही थी और बहुत सारे दूसरे वाद्यों को जगह ही नहीं मिलती थी। हमने तय किया कि हम इन हाशिए पर डाल दिए गए वाद्यों का एक पूरा समारोह हर वर्ष करेंगे : 'दुर्लभ वाद्य विनोद'। रबाब, सारंगी, दिलरुबा, सुरबहार, इसराज, पखावज, नगाड़ा आदि अनेक वाद्यों के वादक खोज-खोजकर हर वर्ष एकत्र करने का काम चौरसिया जी ही करते थे। उन दिनों क्या, आज तक ऐसा कोई और समारोह कहीं और शायद ही होता हो।

मेरे और चौरसिया के एक मित्र वादक अब्दुल लतीफ़ ख़ाँ थे जो बहुत गुणी थे। वे रश्मि के साथ कथक में संगत भी बख़ूबी करते थे। सारंगी को केन्द्र में लाने, उसकी क्षमता और संभावना को उजागर करने की दृष्टि से हमने 'सारंगी मेला' करने की योजना बनाई। चौरसिया जी ने पूरी योजना बनायी और भारत में सारंगी वादकों की कुल संख्या 75 के करीब होने के अनुसार के आधार पर बजट बनाया जो मैंने सहर्ष अनुमोदित कर दिया। जिस दिन मेला शुरू होना था, चौरसिया जी का घबराता सा फोन आया : बिना बुलाए भी बहुत सारे वादक आ गए थे और उनकी संख्या बढ़कर 125 के पार जा पहुँची थी। मैंने कहा कि अगर आप आश्वस्त हैं कि सभी सारंगीवादक हैं तो उन सबको अतिथि मानकर उनकी व्यवस्था करें। अतिरिक्त बजट, जिसे लेकर चौरसिया जी परेशान थे, अनुमोदित कर दिया गया। यह मेला अपने ढंग का अनूठा आयोजन हुआ और उसका पूरा श्रेय चौरसिया जी को जाता है। युवा शास्त्रीय संगीतकारों के लिए हमने एक त्रैमासिक श्रृंखला 'आरंभ' नाम से भारत भवन में शुरू की। उसके लिए बरसों बहुत सूझ-समझ और जिम्मेदारी से चौरसिया जी ही युवा संगीतकार चुनते।

उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ संगीत अकादेमी, जहाँ वे पहले-पहल कार्यरत हुए थे, तो संगीत और नृत्य प्रशिक्षण में जो कुछ कर पाया वह उन्हीं की कर्मठता के कारण संभव हुआ। यह भुलाया नहीं जा सकता कि उनकी एक आँख शुरू से ख़राब थी और उन्हें दुर्घटनाग्रस्त होने की लगभग आदत थी। वे हर कुछ महीनों बाद किसी न किसी सड़क दुर्घटना में कुछ न कुछ तोड़ बैठते थे। पर संगीत के लिए उनका उत्साह और उसके लिए कुछ कारगर करने की उनकी अदम्य ज़िद इन सबसे अप्रभावित रहते थे। एक और क्षेत्र जिसमें वे स्वतंत्र रूप से बिना किसी सरकारी सहायता के सक्रिय हुए और अन्त तक रहे वह है- वृन्दगान। उन्होंने हिन्दी के अनेक कवियों का सुरचित वृन्दगायन करवाया और भोपाल को भारत के वृन्दसंगीत के नक्शे पर अलग जगह दिलवायी। गायकों की कई पीढ़ियाँ उनके निर्देशन में वृन्दगायन में दीक्षित हुई हैं। अपने दिवंगत गुरु पंडित लालमणि मिश्र की स्मृति में भी वे स्वतंत्र रूप से आयोजन करते रहे। अपने गुरुओं के प्रति निष्ठा शास्त्रीय संगीतकारों के स्वभाव और शिक्षा का अनिवार्य अंग होती है। पर वे ऐसे संगीतकार बहुत थोड़े हैं जो दशकों से अपने गुरु की स्मृति में हर वर्ष, अपने सीमित साधनों के बावजूद ऐसे आत्मीय और भव्य आयोजन करते हों जैसे चौरसिया जी करते रहे।

अपने साथ उनकी लम्बी संगत को मैं स्नेह और कृतज्ञता दोनों के साथ याद करता हूँ। वे आख़िर में बहुत अशक्त हो गये थे पर उनकी संगीत में सक्रियता अविराम बनी रही। वे भोपाल और संगीत दोनों की एक साथ उजली शबीह कहे जा सकते हैं।

संगीत के लिए उनका उत्साह और उसके लिए कुछ कारगर करने की उनकी अदम्य ज़िद से अन्य काम अप्रभावित रहते थे। एक और क्षेत्र जिसमें वे स्वतंत्र रूप से बिना किसी सरकारी सहायता के सक्रिय हुए और अन्त तक रहे वह है- वृन्दगान। उन्होंने हिन्दी के अनेक कवियों का सुरचित वृन्दगायन करवाया और भोपाल को भारत के वृन्दसंगीत के नक्शे पर अलग जगह दिलवायी।

सुरीली ख़्वाहिशें और कुछ क़तरे रोशनी के

विनय उपाध्याय

सच्चे साधकों ने भला कब अपनी साधना के दिन गिने है। लेकिन समय और समाज की आँखों ने उनकी तपस्या को कभी अलक्षित नहीं होने दिया। उनके सद्कर्मों का लेखा-जोखा लिए वक्त के किसी मोड़ पर फिर किसी दिन आवाज़ें अपना घेरा बड़ा करती है और कृतज्ञता के रसभीने बोल झरने लगते है। संगीत के आधुनिक संसार में ओमप्रकाश चौरसिया के नाम, काम और उनकी सात दशकों के बीच फैली कीर्ति को इसी सदाशयता के साथ याद किया जा सकता है। लेकिन उम्र के इस आँकड़े से परे उपलब्धियों का मान अहम होता है। इसी बीच अपने पुरूषार्थ की सार्थकता को नापने का स्वाभाविक उपक्रम होता है। खुद की ओर से और ज़िंदगी की राहों में मिले-बिछड़े संगी-साथियों की ओर से एक सिलसिला शुरू होता है यह जानने का कि अब तक क्या किया, जीवन क्या जीया??

बहरहाल, उनके हिस्से आयी आत्मीयता इस बात की ताईद करती है कि ईमानदार कोशिशों की उंगली थामे वे अपने शिखर लक्ष्यों की ऊँचाई नापते रहे। प्रतिसाद की बहुत अपेक्षा उन्हें कभी नहीं रही लेकिन अपने कर्म के सुदूर विस्तार के लिए वे सदा ही फिक्रमंद रहे। बावजूद इसके कि समय ने उनके उत्साह के पाँव तले हमेशा चुनौतियों की पथरीली ज़मीन बिछाई, लेकिन वे बेसाख़्ता अपनी रफ़्तार में कायम रहे।

सागर मध्यप्रदेश के निम्न मध्यवर्गीय कुटुंब में जन्मे ओमप्रकाश चौरसिया की सुरीली ख्वाहिशों को सँवारने का वक्त आया तो संगीत तीर्थ बनारस के विद्वान स्वर मनीषी पंडित लालमणि मिश्र गुरू के रूप में प्रकट हुए। सान्निध्य पाकर शिष्य का सौभाग्य बोलने लगा। कंठ संगीत, संतूर और वृंदगान की त्रिवेणी ने चौरसिया की प्रतिभा का ऐसा प्रक्षालन किया कि कालांतर में यह उजास संगीत के विश्व में उनके सृजनात्मक स्वप्नों और कीर्तिमानों को नई आभा से मंडित करता रहा।

अपनी ज़िद और सपनों के बीच एक बेहतर तालमेल बनाते हुए आखिरी सांस तक वे संगीत के लिए फिक्रमंद रहे। बीमारियाँ बचपन से उन्हें घेरे रहीं और मृत्यु के मुहाने तक उन्होंने इस साधक को अपनी गिरफ्त से मुक्त नहीं किया। यूँ जीवन की रंगभूमि पर अजीब जुगलबंदी और आरोह-अवरोह का खेल चलता रहा। पिछले आठ-दस सालों में चौरसिया जी काफी अशक्त हो गए थे। पैरों में ताकत न रही। आँखों का चिराग लगभग बुझ गया था। कंठ बेजान हो चला था। काँपती-थरथराती आवाज़ ही सहारा थी दूर-पास से किसी अपने को करीब बुलाने के लिए। भोपाल की आकृति गार्डन कॉलोनी के अपने घर के एक कमरे में अब वे प्राय: अकेले और कुछ-कुछ उदास से हो चले थे। पत्नी संध्या और बेटी देवना के पर्याप्त सान्निध्य तथा ख़िदमत के बावजूद आतंरिक ऊर्जा का निरंतर सिमटता जाना उन्हें खासा खामोश कर गया था। लेकिन चुप्पियों और तन्हाईयों में स्मृतियों का बवंडर उनके आसपास मंडराता। सागर... बनारस... भोपाल। बीता वक्त और वाकये एक-एक कर उनके जेहन में कौंधते। किस्मत और कर्म के पसीने की कहानी अचानक उनकी ज़ुबां से फूट पड़ती जब कोई अपना-सा उनके पहलू में आकर दो घड़ी चैन की गुज़ारता।

मध्यप्रदेश के संस्कृति महकमें और भारत भवन में अपनी आधिकारिक संगीत सेवाओं के दौरान चौरसियाजी ने सृजनात्मक और अकादेमिक स्तर पर जो अद्वितीय प्रकल्प रचे उनका कोई सानी नहीं। ईमानदार, स्वाभिमानी, अनुशासित और समावेशी, संस्कृतिकर्म की मिसाल उन्होंने गढ़ी। देश भर के गुणी, स्थापित और नव उदित कलाकारों के लिए आदर्श मंच तैयार किया। विरासत के धुंधले अतीत को रोशन किया और उसके प्रति मान और प्रेरणा का परिवेश रचा। ये ही वे मानक थे जिसकी वजह से मध्यप्रदेश दुनिया के नक्शे पर अपने सांगीतिक प्रयोगों के लिए अलग से चिन्हित हुआ। लेकिन दुखद कि चौरसियाजी के इस 'अभूतपूर्व योगदान का कोई नोटिस उनके गृह प्रदेश की सरकार ने नहीं लिया। राष्ट्रीयता तो छोड़िये उन्हें राज्य स्तरीय शिखर सम्मान के योग्य भी नहीं माना। दुर्भाग्य से कलाकारों के चयन, प्रदर्शन और सम्मान को लेकर भी उस पारखी दृष्टि का विलोप हो गया जो इस सूबे की सांस्कृतिक गरिमा और महिमा का मानक हुआ करती। खैर... यह लेखा-जोखा कभी भी चौरसियाजी की प्राथमिकता नहीं रहा। वे बेलौस, बेफिक्र अपनी संचित क्षमताओं से सक्रिय रहे। संस्कृति विभाग की उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादेमी से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने अपना एक काबिल शिष्य तैयार किया-सत्येन्द्रसिंह सोलंकी। सत्येन्द्र ने संतूर वादन की बुनियादी तालीम को जिस तल्लीनता और गहराई से जज़्ब किया और आज जिस आत्मविश्वास के साथ पहचान-प्रसिद्धि के नए ज़मीन-आसमान वो तय कर रहा है, निश्चय ही उसका श्रेय गुरू-दीक्षा को ही है।

पंडित ओमप्रकाश चौरसिया की शख्सियत के कई पहलू हैं। सुरीला कंठ उन्हें प्रकृति ने दिया और इसी के चलते बचपन में ही गायन के प्रति रूझान हो गया। सागर में फिल्मी गीत और भजन गाते

हुए परिवार के लोगों को उन्होंने इस बात के लिए राज़ी कर लिया था कि उन्हें गायन के विधिवत प्रशिक्षण के लिए रास्ता चुनना चाहिए। ख़स्ता माली हालातों के बावजूद मामा मदन चौरसिया के प्रोत्साहन और मदद से संगीत तीर्थ बनारस चले गये। बनारस में कुछ दिन बाद पेट की बीमारी ने ऐसा घेरा कि गायिकी का स्वप्न असमय मर गया। फिर गुरू पंडित लालमणि मिश्र की सलाह पर संतूर सीखा। बनारस के सांगीतिक वातावरण ने चौरसियाजी को संगीत की अनेक शैलियों और प्रवृत्तियों को नज़दीक से देखने और अन्तर्क्रिया करने में मदद की। यही वजह रही कि नौकरी के सिलसिले में जब वे भोपाल आए तो उनका विज़न बिल्कुल साफ था। गतिविधियों की परिकल्पना, उनके क्रियान्वयन, स्वयं के संतूर वादन और वृन्दगान के साथ नाट्य संगीत में भी उनके अद्वितीय प्रयोग को बेहतर प्रतिसाद मिला।

वृंदगान : अभिनव प्रयोग

पहला ज़िक्र वृन्दगान का ही करना चाहूँगा। साहित्य और संगीत को लेकर अपनी शैली का निहायत एक नया पहलू लेकर प्रकट हुए चौरसिया जी। उनका मानना था कि कविता का अपना भाषिक विन्यास होता है। वह अपनी सर्जना में परम स्वायत्त होती है। ठीक उसी तरह संगीत की सत्ता भी अपने आप में निराली होती है। उसका नाद अनहद के अनोखे क्षितिज खोलता है। उसके आस्वाद और आकलन की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति शब्दों की हदों से हमेशा फिसलती रही हैं, लेकिन जब शब्द और संगीत पास-पास आते हैं, तो इस आपसदारी से अर्थ और अभिव्यंजना की नई गूँज उपजती है। यूँ कविता और संगीत का मेल हमेशा ही रहस्य और रमणीयता की नई परिभाषा रचता है।

बकौल चौरसिया, बड़ा ही नाज़ुक और जटिल रिश्ता होता है कविता और संगीत का। कहा जा सकता है कि दोनों को एक-दूसरे के अवलम्बन की ज़रूरत नहीं, लेकिन कला के नवाचारी समाज में ऐसे सार्थक और साहसिक प्रयोगों को संगीतकारों तथा गायकों ने अपनी सूझ और संवेदना से संभव किया है। कविता को स्वर, लय, ताल के सांगीतिक आभूषण मिले हैं, तो संगीत की सतह को भी कविता ने बहुरंगी बनाया है। भारत की श्रुति परंपरा में शब्द और स्वर की यह नातेदारी सदियों से अपनी जड़ें जमाए हुए हैं।

संस्कृति की इसी अनमोल धरोहर को अपने अकिंचन प्रयासों में अक्षुण्ण रखने के लिए 'मधुकली' ने भोपाल में अपनी यात्रा करीब तीन दशक पहले शुरू की। ज़रिया चुना वृन्दगान। संगीत की प्राचीन परंपरा का वह रूप, जिसमें कभी वेदों की ऋचाएँ गूँजती थीं, लोक और भक्ति पद, जिसमें पूरे समाज के प्रेरणादायी आश्रय बन जाते थे। 'मधुकली' ने गुज़रे वक्त के इस भूले-बिसरे पन्ने को फिर से बाँचना शुरू किया। नई सदी की नई नस्ल को इस ओझल, किन्तु अनमोल पाठ के लिए प्रेरित किया। 'मधुकली वृंद' ने वृन्दगान के साथ कविता को सहयात्री बनाया। प्राचीन और नई कविता को एक साथ सुर-संगीत में साधा। नए ज़माने को कविता और सरगम की नई तासीर से अवगत कराया। मिश्रण और प्रदूषण के दौर में सात्विक, मधुर और जीवनदायी श्रुतियों की सौगात दी।

इस कठिन, किन्तु महत्वपूर्ण अभियान के केन्द्र में ज़ाहिर है, चौरसियाजी ही रहे। संगीत के सृजनात्मक और अकादेमिक कार्यों में नासाज़ सेहत के बावजूद वे बरसों संलग्न रहे। 'मधुकली' को उन्होंने अपने गुरु मूर्धन्य संगीत मनीषी लालमणि मिश्र की स्मृति और वृन्दगान की स्थापना के लिए संस्थागत रूप दिया। मध्यप्रदेश ही नहीं, बल्कि भारत भर में 'मधुकली' के पुरुषार्थ की गंध फैली। साहित्य और संगीत के कई समारोहों तथा अन्य तकनीकी माध्यमों के ज़रिए उनकी वृन्दगान संगीत रचनाओं तथा मौलिक प्रयोगों को सराहा गया है। दिलचस्प यह है कि इस सांगीतिक यात्रा में वृन्दगान के साथ परंपरागत छांदिक काव्य ही नहीं, नई कविता को भी उन्होंने अपनी कलात्मक कल्पनाशीलता से गेय बनाया। अपने इस उपक्रम में दर्जनों आधुनिक हिन्दी कवियों की रचनाओं को संगीत की ऐसी सोहबत दी कि इन कविताओं में अनुपस्थित नियमित छंद का अभाव महसूस नहीं होता। यूँ एक तरह से ओमप्रकाश चौरसिया साहित्य में पड़ी छंद और छंद-विहीन कविता की फाँक को संगीत के सौहार्द से पाटने के सफल सेतु कहे जा सकते हैं। साहित्य के आधुनिक परिवेश में जब प्राय: नई कविता का ही साम्राज्य बोल रहा है, तो उसे वाचिक-शक्ति अर्जित करने तथा जन-संवादी बनाने के लिए संगीत से हाथ मिलाना हितकर होगा। बकौल चौरसिया नई कविता को संगीत का जामा पहनाना उनके लिए उलझन नहीं रहा। उनके अनुभव में नई कविता, संगीत के साँचे में अधिक सुगम और सुग्राह्य साबित हुई। इन कविताओं में अपने तरह से धुन का मीटर तय किया जा सकता है और शब्द-विशेष पर स्वरों को आघात देकर प्रभावी बनाया जा सकता है। भाषा, भाव और कथ्य की दृष्टि से अलहदा तेवरों की इन कविताओं में सांगीतिक विचारशीलता के नए आयाम आप खुले हैं। मधुकली के वृन्दगान की आवृत्ति

भारत भवन भोपाल में हिन्दी के पावस गीतों की वृंदगान प्रस्तुति : निर्देशन ओम प्रकाश चौरसिया

में कबीर, तुलसी, पद्माकर से लेकर टैगोर, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, नागार्जुन, निराला, मुक्तिबोध केदारनाथ सिंह और अशोक वाजपेयी तक कवियों की एक बड़ी पांत है जो अपनी रची कविताओं के साथ एक नए तेवर में संवाद करते हैं।

बीच के बरसों में खामोश रही 'मधुकली' ने वृन्दगान की आवाज़ को लौटाते हुए पिछले दिनों ही भोपाल में कुछ नई-पुरानी कविताओं की प्रस्तुति की। कलाकारों का एक उत्साही संकुल फिर मुखर हुआ। विरासत के प्रति नई पीढ़ी का रूझान लौटा। अजीब इत्तफाक कि मृत्यु से करीब एक महीना पूर्व संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली ने चौरसियाजी को त्रिपुरा की राजधानी अगरतला में आयोजित वृन्दगान के राष्ट्रीय समारोह में 'मधुकली' के साथ प्रस्तुति के लिए आमंत्रित किया। यह आमंत्रण चौरसियाजी के योगदान की राष्ट्रीय स्वीकृति का प्रमाण भी था। वे ख़ासे प्रसन्न थे और बीमारी की विवशता के बावजूद उन्होंने 'मधुकली' के कलाकारों को स्वयं फोन कर समारोह के लिए राज़ी भी कर लिया। युवा संगीतकार उमेश तरकसवार के संयोजन में मधुकली वृंद का अभ्यास शुरू हो गया। इसी बीच चौरसियाजी के निधन की दुखद ख़बर ने सबको चौंका दिया। लेकिन 'वृन्दगान' शायद उनकी अंतिम हसरत साबित हुआ। स्मृति शेष चौरसिया को श्रद्धासुमन अर्पित कर मधुकली के कलाकारों ने अगरतला की उड़ान भरी। सशरीर न होकर भी वृन्दगायकों के 'भाईजी' सबकी रूह में महक रहे थे।

मध्यप्रदेश के संस्कृति महकमें और भारत भवन में अपनी आधिकारिक संगीत सेवाओं के दौरान चौरसियाजी ने सृजनात्मक और अकादेमिक स्तर पर जो अद्वितीय प्रकल्प रचे उनका कोई सानी नहीं। ईमानदार, स्वाभिमानी, अनुशासित और समावेशी संस्कृतिकर्म की मिसाल उन्होंने गढ़ी। देश भर के गुणी, स्थापित और नव उदित कलाकारों के लिए आदर्श मंच तैयार किया। विरासत के धुंधले अतीत को रौशन किया और उसके प्रति मान और प्रेरणा का परिवेश रचा। ये ही वे मानक थे जिसकी वजह से मध्यप्रदेश दुनिया के नक्शे पर अपने सांगीतिक प्रयोगों के लिए अलग से चिन्हित हुआ।

पंडित चौरसिया का एक अन्य पक्ष उनका नाट्य संगीत था। भोपाल में रंगकर्मी अलखनंदन के नाटकों को अक्सर संगीत की मीठी धुनों के लिए पहचाना जाता रहा। इस प्रतिष्ठा का श्रेय उनके संगीत निर्देशक को जाता है। अलखनंदन इस लिहाज से सौभाग्यशाली रहे कि उन्हें ओमप्रकाश चौरसिया जैसे योग्य और संजीदा संगीतकार की सोहबत मिल सकी।

श्री चौरसिया की पहचान एक संतूरवादक और कंपोजर की रही। उनके अकादेमिक कार्यों की अलग श्रृंखला है लेकिन इस मसरूफ़ियत के बीच नाट्य संगीत की ओर अगर उनका रूझान रहा तो उसकी भी कुछ ख़ास वजहें हैं। वे बताते हैं कि नाट्य संगीत का चस्का तो बनारस में उन दिनों ही लग गया था, जब अपने गुरू महान संगीत मनीषी पं. लालमणि मिश्र के सान्निध्य में रहकर वे शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण और शोध कार्य कर रहे थे।

तभी बनारस से कुछ दूर डिज़ल लोकोमोटिव वर्कर्स ने एक नाटक 'अबू हसन' करने की इच्छा जताई और उसमें संगीत रचनाएँ तैयार करने का प्रस्ताव दिया। चौरसियाजी के अनुसार उन्होंने अपनी शर्तों पर वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। एक माह के अभ्यास के बाद जब नाटक मंचित हुआ तो शास्त्रीय राग-रागिनियों के आधार पर बनाई धुनें दर्शकों ने बेहद पसंद की। संयोग से बंदिशों को गाने के लिए तब राजेश्वर आचार्य जैसे प्रशिक्षित गायक भी मिल गए थे। उसके बाद बादल सरकार का 'पगला घोड़ा' और 'राजा हरिश्चन्द्र' नाटकों का संगीत भी तैयार किया।

अस्सी के दशक में जब श्री चौरसिया ने भोपाल के भूगोल में कदम रखा तो यहाँ भी नाट्य परिवेश उनसे अछूता नहीं रहा। 1982 में मुकेश शर्मा 'अबू हसन' के मंचन की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने चौरसियाजी से संपर्क किया। यह नाटक पुरानी धुनों के साथ यहाँ भी बेहिसाब सराहा गया। श्री चौरसिया अपने नाट्य अनुभवों के साथ ब.व. कारंत जैसे लब्धप्रतिष्ठ रंगकर्मी को याद करते हुए बताते कि भारत भवन रंगमंडल में बाबा के रंग-संगीत को गहराई से देखा-गुना। वे खुद संगीत के जानकार थे, लेकिन जब अलखनंदन जबलपुर से भोपाल आए तो उनकी सोहबत श्री चौरसियाजी के लिए सतत रचनाशीलता का एक सबब बन गई। लगभग तीन दशक पहले भोपाल की सांस्कृतिक ज़मीन पर अपनी रंग-इबारत रचने आए अलखनंदन ने शुरूआती तीन नाटकों के संगीत के लिए सीधे चौरसियाजी से संपर्क किया। ये सभी प्रहसनशैली के नाटक थे और संगीत इनका प्राण था। तब 'अमरू का कुर्ता' अपने अनोखे संगीत के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ था। उसके बाद अलखनंदन के साथ उन्होंने बुंदेली लोक कथा पर आधारित नाटक 'चंदा बेड़नी' की धुनें तैयार कीं। यह एक गंभीर नाटक था,

लेकिन उसमें लोक तत्वों की प्रचुरता के कारण संगीत का धरातल, मिट्टी की सौंधी महक और लयात्मक ऊर्जा की माँग करता था। श्री चौरसिया ने नाटक की भावधारा को मद्देनजर रखते हुए सारी धुनें तैयार की। 'चंदा बेड़नी' के मंचन को अप्रत्याशित सफलता मिली। नाटक का संगीत दर्शकों की ज़ुबान पर चढ़ गया। इस नाटक के भारतभर में दर्जनों मंचन हुए और यह प्रयोग अलखनंदन की पहचान बन गया। कारवाँ आगे बढ़ा और बाद के सभी नाटकों 'बाँझ घाटी' (1986), सलोनी गोरैया, 'आगरा बाज़ार' (1987), 'मुर्गा देसी बाँग विदेशी' (1988), 'कबीरा खड़ा बाज़ार में (1997) तथा 'स्वांग शकुंतला (2003) भगवदज्जुकम् (2007) का संगीत भी चौरसियाजी ने ही रचा।

वे स्वीकारते थे कि अक्सर उन्हें अपनी धुनों के माफिक कलाकारों की आवाज़ या समझ का अभाव खलता है, लेकिन वे यह भी कहते कि नाटक मूलत: नाटक है। उसमें संगीत अनगढ़ होकर भी प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। श्री चौरसिया हिन्दी रंगमंच की दुनिया में नाट्य संगीत निर्देशक की स्वतंत्र जगह और सम्मान की कमी स्वीकारते थे। उनके अनुसार नाट्य संगीत की प्रशिक्षण की स्कूल हर हिन्दी राज्य में होना चाहिए।

इन सबके अलावा ओमप्रकाश चौरसिया स्वयं द्वारा संपादित संगीत के दुर्लभ ग्रंथों के लिए भी याद रहेंगे। दूरस्थ संगीत शिक्षा, संगीत, रस, परंपरा और विचार तथा वीणा वाणी जैसी अनेक कृतियों का प्रकाशन संगीत के शोधार्थियों और रसिकों के लिए उपयोगी है।

चौरसियाजी अपने अनन्य कृतज्ञ-भाव के लिए भी याद किये जायेंगे। अपने मामा मदन चौरसिया, प्रताप मास्टर, पंडित लालमणि मिश्र और अशोक वाजपेयी को उन्होंने गुरु का दर्ज़ा दिया। जब भी कोई प्रसंग आता, वे इन चारों के उपकार ज़रूर गिनाते। मृत्यु से कुछ ही माह पूर्व भोपाल में चौरसियाजी ने अशोक वाजपेयी का सार्वजनिक अभिनंदन कर उनका कविता पाठ आयोजित किया था। व्हील चेयर पर सभागार में बैठे चौरसिया के लिए उस दिन कान ही श्रुति और दृष्टि थे।

भारत में सारंगी-समाज निरंतर सिमट रहा है। उसमें गुणी वादक और भी थोड़े हैं। ऐसे में ध्रुवदा का जाना सारंगी का एक तार टूटने जैसा है। सारंगी जैसे साज़ की 'अलक्षित' आवाज़ को ऊंचा दर्ज़ा दिलाने के लिए वे पाँच दशक तक सक्रिय रहे।

सन् 2009 में जब ध्रुव ज्योति घोष ने प्रतिष्ठित ग्रैमी अवार्ड हासिल किया तो वे 55 वर्ष की मध्य आयु में थे। 22 रचनाओं वाले जिस मीहो जर्नी टु द माउंटेन एल्बम पर उन्हें यह सम्मान मिला, उसकी बुनियाद थी प्रकृति के स्वर। बकौल ध्रुवदा, उन्होंने यूरोपीय संगीत में माहिर साझीदारों के साथ उन आवाज़ों को सुनवाने की कोशिश की, जो पकड़ से छूट रही हैं। अलक्षित आवाज़ों पर ध्यान केंद्रित कर नवाचार की तड़प उन्हीं में होती है जो बनी-बनाई गद्दी पर बैठना पसंद नहीं करते। 'सारंगी' अलक्षित आवाज़ ही तो है, और ध्रुवदा थे तबला खानदान की उपज। जाने-माने तबलावादक पं. निखिल घोष के पुत्र होने के बाद भी उन्होंने सारंगी का रास्ता चुना जो आरंभ से ही ऊबड़-खाबड़ था लेकिन ज़िद और जीवटता की बदौलत उन्होंने अपना मुहावरा गढ़ लिया। उनका मकसद था सारंगी को गायकी में एकल प्रदर्शन के अतिरिक्त तंत्रकारी में भी संपूर्ण वाद्य का दर्जा दिलवाना।

पाँचवें तार के पंडित का प्रस्थान

राजेश गनोदवाले

अब इस विलक्षण साधक की सिर्फ स्मृतियां रहेंगी। 10 जुलाई को उन्हें हृदयाघात हुआ और उन्होंने आंखें मूंद लीं। भारत में सारंगी समाज निरंतर सिमट रहा है। उसमें गुणी वादक और भी थोड़े हैं। ऐसे में ध्रुवदा का जाना सारंगी का एक तार टूटने जैसा है। वे सारंगी में आम आदमी के प्रतीक थे। उन्होंने उस मिथक को तोड़ा था कि गैर-सारंगी खानदान का कोई वारिस इस पर मनचाही मंजिल पर फतह नहीं पा सकता।

पिता के अलावा गवैये पं. दिनकर कैकिनी, सरोद सम्राट उस्ताद अली अकबर खाँ जैसों की छत्रछाया में उन्होंने स्वयं को गढ़ा था। सारंगी सीखने का सिलसिला सलीके से चल रहा है, इसका पता पहली दफ़ा सारंगी समाज को 1989 में भोपाल में लगा। प्रसंग था मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग की उपज सारंगी मेला। पंडित हनुमान प्रसाद मिश्र, पं. रामनारायण, उस्ताद सुल्तान खां, उस्ताद साबरी खां सरीखे हिंदुस्तान के बड़े सारंगी वादकों के मध्य एक अनजान वादक ने सलीके से 'गज' चलाते जब राग की परतें खोलीं तो जैसे लगा, बड़ों का तिलिस्म अब टूटकर रहेगा। उन्हें २१वीं सदी का भावी वादक घोषित किया गया।

ध्रुवदा उनसे परे थे जो मंच पर तो जादुई असर छोड़ते हैं पर नीचे उतरते ही बातचीत करने पर सांगीतिक वैचारिकता के नज़रिए से असहाय दिखते हैं। 1995 में उनका कहा याद आता है: ''सारंगी तो 100 रंगों वाला है, अकेला दुख का नहीं।'' इसे वे जबरन दुख का बाजा घोषित करने के खिलाफ थे। सारंगी के प्रति ज़िम्मेदार विभागों का ठंडा रुख भी उन्हें कचोटता था। वे मितभाषी थे। चेहरा-मोहरा उन्हें किसी पढ़ाकू प्रोफेसर जैसी छवि देता था। वे प्रगतिशील तो थे ही। उन्होंने यह भरोसा दिलाया कि घरानों से बाहर का साधारण व्यक्ति भी इसे सीख सकता है। सारंगी कठिन ज़रूर है पर उतनी नहीं, सामान्य प्रतिभा हो तो यह आसानी से बजता है। अलबत्ता स्वरज्ञान खासा ज़रूरी है। व्याकरण और बंदिश पर टिकी वर्तमान शिक्षा पद्धति पर उनकी राय थी: ''संग्रहण से कुछ नहीं होता। निकास भी तो आए।'' परंपरा बेड़ियां न बन जाए, इसी विचार को सामने रख उन्होंने सारंगी में चौथा और पांचवां तार जोड़कर इसकी रेंज को क्रांतिकारी विस्तार दिया। अमूमन सारंगी में तीन मुख्य तार ही हुआ करते हैं। वे सारंगी को संपूर्ण तंत्रवाद्य के रूप में देखना चाहते थे। आलाप जोड़ झाला युक्त वादन शैली के जरिए सोलो वादन के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने में उनकी भूमिका का कोई सानी नहीं। वे चाहते थे कि सारंगी को 'गायकी' और 'तंत्रकारी' दोनों मोर्चों पर स्वीकृति मिले। दिग्गजों की संगति का सुख उन्हें कम उम्र में मिलने लगा था। इसने उनकी कल्पनाशीलता को धार दी। उस्ताद सलामत अली खां, उस्ताद अहमद जान थिरकवा, उस्ताद करामत उल्ला खां, उस्ताद अल्लारक्खा, श्रीमती शोभा गुर्टू, श्रीमती गिरिजा देवी जैसी बड़ी हस्तियों के अलावा नई पीढ़ी के साथ भी वे मंचों पर दिख जाते थे। भारतीय विद्या भवन-मुंबई के संगीत संकाय में उन्होंने बतौर प्राचार्य लंबी अवधि बिताई। इन दिनों फिल्मी रेकॉर्डिंग से दूरी बना ली थी। आरडी बर्मन जब तक रहे, ध्रुवदा उनकी फेहरिस्त में अनिवार्य नाम थे।

जापान, चीन, उज्बेकिस्तान, कोरिया और भारत के गज से बजाए जाने वाले वाद्यों को जोड़कर ''वर्ल्ड स्ट्रिंग ऑर्केस्ट्रा'' तैयार करने के इतर उन्होंने अद्‌भुत सूक्ष्म दृष्टि से निरंतर कुछ न कुछ किया। ''व्हेल रागा'' नामक एक रचना में समुद्र में व्हेल की आवाज को 'सुर' मानकर उसकी आवाज के साथ सारंगी का मेल बिठाया था। उनका तर्क था, ''हमारे कान प्राकृतिक आवाज़ों से दूर होते जा रहे हैं। वे चाहते हैं कान की शक्तियां तेज हों।'' क्लिष्ट रागों की कल्पनाशीलता के साथ सुरीली पेशकश में उनकी पकड़ चौंकाती थी। सारंगी जैसे साज की 'अलक्षित' आवाज़ को ऊंचा दर्ज़ा दिलाने के लिए वे पांच दशक तक सक्रिय रहे।

(इंडिया टुडे से साभार)

सुभाषित की तरह जिया, और लिखा

ओम निश्चल

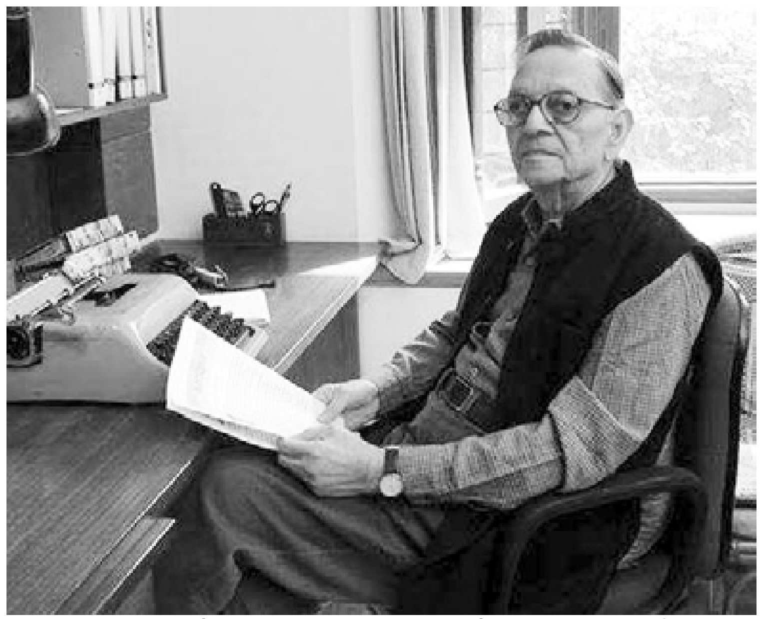

लंबी बीमारी के बाद कुँवर नारायण नहीं रहे। साहित्य जगत में लगभग अजातशत्रु कुँवर नारायण हिंदी के अकेले ऐसे कवि हैं, जिनकी कवितां का भारतीय भाषाओं समेत दुनियाभर की तमाम भाषाओं में अनुवाद हुआ है। वे अज्ञेय द्वारा संपादित तीसरा सप्तक के सहयोगी कवियों में रहे हैं।

उनके कैशोर्य काल में परिजनों की मृत्यु के कारण उनके भीतर पैदा हुए विषाद ने उंनके कवि को कुछ अलग ढंग से गढ़ा। 'चक्रव्यूह' और 'आत्मजयी' उसी दौर की रचनाएं हैं। आत्मजयी के केंद्र में नचिकेता है तो 'वाजश्रवा के बहाने' के केंद्र में नचिकेता के पिता वाजश्रवा। 'अपने सामने' के साथ वे सरल होते गए किंतु अनुभूति और संवेदना सघन होती गई। कविता जीवन से जुड़ती गई। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा है 'एक कविता होती है जीवन के बारे में। एक जीवन में प्रवेश कर जाने वाली कविता होती है।'

कुँवरजी की कविताएं पढ़ते हुए मस्तिष्क और दिल पर एक ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिसे साफ-साफ बयान नहीं किया जा सकता। उनके शब्द अपना आतंक नहीं जमाते, वे हमें हौले-हौले उस जगह ले जाते हैं, जहां कविता सच्चे अर्थों में चरितार्थ होती है। उन्होंने स्वयं कहा है, 'मेरी कविताएं तीखी-तर्रार रेखाओं से नहीं बनतीं उनमें गाढ़े-हल्के रंग के उमड़ते-घुमड़ते बादलों के-से आकार एक-दूसरे में घुलते-मिलते हैं।

प्रारंभ में अनेक समाजवादियों, कलाकारों, लेखकों से हुई उनकी मुलाकातों से साहित्य के बारे में उनकी समझ परिपक्व हुई। लखनऊ स्थित उनका घर साहित्यकारों, कलाकारों, संगीतकारों, फिल्मकारों का स्थायी ठिकाना था। लखनऊ में रहते हुए उनका अमृतलाल नागर, शिवानी, ठाकुरप्रसाद सिंह, रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, श्रीलाल शुक्ल, कृष्ण नारायण कक्कड़, गिरिधर गोपाल व मुद्राराक्षस आदि से नियमित संपर्क-संवाद रहा। अब इनमें से कोई भी नहीं है। कलाओं के शौकीन इतने कि उनके घर के बरामदे में ही एक बार लखनऊ पधारी संयुक्ता पाणिग्रही ने श्रीलाल शुक्ल, केशवचंद्र वर्मा, सुरेश अवस्थी व ठाकुर जयदेव सिंह के समक्ष अपना नृत्य प्रस्तुत किया। शतरंज के खिलाड़ी फिल्म बनने के दौरान सत्यजित राय के लखनऊ आने पर कई बार मुलाकातें हुईं। इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ जैसे साहित्य-संस्कृति संपन्न शहर अब धीरे-धीरे उजड़ रहे हैं। माल और बाज़ार कल्चर उन्हें आमूल बदल रहा है। इस बदलाव और संकट के प्रतिबिम्ब कुंवरजी की कविता में सूक्ष्मता से आते रहे हैं।

उन्होंने कहानियाँ थोड़ी ही लिखी हैं पर वे किस्सागोई की बेहतरीन नक्काशी का नमूना हों जैसे। 'आकारों के आसपास' में शामिल सभी कहानियां मनुष्य के चित्त को बारीकी से पढ़ती हैं और अपने संवादों और कथोपकथनों से मुग्ध करती हैं। इन कहानियों को देखें तो यह धारणा टूटती है कि कवि की कहानी में दार्शनिकता का बघार ज्यादा होता है कहानी कम। उन्होंने अपने ऊपर कभी किसी विचारधारा का दबाव महसूस नहीं किया। वे लेखक की स्वायत्तता को किसी भी विचारधारा से ऊपर मानते रहे हैं। जैसे रचना में, वैसे ही आलोचना में भी किसी पंथ, किसी भी मत का समर्थन उन्होंने नहीं किया। वे यह कोशिश करते रहे हैं कि शुद्ध, निष्पक्ष और अकादमिक समीक्षा का एक उत्तरदायी संसार हिंदी में विकसित हो।

कुँवरजी ने लगभग साठ साल रचनात्मक रूप से सक्रिय रहते हुए सब कुछ लिखा, कविता, कहानी, आलोचना, डायरी भी, पर आत्मकथा नहीं। पता नहीं, आत्मकथा से क्यों बचते रहे। डायरी में भी अपने या औरों के बारे में निजी टिप्पणियां बिल्कुल नदारद हैं। शायद इसे आत्मश्लाघा या प्रायोजित प्रशंसा मानते रहे हों। इसकी क्या वजह हो सकती है? सोचते हुए मेरी निगाह एक दिन उनकी डायरी में दर्ज येव्तुशेन्को के इस वाक्य पर गई जिसमें लिखा था : 'कवि की कविता ही उसकी आत्मकथा है, अन्य चीजें केवल फुटनोट।'

उनका जीवन, उनका काव्य एक सुगठित श्लोक और एक सुभाषित की तरह पठनीय व संग्रहणीय है। उनके जीवन और साहित्य पर केंद्रित पुस्तक 'अन्वय' एवं 'अन्विति' के संपादन के सिलसिले उनसे कई बार घंटों बातचीत का अवसर मिला है। उनसे बातचीत कर रचनात्मक समृद्धि का अहसास होता था। वे कहा करते थे, 'साहित्य में राजनीति के दुर्गुण आ गए हैं पर साहित्य के गुण राजनीति में नहीं।' पढ़ने-लिखने के हिमायतियों की सिकुड़ती दुनिया के बारे में उनका कहना था 'गुन ना हिरानो गुनगाहक हिरानो है।' एक बार मुलाकात में उन्होंने अपनी डायरी 'दिशाओं का खुला आकाश' देते हुए हिटलर का वाक्य उद्धृत किया था : 'नथिंग ऑफ इम्पार्टेन्स इज मियरली गिवेन टू मैन, इवरीथिंग मस्ट बी स्ट्रगल्ड फार।' यानी अच्छी बातें वे हिटलर जैसे तानाशाह से भी ले सकते थे।

कुँवरजी ने लगभग साठ साल रचनात्मक रूप से सक्रिय रहते हुए सब कुछ लिखा, कविता, कहानी, आलोचना, डायरी भी, पर आत्मकथा नहीं। पता नहीं, आत्मकथा से क्यों बचते रहे। डायरी में भी अपने या औरों के बारे में निजी टिप्पणियां बिल्कुल नदारद हैं। शायद इसे आत्मश्लाघा या प्रायोजित प्रशंसा मानते रहे हों। इसकी क्या वजह हो सकती है? सोचते हुए मेरी निगाह एक दिन उनकी डायरी में दर्ज येव्तुशेन्को के इस वाक्य पर गई जिसमें लिखा था : 'कवि की कविता ही उसकी आत्मकथा है, अन्य चीजें केवल फुटनोट।'

उनकी कविताओं के बीच उन्हें खोजना निश्चय ही एक कठिन काम है, क्योंकि उनकी कविताएं कल्पना और यथार्थ की बारीकियों में आवाजाही करती हैं। 'वाजश्रवा के बहाने' काव्य में एक वाक्य आता है : 'मृत्यु इस पृथ्वी पर जीवन का अंतिम वक्तव्य नहीं है।' जाहिर है, दिवंगत होकर भी वे अपनी कविताओं में सदैव जीवित रहेंगे।

स्मृति शेष
एच.कन्हाईलाल

रंगभूमि का संत

पुंज प्रकाश

गरीब परिवार में 17 जनवरी 1941 को जन्मे हेसनाम कन्हाईलाल विख्यात रंगनिर्देशक थे। वे ज़बरदस्त प्रयोगवादी थे जो हमेशा थियेटर को नए सिरे से परिभाषित करते रहे और अपने स्वयं के अनुभवों से खोजे सिद्धांतों को मंच पर रूपायित करते रहे।

भारतीय रंगमंचके अप्रतिम निर्देशक ओझा हेस्नाम कन्हाईलाल नहीं रहे। वे फेफड़े के कैंसर से पीड़ित थे। 2017 में उन्हें पद्म भूषण सम्मान दिया गया था। उन्हें पद्मश्री (2003) और संगीत नाटक अकादमी अवार्ड (1985) भी मिल चुका है।

सावित्री हेस्नाम उनकी पत्नी हैं जो विख्यात रंगमंच अभिनेत्री हैं और उनके पुत्र हेस्नाम तोम्बा उभरते हुए निर्देशक हैं। मणिपुर के कन्हाईलाल ने भारतीय रंगमंच की विविधता को समृद्ध किया। उनकी रंगभाषा में पूर्वोत्तर का शरीर, मानस और वहां की लोक परंपराओं के साथ वहां की जनता का संघर्ष और प्रतिरोध भी शामिल है। उनकी रंगभाषा में पूर्वोत्तर की ध्वनियों का खेल भी था जो उसे गहराई देता था। उनकी प्रस्तुतियां देश-विदेश में मंचित हुई और सराही गईं। कन्हाईलाल ने मणिपुर में कलाक्षेत्र रंगमंडल की स्थापना की थी और इसके साथ वे काम करते रहे। उन्होंने देश-विदेश की विभिन्न संस्थाओं में अभिनेताओं को प्रशिक्षण भी दिया। 'मेमॉयर्स ऑफ अफ्रीका', 'कर्ण', 'पेबेट', 'डाकघर', 'अचिन गायनेर गाथा', 'द्रोपदी' इत्यादि उनकी चर्चित नाट्य प्रस्तुतियां हैं। महाश्वेता देवी की कहानी पर आधारित उनकी प्रस्तुति 'द्रौपदी' अत्यंत प्रशंसित और विवादित रही।

उनका बचपन बहुत कठिनाईयों में बीता। स्कूल के दिनों में ही उन्हें पारंपरिक रंगमंच और आधुनिक रंगमंच के संस्कार मिलना शुरू हो गए। कॉलेज में उन्हें जी सी तोंगब्रा जैसे नाटककार और निर्देशक का मार्गदर्शन मिला। वे उनके सोसायटी थियेटर से तीन साल तक जुड़े रहे और खूब काम किया। अपने कुछ मित्रों के साथ मिलकर बाद में उन्होंने स्टूडेंट्स आर्ट्स एसोसियेशन का गठन किया। 1961 में उन्होंने इस ग्रुप के लिए पहला नाटक लिखा और मंचित किया। सावित्री उनकी अभिनेत्री थीं और सहयोगी थीं। सन् 1962 में उन्होंने सावित्री से विवाह किया। इसी बीच घरेलू समस्याओं के कारण उन्हें थियेटर छोड़कर नौकरी शुरू करना पड़ी। इम्फाल में उन्होंने कुछ दिनों तक बाटा शो रूम में सेल्समैन की नौकरी भी की। कई नौकरियां करने और छोड़ने के बीच में वे एक गांव के स्कूल में हैडमास्टर भी रहे। एक सरकारी नौकरी में भी कुछ साल रहे। फिर नौकरी छोड़कर एन एस डी पहुंचे मगर 6 माह ही रह सके। फिर मणिपुर सरकार के पब्लिसिटी डिपार्टमेंट में प्रोड्यूसर हो गए। ये नौकरी तनखाह कम होने के बावजूद उन्हें पसंद थी। इसे उन्होंने करीब दस साल किया। इस बीच उनकी संस्था 'कलाक्षेत्र' के अंतर्गत उन्होंने अपना गंभीर रंगकर्म जारी रखा। इसी समय उन्होंने अपने कुछ यादगार नाटक किये। तमनालाई, काबुई-किओईबा, खोमदोम मैरोबी, पेबेट, इम्फाल 73। उन्हें लगातार अपने नाटकों के मंचन के लिए छुट्टी पर रहना पड़ता था। नौकरी एक बाधा बन रही थी। उन्होंने नौकरी छोड़ दी।

1972 में बादल सरकार से उनकी मुलाकात उनके जीवन का बड़ा मोड़ साबित हुई। कन्हाईलाल अब तक नाटक लिख रहे थे और अच्छे नाटक लिख रहे थे पर बादल सरकार से उन्हें एक नई दृष्टि मिली जहां शब्दों के बजाए शरीर से बात कहना थी। उन्होंने जीवन और रंगमंच को आमने सामने ला दिया। 1978 में उन्होंने नाटक 'नुपिलान' में लगभग सौ खोमचे वाली महिलाओं से खुले मैदान में मंचन करवाया। 1980 में दक्षिणी मणिपुर में उन्होंने फिर एक नाटक खुले मैदान में जनता के बीच प्रस्तुत किया। उन्होंने कलकत्ता, मुम्बई, दिल्ली, चैन्नई, मैसूर, गुवाहाटी, अगरतला, पटना आदि जगहों पर वर्कशॉप किए। उनकी नाट्य दल कलाक्षेत्र के साथ उन्होंने जापान, कैरो में समारोहों में अपने नाटकों के मंचन किये और उन्हें श्रेष्ठ सम्मान मिला। उन्हें मणिपुर सरकार, संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली के सम्मान तो मिले ही भारत सरकार ने उन्हें 2003 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। इसी साल उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।

कन्हाईलाल को एक नाट्य संत कहा जा सकता है। वे बहुत सादा जीवन जीते रहे और आम जन के कष्टों को मुखरित करने के लिए सदैव जुटे रहे। वे एक श्रेष्ठ मानव और श्रेष्ठ कलाकार थे।

स्मृति शेष

चन्द्रकांत देवताले

कविता का संवादी स्वर

आशुतोष दुबे

मै रास्ते भूलता हूँ
और इसीलिए नये रास्ते मिलते है
मै अपनी नींद से निकलकर
प्रवेश करता हूँ
किसी और की नींद में
इस तरह पुनर्जन्म होता रहता है
एक ज़िन्दगी में एक ही बार पैदा होना
और एक ही बार मरना
जिन लोगों को शोभा नहीं देता
मै उन्हीं में से एक हूँ...

-देवताले

आखिरी बात हमेशा रह जाती है/और समय हो जाता है/कोई उठता है और चल देता है/हम उधर देखते रहते हैं/जहाँ पर्दा अभी तक /हिल रहा है

वे अभी-अभी उठ कर चले गए हैं। इस बार वापिस न आने के लिए।

शायद ही उनके अलावा हिन्दी का कोई अन्य कवि हो जिसका अपने समकालीनों और युवा रचनाकारों से इतना जीवंत सम्पर्क रहा हो जितना देवताले जी का था। शायद ही कोई युवा कवि ऐसा हो जो अपने को उनके अति निकट न समझता रहा हो। शायद ही कोई ऐसा हो जिसके पास उनके संस्मरण न हों, या उनके साथ खुद की तस्वीरें, या पुराने वक़्त में उनकी चिट्ठियाँ या पिछले दस बरसों में फ़ोन पर सम्पर्क आदि न रहे हों। वे सबके ख़ास हो सकते थे। और फिर भी खुद को बचाए रख सकते थे। वे किसी बहुत नये, युवतर कवि से अपनी नयी पांडुलिपि बनाने के काम में मदद करने के लिए अनुरोध कर सकते थे और उसकी बाइक या स्कूटर पर बैठकर कहीं भी जा सकते थे। एक 'बड़े' कवि की इस सहजता से रोमांचित वह युवतर कवि इन क्षणों को अपनी बेशक़ीमती निधि की तरह संजो लेता था।

90 की दहाई के शुरुआती वर्षो से, जबसे वे इन्दौर में पदस्थ हुए, शुरु हुआ उनका सान्निध्य हम कुछ मित्रों को उनके जीवनपर्यंत मिला। बहुत मुमकिन है इस बीच वे कुछ लोगों के ज़्यादा नज़दीक गए हों और कुछ से दूर; लेकिन अगर ऐसा हुआ भी हो तो कम से कम अपनी ओर से वे इस 'दूरी' का अहसास किसी को होने नहीं देते थे। वे अपने अ-मित्र को भी फ़ोन करते और देर तक बतियाते रह सकते थे। उन्हें अपने आसपास के लोगों से कम शिकायतें नहीं थीं, जिनका ज़िक्र वे कुछ अन्य आसपास के लोगों से करते रहते थे; लेकिन शायद उनका मालवी मानस उन्हें सम्बन्धों को अंततः सहेजने की ओर ले जाता था। यही वजह है कि उनके बारे में, अगर कोई चाहे और उसके पास इसकी वजह हो तो भी, कटु होकर सोचना किसी के लिए भी बहुत आसान नहीं है।

साहित्य जगत की हलचलों से वाबस्तगी उन्हें अच्छी लगती थी। ये हलचलें उन तक उनके व्यापक सम्पर्कों की वजह से आ ही जाती थीं। व्यंग्य-विनोद उनके साथ संवाद को रोचक बनाता था। बातों-बातों में चुटकी लेना उन्हें बख़ूबी आता था और कभी कभी चिमटी 'खोड़ना' भी; वह भी इस ढब से कि सामने वाला शिकायत भी न कर सके। उनके अपने पूर्वाग्रह थे, व्यक्ति-प्रसंगों से जुड़ी निजी ग्रंथियाँ भी; लेकिन यह सब उसी 'कटु-तिक्त बीज' का अंश था जिसने उनके कवि के निर्माण में अपना योग दिया था। उनकी कुछ धारदार कविताओं के पीछे भी व्यक्ति-विशेष के सन्दर्भ भले ही रहे हों पर बात को निकलने के बाद उसे दूर तक जाना होता था।

हिन्दी के अलावा मराठी में भी उनकी स्वीकार्यता व्यापक रही। मराठी को वे 'मावशी' (मौसी) मानते थे। अनेक मराठी रचनाकारों जैसे दिलीप चित्रे, भालचन्द्र नेमाड़े, नामदेव ढसाल, चन्द्रकांत पाटिल आदि से उनके बहुत आत्मीय सम्बन्ध रहे हैं।.खुद उन्होंने दिलीप चित्रे की कविताओं के अनुवाद किए और तुकाराम की छाया वाली कविताएँ भी रचीं। इन दो भाषाओं के बीच में वे सेतु कवि रहे। अकविता के दौर का वे एक बड़ा नाम थे लेकिन इसकी अलामतों को अतिक्रमित करके वे बाहर निकले और उन्होंने अपने कवि की आवाज़ खोजी और पायी।

उनके साथ ने हम सभी मित्रों को लेखन के खास तौर पर शुरुआती दौर में बहुत ऊर्जा दी। बिल्कुल नए को वे पढने-लिखने के लिए इस तरह प्रेरित, प्रोत्साहित कर सकते थे कि उनका दाय वह भूल नहीं सकता था। उनसे देर तक बतियाने, बहस करने, झगड़ने, उनके साथ घूमने, समारोहों-कार्यक्रमों में कविताएँ पढ़ने से बहुत कुछ मिला है, जिसे ठीक-ठीक शब्दों में बता पाना मुश्किल है। उन्हें एक संक्षिप्त आलेख में समेटना मुमकिन नहीं है।

''कौन है जो बेजुबान की ओर से बोलता है? ...यह आदमी झाड़ की तरफ़ से बोलता है, पहाड़ की तरफ़ से बोलता है, झरने की तरफ़ से बोलता है, फूल की तरफ़ से बोलता है और सबसे ज्यादा ग़रीब की तरफ़ से बोलता है। विचारों को लिपिबद्ध करना उसकी साँस है। जो लिखता है, दम साधकर लिखता है। हर साँस को सँभालकर लिखता है। इसीलिए वह जो लिखता है प्रकाशनीय नहीं, प्रकाशवान् होता है। संस्कारी व्यक्ति कैसा होता है, इसकी मिसाल रामनारायण उपाध्याय''। कविवर भवानी प्रसाद मिश्र के इस उद्‌गार में एक ऐसा कलमकार प्रकट होता है जिसकी सोच और संवेदना में मनुष्यता का वास रहा। गाँव और गांधी जिसके लिखे-कहे का उत्स रहे। लोक-संस्कृति जिसके पुरुषार्थ का अंग रही। पद्‌मश्री रामनारायण उपाध्याय को हिन्दी संसार इसी रूप में जानता है। जीवित होते तो सौ बरस का आंकड़ा पूरा कर लेते। उनके जन्म शताब्दी वर्ष पर उन्हें 'रंग संवाद' का सादर सुमिरन। यहाँ प्रस्तुत है उनके रचित कुछ रुपक।

रामनारायण उपाध्याय के रुपक

मन के मृग छौने

भटका मन

आकाश में बादल छाये हैं,
और मन भी बादल हुआ चाहता है।
कभी वह इतराता, कभी मंडराता,
और कभी कुलाचें भरते हुए,
जाने कहाँ कहाँ भटक जाता है।
अन्दर से भरा होकर भी वह,
ऊपर से खाली-खाली
ऐसे में किसी को,
ज़ोर से टेरने को जी चाहता है,
कौन है वह?
शायद कोई नहीं,
मन बादल का ही कोई भटका हुआ अंश हो।

बाँधो मत

कविता में बाँधो मत
मैं तो वह गीत हूँ
जिसे ग्वाले ने गाया।
वाद्यों पर कसो मत
मैं तो वह स्वर हूँ
जो दिगदिगन्त छाया।
शिला पर उकेरो मत
मैं तो वह अमूर्त हूँ
जो मूर्त बन आया।

अच्छी किताब

एक अच्छा आदमी
खिले हुए फूल की तरह
सबको सुख पहुँचाता है।
एक अच्छी किताब
खुशमिज़ाज आदमी की तरह
लिखने की प्रेरणा देती है।
एक अच्छे आदमी की अच्छी किताब
एक ऐसी इबारत है
जिसे उस तरह जीकर ही
पढ़ा जा सकता है।

आभास

अगर कहीं पर्वत है
तो निश्चित मानिये
आस पास कहीं नदी भी होगी
बिना हृदय में गहरा दर्द सँजोये
कोई इतना ऊँचा उठ नहीं सकता।

तनाव

नदी भी एक तनाव जीती है
अपनी छाती पर झूलते पुल का।
पुल जो कगार से बँधा होकर भी
पार कराने का दावा करता है
पार तो वह नदी होती है
जो अपने पाँवों चल कर
समन्दर से मिलती है।

अनुपस्थिति

मैदानों में
घूमता हुआ एकांत
पर्वतों पर
सिर धुनती हवाएँ
घाटियों में घिरा

अकेलापन
नदी पर लेटा
सन्नाटा
तुम्हारी अनुपस्थिति
के ही तो नाम हैं।

ऊँचाई

पर्वत तभी तक ऊँचा है,
जब तक मैं
उसके शिखर पर नहीं पहुँचता।
वह बोला
मैंने तो किसी के सिर पर पाँव रखकर
ऊँचाई प्राप्त नहीं की।
मुझे अपनी लघुता का बोध हुआ
और मैंने उसके चरणों में
अपना सिर झुका दिया।
वह बोला
तुम्हारा विनत सिर
मेरे शिखर से ऊँचा है
क्योंकि यह श्रद्धा से झुकना नहीं जानता।

आकलन

जीवन-राग सिरजती ध्वनियाँ

श्रीराम परिहार

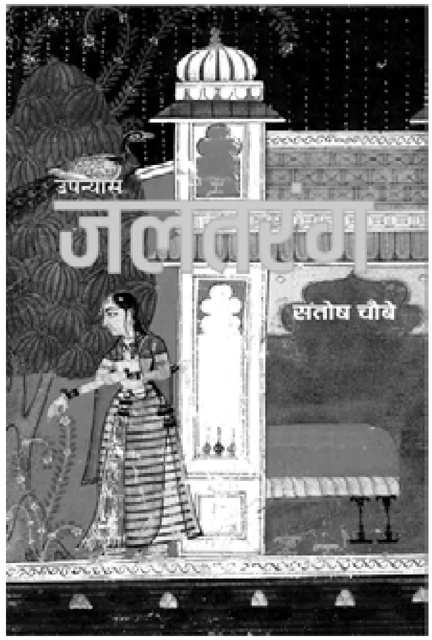

'जलतरंग' उपन्यास अपनी भारतीय शास्त्रीय संगीत-परम्परा के प्रति अटाटूट आत्मीयता एवं उसे जिज्ञासु भाव से जानने-समझने की आकांक्षा रखने वाली साहित्यिक रचना है। हिन्दी साहित्य का यह पहला उपन्यास है, जिसके कथानक के खेत-खलिहानों में संगीत की फसलें लहलहाती हैं। राग-रागिनियों के अन्नकण बिखरे हुए हैं। यह भी कहा जा सकता है कि इसकी कथा का पार्श्वनायक भारतीय संगीत है और अन्य पात्र राग-रागिनियाँ हैं। देवाशीष और स्मृति के माध्यम से नायक और अन्य पात्र संवाद भी करते हैं और भारतीय संगीत परम्परा में अपना स्थान और दाय भी आलोकित करते हैं। एक अक्षुण्ण और अविरल परम्परा की नर्मदा प्रवहमान हो रही है।

डॉ.संतोष चौबे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पन्न रचनाकार हैं। वे उतने ही भारतीय भी हैं। भारतीय इस अर्थ में कि वे अपनी कला-परम्पराओं को शास्त्र और लोक दोनों धरातलों पर देखते हैं। जाँचते हैं। सँभालते हैं। वे परम्परा को सम्पूर्णता में देखते हैं। उसे अद्यतन परखते हैं। अपने समकाल में उसकी मूल्याधारित उपादेयता अनुभव करते हैं। इसलिए अपने 'जलतरंग' उपन्यास की कथायात्रा भारतीय शास्त्रीय संगीत की सुन्दर, अनुपम, विस्मयकारी, संघर्षमय, एकांतपथिक, आत्मप्रबोधिनी और पूर्णतः रसमय यात्रा है। यह यात्रा स्वयं को जानने की भी है। यह यात्रा संगीत साधकों की तपस्या और उनके ज्ञान-गाम्भीर्य को प्रत्यक्षतः दृष्टा बनकर देखने की और उनके सान्निध्य में रहकर आत्मसात करने की है। यह अपनी जड़ों की ओर लौटने की है। उन जड़ों की रसग्राह्य क्षमता और उनके अक्षय-स्रोतों और उत्सों को निर्विकार भाव से समझने की है। यह यात्रा प्रकृति के पत्र-पत्र से झरते संगीत को सुनकर प्राकृत हो जाने की है। सुनते-सुनते तथा संगीत की साधना करते-करते सुसंस्कृत हो जाने की है।

देवाशीष के चरित्र में स्वयं रचनाकार संतोष चौबे की आत्मछवि अनेक प्रसंगों, संवादों और संबंध निर्वाह की वीथियों में मुखर होती है। यह छवि जब-जब बोलती है, तब-तब सम्पूर्ण उपन्यास के गुरुकुल में, मानवीय संवेदना, संबंधों की मसृणता और आत्मिक करुणा के तरु-गुल्म लहलहा उठते हैं। अपने पिता देवदत्त जोशी द्वारा लगाये गये आम्रवृक्षों और संगीत गुरु अत्रे गुरुजी के उपवन के तरुवरों की छाया में संगीत-परम्परा, मानव-मूल्य, शास्त्र-लोक, वेद-पुराण, इतिहास-दर्शन, अध्यात्म-विज्ञान, धर्म-कर्म, ज्ञान-भक्ति, परम्परा और आधुनिकता सुख से बैठकर सार्थक संवाद करते हैं। सितार के तार झनझनाते हुए सुरीले हो जाते हैं। जलतरंग की ध्वनियाँ जीवन-राग सिरजती हैं।

'जलतरंग' उपन्यास की प्रमुख बात खोजी है। इसलिए यह शोधकृति खण्डों और उपखण्डों में अपने कलेवर का विस्तार करती है। संगीत की यात्रा अत्रे गुरुजी के गुरुकुल से आरंभ होती है और ठेठ दक्षिण में केरल के समुद्र तट पर स्थित पणिक्कर गुरु के संगीतालय, देवगिरि के अप्पा साहब की सुर-साधना, मानसिंह तोमर संगीत विश्वविद्यालय ग्वालियर के कुलपति डॉ.मोहन दीक्षित का संगीत विद्यापीठ, खुनखुन गुरु की मथुरा की संगीत वीथियाँ, पं.वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी के संस्कृत विद्यालय, कृष्णानन्द चतुर्वेदी का संगीत घाट, उस्ताद रियाजुद्दीन खाँ कोलकाता की ख्याल गायकी से बातचीत द्वारा देवाशीष और स्मृति को जो संगीत सरणियाँ, संगीत यात्रा और संगीत का महाक्षेत्र प्राप्त होता है, वह इस उपन्यास के उद्देश्य का प्राण तत्व है। रेल यात्राओं में इतिहास और संगीत के जो पड़ाव चर्चाओं में उभरकर आये हैं, वे संगीत की इस शोधमय ज़िद को पूरा करने में सहायक होते हैं। उत्तर से दक्षिण और पूर्व तक यह सुर-ध्वनि, सुर-साज, सुर-जीवन, सुर-देस और सुर-साध की शोध-यात्रा भारतवर्ष के अतीत-वर्तमान को एक सेतु से जोड़ती है और अनेक सत्यों का प्रकटीकरण करती है।

यात्राओं, संवादों, चर्चाओं, चिन्तनों, परीक्षणों, मूल्यांकनों, सान्निध्यों, सदाचरणों, आयोजनों, संस्पर्शों से जो कृति-चरित्रों को निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, वे इस कृति की विषयगत और उद्देश्यगत श्रेष्ठता है। 'जलतरंग' के 22 या 26 चीनी के प्यालों में भरा हुआ जल कंपित होता है। ध्वनियाँ स्फुटित होती हैं। स्वर सधता है। राग आकार लेता है। कला-जगत में आकाशवाणी की तरह उद्घोषणाएँ और स्थापनाएँ गूँजती हैं- ''सितार न तो ईरान से आया और न ही अमीर खुसरो ने इसे बनाया। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर इसे सप्ततंत्री वीणा का ही विकसित रूप मानते हैं। सप्ततंत्री वीणा को ही सप्ततार, सत्तार, सतार और फिर सितार कहा जाने लगा। हज़रत मोहम्मद से 165 साल पहले जरहम बिनतोई नाम का एक गायक और कवि हो गया है, जो ओकाज के मुशायरे में तीन साल तक आता रहा था। उसकी तीन कविताएँ सोने के पत्रों पर अंकित कर मक्का के मंदिर में लटकाई गई थी। उनका सार था कि वे लोग धन्य हैं, जो राजा विक्रमादित्य के राज्य में रहते हैं। जो बड़ा दानी, धर्मात्मा, प्रजापालक और संगीत का ज्ञाता है। उसके सेहतार (सितार) वादन से दिल की कली खिल जाती है। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने ईश्वर, संगीत, काव्य और सामाजिक ज्ञान के बारे में जाना और सत्पथगामी होकर तल्लीनता के लिए सेहतारवादन (सितारवादन) जाना, वे लोग राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से हमारे देश में धर्म, विद्या, मौसिकी और

सितार के प्रचार के लिए आये थे।'' (पृष्ठ 18-19) सितार के तार गा उठते हैं। ध्वनि से आकाश भर जाता है। एक स्पष्ट स्थापना कला के नीलगगन पर अंकित होती है- ''सितार की उत्पत्ति तो पाँचवीं छठी शताब्दी में हो गयी थी। इस काल में त्रितंत्री वीणा का प्रचार था। सितार तथा तम्बूरा त्रितंत्री वीणा के ही विकसित रूप हैं।'' (पृष्ठ-19)

सितार और आगे बजती है। बहुत कुछ महत्वपूर्ण सत्य कहती है- ''ललित कलाओं का सृजन सुन्दरता के लिए होता है। सौन्दर्य का परिणाम आनन्द में है। जब सुन्दरता से आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है- तब उसे रस कहते हैं।'' (पृष्ठ-23) सौन्दर्य की परम अनुभूति आनन्द और उसकी परिणति रस है। यह असाधारण और सत्य स्थापना है। बात आगे और खुलती है। कई सुन्दर सोपान संगीत के सामने आते हैं- संगीत का मूल आधार 'नाद' है। भारतीय संगीत का प्रमुख आधार 'राग' है। वेद तो बहुत दूरी तक प्रकृति की पूजा और उसका गान हैं। राजाओं के लिए भी संगीत को जानना बहुत जरूरी था, नहीं तो उनकी गिनती सुसंस्कृत व्यक्तियों में नहीं होती। मातंग मुनि आठवीं शताब्दी में हुए। उनकी 'वृहद देसी' का आना आश्चर्यजनक है। वह पहला प्रयास था जब संगीत के 'देसी' स्वरूप को परिभाषित किया गया और राग रागिनियों का आगे का रास्ता खुला। भारतीय और ईरानी संगीत पद्धति के मिश्रण से जो नवीन गायन पद्धति प्रचलित हुई उसे ही हिन्दुस्तानी संगीत कहा गया। बैजू बावरा ने अपने अलौकिक संगीत ज्ञान का परिचय दिया। उसने अपने संगीत से जंगल से हिरणों को बुला लिया और पत्थरों को पिघला कर दिखा दिया। (पृष्ठ-50, 63) यह उपन्यास लगे हाथ गीत, गान और प्रबंध के बारे में विस्तृत जानकारी देता है। पंडित शारंगदेव, पंडित भीमसेन जोशी, गोपाल नायक, अमीर खुसरो, ध्रुपद, मानसिंह तोमर, महामुनि नारद, बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन, जयदेव, विद्यापति, शरण, धोयी, गोवर्धन, कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य, बैजू, बख्शू, तानसेन, वल्लभाचार्य, विठ्ठलनाथ, कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास के संगीत से संबंधों को भी उजागर करता चलता है। टप्पा, तराना, ठुमरी, दादरा इस देश के संगीत-आकाश में स्वर भर राग स्फुरित करने लगते हैं।

देवाशीष द्वारा की गयी लम्बी यात्रा में कोलकाता की चित्रवीथि से रोचक और अनुपम संवाद भी है। परम आत्मसात की स्थिति में चित्रों से संवाद संभव है। यह संगीत, साहित्य और कला-साधना तथा आत्म-साधना के अन्य सत्यान्वेषी क्षेत्रों में भी संभव है। यह अनुभव की बात है। यह संगीत यात्रा स्वयं की यात्रा भी है। स्वयं को जानने की, पहचानने की, शेष विश्व के लिए स्वयं को खोल देने की है। डॉ. संतोष चौबे का रचनाकार दड़ेगम उद्घोष करता है- ''भारत में संगीत की उत्पत्ति और विकास को जानने की यह यात्रा मेरे लिए खुद को पहचानने, अपने उद्गम तक जाने की यात्रा की तरह थी। इसके बाद मैं अपने आपको और भरापूरा, संवेदनशील और संगीतमय पाता हूँ।''(पृ. 36-37)

इतिहास इस उपन्यास में खूब बोलता है। अनेक क्रूर सत्य उद्घाटित करता है। महमूद गज़नवी और मोहम्मद गौरी जैसे लुटेरों की काली करतूतों और निंदनीय कार्यो का सच सामने आता है। देवगिरि, ग्वालियर के किलों का वैभव, उनका वास्तुशिल्प और उनका इतिहास-गौरव पाठक से मनभर बातें करता है। संगीत की अनुपम और दुर्लभ आधारभूत पुस्तकों- सेजरुल उकील, संगीत-सुमन, रस सिद्धांत, संगीत सुधा, संगीत सार, भारतीय संगीत की यात्रा, भारत का इतिहास, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, भरतमुनि का नाट्य शास्त्र, हर्षचरित्र, संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथों से यह उपन्यास प्रामाणिक रूप से परिचय कराता है। यह संगीत के माध्यम से मनुष्य बनाने वाला उपन्यास है। यह हमारे युग के अनाचार, शोर, बेसुर, बेसाज़ को बरजता है। यह आवाहन करता है कि संगीत के बिना आत्मा को कल नहीं पड़ेगी। 'जलतरंग' की मधुर राग-रागिनियाँ ही जीवन को ढाँढस देती हैं। संगीत ही गुरु है। राग-रागिनी सखा-बांधवी है। वो देखो- यमुना तट स्याम खेलत होरी, यमुना तट। चलो हम भी होरी के रंग के साथ स्याम रंग में रंग जाएँ। भीग जाएँ। डूब जाएँ। निखर जाएँ।

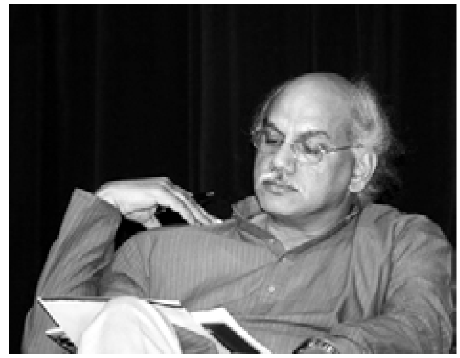

देवाशीष के चरित्र में स्वयं रचनाकार संतोष चौबे की आत्मछवि अनेक प्रसंगों, संवादों और संबंध निर्वाह की वीथियों में मुखर होती है। यह छवि जब-जब बोलती है, तब-तब सम्पूर्ण उपन्यास के गुरुकुल में, मानवीय संवेदना, संबंधों की मग्नता और आत्मिक करुणा के तरु-गुल्म लहलहा उठते हैं। अपने पिता देवदत्त जोशी द्वारा लगाये गये आम्रवृक्षों और संगीत गुरु अत्रे गुरुजी के उपवन के तरुवरों की छाया में संगीत-परम्परा, मानव-मूल्य, शास्त्र-लोक, वेद-पुराण, इतिहास-दर्शन, अध्यात्म-विज्ञान, धर्म-कर्म, ज्ञान-भक्ति, परम्परा और आधुनिकता सुख से बैठकर सार्थक संवाद करते हैं। अनिर्वाच्य विश्राम पाते हैं। सितार के तार झनझनाते हुए सुरीले हो जाते हैं। जलतरंग की ध्वनियाँ जीवन-राग सिरजती हैं।

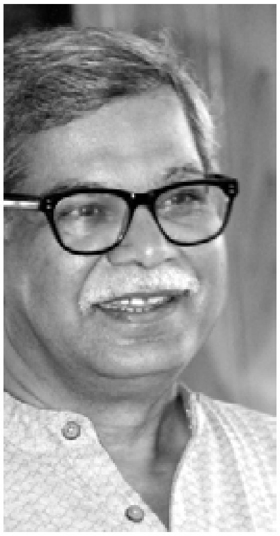

उपन्यास 'जलतरंग' हमें अपने शास्त्रीय संगीत से रूबरू करवाता है। कुछ एकेडमिक पोरशन भी है। संगीत को लेकर बहुत सारे ऐतिहासिक तथ्य भी है। यह कड़ा विशद परिप्रेक्ष्य है जो किसी एक नाटक में इतनी जल्दी संभव नही था कि दो घंटे में इसे कर सकें। पहले यह योजना थी कि हम इसके तीन प्ले करें। एक में आलाप और जोड़ हो, दूसरे में विलंबित हो और तीसरे में द्रुत हों। तीन दिन तक करें एक ही प्ले को। मै नयी चीजें ढूंढता रहता हूं करने के लिए। मुझे पुराने प्ले को करने में बिलकुल मज़ा नही आता। जैसे एक कवि नये विषय ढूंढता है, एक कहानीकार भी यही करता है। तो मै भी नया ढूंढता हूं। मुझे लगा 'जलतरंग' नया है। इसे अच्छे से करने की चुनौती है।

कुछ अलग करने की चाह

अशोक मिश्र से महेन्द्र गगन की बातचीत

जलतरंग उपन्यास को नाटक के रूप में तैयार करने के कारण?

- इसलिए कि यह एक नया विषय है और बहुत यथार्थवादी ढंग से इसे संतोष चौबे जी ने लिखा है। बड़ी रोचक कथा कही है। शास्त्रीय संगीत को समझने और जानने के लिए एक महत्वपूर्ण उपन्यास बन पड़ा है। अगर हम आज के समय में साहित्य का इतिहास समझना चाहते हैं तो उसके लिए यह उपन्यास एक द्वार की तरह है। जैसे भारतीय संस्कृति को समझना हो अगर तो श्याम बेनेगल का सीरियल 'भारत एक खोज' को देखा जा सकता है। तो बहुत सारी चीज़ें समझ आ जाती हैं। हमारी भारतीय संस्कृति को लेकर ज्ञान बढ़ता है।

'भारत एक खोज' का स्क्रिप्टिंग आपने किया था?

- हां, उसका स्क्रिप्टिंग मैंने किया था। लेखकों की टीम में मैं भी एक लेखक था। मैंने और वसंत देव जी ने संवाद लिखे थे उसके। वह भी एक तरह से मनोरंजक है और हमें अपने इतिहास से परिचित करवाता है। वैसे ही यह उपन्यास 'जलतरंग' हमें अपने शास्त्रीय संगीत से रूबरू करवाता है। समझाता है कि शास्त्रीय संगीत के बारे में भी मुझे अच्छा लगा। कुछ एकेडमिक पोरशन भी है। संगीत को लेकर बहुत सारे ऐतिहासिक तथ्य भी हैं। यह कड़ा विशद परिप्रेक्ष्य है जो किसी एक नाटक में इतनी जल्दी संभव नहीं था कि दो घंटे में इसे कर सकें। पहले यह योजना थी कि हम इसके तीन प्ले करें, एक में आलाप और जोड़ हो दूसरे में विलंबित हो और तीसरे में द्रुत हों। तीन दिन तक करें एक ही प्ले को। मैं नयी चीजें ढूंढता रहता हूं करने के लिए। मुझे पुराने प्ले को करने में बिलकुल मज़ा नहीं आता। जैसे एक कवि अगर किसी एक विषय में कविता लिख लेता है तो दुबारा उस विषय में कविता नहीं लिखता। नये विषय ढूंढता है। एक कहानीकार भी यही करता है। तो मैं भी नया ढूंढता हूं। मुझे लगा जलतरंग नया है। इसे अच्छे से करने की चुनौती है। फिर संतोष जी हमारे दोस्त भी हैं। इनके लेखन का मैं फैन रहा हूं। इनके पास एक अच्छी टीम भी है। यही कारण रहे 'जलतरंग' पर नाटक करने के।

उपन्यास पढ़ते हुए संगीत की यात्रा प्रमुख लगती है। जबकि आपके नाटक में शोर को प्रमुख रूप से दिखलाया गया है। हालांकि आपने संगीत के पक्ष को भी बहुत तरलता से प्रदर्शित किया है?

- उपन्यास में 70 प्रतिशत संगीत के बारे में है। 30 प्रतिशत शोर के बारे में। दोनों का झगड़ा सुर और असुर का झगड़ा है। जो हमारे समय का एक प्रमुख झगड़ा बन चुका है। वैसे यह तब से चल रहा है जब हमारे यहां अमृत मंथन हुआ था। तब सुर और असुर का झगड़ा अभी तक निरंतर जारी है। हर बार सुर की विजय हो रही है, असुर हार रहे हैं। बावजूद इसके असुर कभी समाप्त नहीं हुए। ये चलते रहेंगे। तो इस वजह से यह नाटक मुझे पसंद आया। दूसरा रस की सृष्टि होना चाहिए आदमी के जीवन में। यह इस नाटक को करते हुए समझ में आता है। इस नाटक में अत्रे गुरुजी का एक डायलाग है कि तुम्हारे बजाने में आनंद क्यों नहीं आया। वे कहते है क्योंकि तुम रस की सृष्टि नहीं कर पा रहे थे। तुमने जो सीन किया उसमें आनंद क्यों नहीं आ रहा है, क्योंकि तुम रस की सृष्टि नहीं कर पा रहे हो। तो इस नाटक से भारतीय संगीत के ज्ञान को समझने में मदद मिली।

इस उपन्यास पर एक क्लासिक नाटक की संभावना थी लेकिन आपने क्लासिकल और लोकप्रिय नाटक के बीच ग़ज़ब का संतुलन बनाकर इसे पेश किया, यह कैसे संभव हो पाया?

- मेरे काम में मैंने हमेशा आम दर्शकों को सामने रखा है। जिससे कि बुद्धिजीवी साहित्यकार तो हों लेकिन आम लोगों को भी नाटक प्रभावित कर सके। तो मुझे ज्यादा खुशी होगी। साहित्य लोगों को पसंद करवाना उतना मुश्किल नहीं जितना कि आम लोगों के लिए पसंद आना मुश्किल है। लेकिन यह नाटक तो छोटे बच्चों तक को पसंद आया। छोटे बच्चे बात करते हैं। जैसे गुरुजी जब मरते हैं तो मोहन सगोरिया की बेटी अपनी बहन से कहती है कि गुरुजी मर गये और डॉक्टर कुछ नहीं कर पा रहा है।

- संतोष जी की पोती घर जाकर अपनी मम्मी को नाटक के बारे में बताते हुए कहती है कि एक आदमी को चाकू लगा पर मरा नहीं।

भोपाल के दर्शकों के बारे में?

- भोपाल के 80 प्रतिशत दर्शक कमाल के हैं, जो नाटक देखना जानते हैं। नाटक देखने की तमीज़ है जिनके पास। एक संस्कार डेव्हलप हो गया है। वो कल्चर जानते हैं लेकिन जो 20 प्रतिशत लोग हैं जो देर से आते हैं। जो अपने बच्चों को रुलाते बैठे रहते हैं। जो उनको फौरन बाहर लेकर नहीं जाते। बच्चों का प्रवेश बंद होना चाहिए। कुछ बच्चे अच्छे भी होते हैं जिनको अच्छी ट्रेनिंग दी गई है। वे एक शब्द आवाज नहीं करते। लेकिन किसी शरारती बच्चे को आप ले आयें तो उसको दो घंटे चुप रखना मुश्किल होता है। मजे की बात ये रही कि इस प्ले के दौरान एक छोटा-सा झगड़ा भी हुआ। शो चल रहा था। एकदम से एक झगड़ा होने लगता है। तो वास्तव में भी हमने महसूस किया कि शोर पैदा करने वाले लोग यहां भी हैं।

एक प्रयोग और हुआ कि नायक सवाल पूछता है और जवाब दर्शकों के बीच से आते हैं। यह प्रयोग भी सफल रहा, इससे दर्शकों का इन्वालमेंट बढ़ा।

इस उपन्यास पर फिल्म संभव है? इसकी कोई योजना है क्या?

- बिलकुल संभव है। मैं चाहता हूँ कि इस पर कोई फिल्म बनाऊँ बढ़िया। साबित करें कि हिंदी में गंभीर उपन्यासों पर भी फिल्म बन सकती है। वह भी मनोरंजक फिल्म बने और जिसे आम आदमी देखे। क्योंकि प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए फिल्म बनाना बहुत कठिन नहीं होता, ऐसा मैं मानता हूं। लेकिन आम आदमी को बढ़िया चीजें दिखाना कठिन है। इस उपन्यास में मुझे कामर्शियल फिल्म की संभावना दिखती है। (सो काल्ड कमर्शियल) इसलिए भी बनना चाहिए कि इससे हिंदी के लेखक फिल्मों से जुड़ेंगे। हिंदी में एक से एक कमाल के लेखक हैं। लेकिन उनका नाम ही फिल्म जगत के लोग नहीं जानते हैं। तो इससे हम यह साबित करेंगे कि नहीं भैया हिंदी में भी अंतरराष्ट्रीय स्तर के कमाल के लेखक हैं। इसलिए 'जलतरंग' पर फिल्म बननी चाहिए।

भोपाल के रंगकर्मियों के बारे में क्या कहेंगे?

- भोपाल के रंगकर्मियों के बारे में मेरे खट्टे-मीठे अनुभव रहे। कुछ तो कमाल के वंडरफुल लोग हैं। कुछ में अनुशासन नहीं था। इसमें मुझे काफी समय लगा। कईयो में मैं देखता था कि इस लड़के या लड़की में बड़ी संभावना है लेकिन मैं उसे बाहर निकाल नहीं पा रहा था क्योंकि वे डिस्पिलीन नहीं थे। इसलिए मैं चिल्लाता था उनके ऊपर। बाद में लोगों से समझा कि ये सीरियस मामला है। तो इन लोगों को थोड़ा प्रोफेशनल होना चाहिए और रंगमंच को गंभीरता से लेना चाहिए।

कुछ लोग नाराज़ होकर भी चले गए थे क्या?

- हाँ, नाराज़ होकर चले गए थे। मालूम नहीं क्यों आये थे और क्यों चले गए। ठीक है कि आप पर कोई बंधन नहीं है लेकिन आपको यह मालूम होना चाहिए कि यदि आप कहीं काम करने जा रहे हों तो उसकी शर्तो पर आपको काम करना है। अपनी शर्तों पर यह आप किसी के पास काम करने जा रहे हों तो पहले बता दो कि भाई मेरी शर्त ये-ये है। यहां आपस में बहुत ही गुटबाजी है, बहुत सारे रंगकर्मी आपस में झगड़ा करते रहते हैं। एक-दूसरे को आगे बढ़ने देना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि हर जगह हमारा ग्रुप इन्वाल्व हो जाये, बाहर का कोई आदमी आ ना पाये। जबकि मैं चाहता था कि मैं भोपाल के रंगकर्मियों को लेकर काम करूं। जो भी स्थानीय ग्रुप मदद करना चाहता है करे। पर धीरे-धीरे मुझे लगा कि ग्रुप खुद चाहता है कि पूरा हम ही करें। रंगमंच करने वालों के लिए यह सही तरीका नहीं है। इससे इन लोगों को बाहर आना चाहिए। कला की दुनिया असीम है। लोगों में यह डर भी देखा

मैं चाहता हूँ कि इस पर कोई फिल्म बनाऊँ बढ़िया। साबित करें कि हिंदी में गंभीर उपन्यासों पर भी फिल्म बन सकती है। वह भी मनोरंजक फिल्म बने और जिसे आम आदमी देखे। क्योंकि प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए फिल्म बनाना बहुत कठिन नहीं होता, ऐसा मैं मानता हूं। लेकिन आम आदमी को बढ़िया चीजें दिखाना कठिन है। इस उपन्यास में मुझे कामर्शियल फिल्म की संभावना दिखती है। (सो काल्ड कमर्शियल) इसलिए भी बनना चाहिए कि इससे हिंदी के लेखक फिल्मों से जुड़ेंगे।

कि बाहर का निर्देशक आकर यहां कुछ अच्छा कर ना दे। इसका मतलब तो यह हुआ कि कोई बाहर का निर्देशक काम करने आये ही ना। ऐसा तो नहीं हो सकता ना। यह समझना चाहिए, उन्हें इस बेकार के दायरे से बाहर आना चाहिए। क्योंकि नाटक की दुनिया असीम है। यदि आप उसमें राजनीति डालेंगे तो कुछ हासिल नहीं होगा।

संतोष चौबे जी और आईसेक्ट परिवार के बारे में आपका अनुभव कैसा रहा?

- बड़ा अच्छा परिवार बनाया हुआ है संतोष जी ने। और रचनात्मक वातावरण है। यह मुझे सबसे बड़ी बात लगती है। जो भी इनके सहयोगी थे जैसे- मोहन सगोरिया, प्रशांत सोनी विक्रांत भट्ट, मनमोहन सोनी, राजेश शुक्ला जैसे अनेक लोग हैं। बड़े अच्छे लोगों का समूह है यह। नाटक को लेकर संतोष जी का भी पहला अनुभव था। तो हम सब लोगों को बहुत कुछ समझ में आया। यह भी समझ में आया जो आईसेक्ट के कलाकार काम कर रहे हैं वो बहुत अच्छा काम कर रहे हैं।

जलतरंग उपन्यास में आपने कुछ तब्दीलियां की लेकिन सारे उपन्यास के तंज को जस का तस रखा। नाटक को देखकर उपन्यास में कोई परिवर्तन नही लगा। यह कैसे संभव हुआ? जबकि कुछ हास्य और व्यंग्य भी उसमें आपने डाला?

- यह उपन्यास का नाट्य रूपांतरण करने की समझ की वजह से हुआ। मैं नाट्य रूपांतरण की कक्षाएं भी लेने जाता हूं इधर-उधर। नाट्य रूपांतरण का एक चेप्टर होता है कि किसी कहानी या उपन्यास का एडाप्टेशन कैसे करना चाहिए। मैंने इस उपन्यास को तीन-चार बार पढ़ा, पढ़ने के बाद उपन्यास रख दिया। फिर यह देखा कि क्या-क्या चीजें मुझे याद रह गईं। क्या-क्या चीजें मुझे याद नहीं रहीं। जो याद रह गईं उनको मैंने प्वाइंट के रूप में नोट कर लिया कि ये-ये तो मुझे लेना ही है। इतना स्पष्ट और साफ है। फिर मैंने उसको पढ़ा एक बार और कुछ चीजें मुझे समझ में आईं। फिर मैंने उनको छांट लिया। फिर मैं उस नॉवल को भूल गया। फिर मैंने उसे अपने ढंग से लिखना शुरू किया। चीजें वो-वो ही थीं। उनको लिखा मैंने अपने ढंग से नाटक बनाने के लिए उसमें थोड़ा ड्रामा जरूरी होता है, कहीं हास्य डाला ताकि वह बोझिल न लगे। मैंने जगह-जगह चुटकियां लीं। उसी फ्रेम के अंदर मैं खेला जो संतोष जी ने मुझे दिया था। मगर हो सकता है उसमें कोई एक शब्द हो उसको मैंने एक सीन बना दिया। कहीं उन्होंने बड़ा चेप्टर लिखा और उसको मैंने एक नरेशन में डाल दिया। यह सुविधा मैंने अपने हिसाब से ली। रोचकता बनाने की कोशिश की। चीजें मैंने वहीं से लीं। कभी संगीत के जरिए कभी हास्य के जरिए। ये भी हुआ कि पचासवें पेज की सामग्री को मैंने चौथे सीन में डाल दिया। बहुत सारी अच्छी चीजों को मैंने इस तरह अलग-अलग डाला। संतोष जी की राइटिंग में एक तरह की रोचकता तो है। यह उपन्यास चूंकि शैक्षणिक है लेकिन रोचक है। लेकिन उस तरह का रोचक नहीं कि एक ही बार में दर्शक तक पहुंच जाए, तो मैंने उसे रोचक बनाने की कोशिश की जिससे कि वह सीधा पहुंच सके।

संगीत का पक्ष बड़ा भी है और शोधपूर्ण है, जो पढ़ने में थोड़ा थकाता है। मगर नाटक में वह बहुत ही सरल-तरल रूप में दर्शकों तक पहुंचता है यह कैसे संभव हुआ?

- मुझे लगा कि सिनेमा को कैसे डालें इसमें। जब सारी चीजें रंगमंच पर आ सकती हैं तो सिनेमा क्यों नहीं। तो वो मैंने लिया। तो मुझे कुछ चीजें बड़ी सरल लगने लग गईं। मैंने सोचा अगर विलंबित को अगर मैं। हर सीन को ड्रामा में बदलना संभव नहीं था तो मैंने उसे सिनेमा के ज़रिए डाला। कहीं नायक अतीत में जाता है तो वह सीन स्टेज पर बनी खिड़की जिसमें स्क्रीन लगी है, उसके जरिए मैंने सिनेमा से क्रियेट की। जैसे नायक अपने पिता के घर की याद करता है तो उस घर को हमने शूट करके सिनेमा की स्क्रीन के जरिए दर्शकों को दिखलाया। इससे वह रोचक भी हो गया और दिखाना आसान भी हो गया। क्योंकि वह उसी सच्चाई के साथ देखते हैं। इसी तरह हम लायब्रेरी देखते है। लायब्रेरी का कल्चर अब मरता हुआ सा दिखता है हमको। बॉम्बे जैसे शहरों में घर में सब चीजें मुश्किल से रखने की जगह बनानी पड़ती है मगर किताब रखने की जगह तो बिलकुल नहीं होती है। यह अब फालतू लगती है। तो उस कल्चर को भी फिल्म के ज़रिए दिखलाया तो वह प्रभावी बन पड़ा। इसी तरह संगीत के गुरुजी का आश्रम, राग-रागनियों के चित्र आदि सजीव होकर नाटक के दर्शकों तक पहुंचे।

अशोक मिश्र
और
महेन्द्र गगन

बादल, बौछार और बयारों के मौसम में 'जलतरंग' की इस गमक का रोमांच कुछ ऐसा रहा कि भारत भवन की दर्शक दीर्घा समय से काफी पहले भर गई। यह एक नई साहित्यिक कृति की रंगमंच पर आमद का स्वागत तो था ही परंपरा और आधुनिकता के गठजोड़ से तैयार नई नाट्य शैली के प्रति भोपाल की अपार जिज्ञासा का प्रतीक भी।

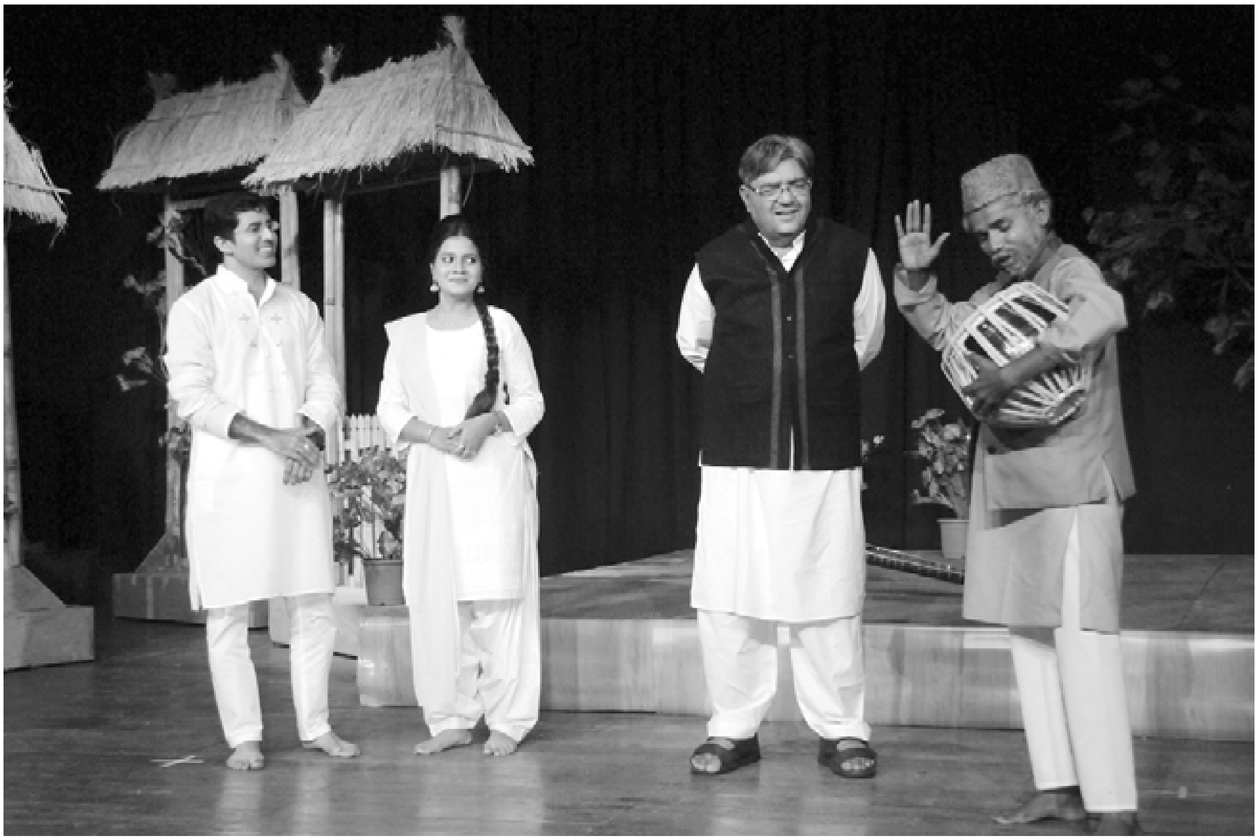

नई रंग भाषा और तकनीक की दस्तक

विनय उपाध्याय

रंगमंच अगर प्रयोग की भूमि है, तो यहाँ अनेक संभावनाएँ अपनी आँखें खोल सकती हैं। नया, अनूठा और रोचक इसी यकीन के आसपास अपना रूप गढ़ता है और अपने वक्ती दौर के सवालों से गुफ्तगू का सिलसिला चल पड़ता है। ...भारत भवन का अंतरंग प्रेक्षाग्रह कुछ ऐसे ही ताने-बाने से तैयार हुए 'जलतरंग' का जादुई सम्मोहन समेट लाया। साहित्य, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में नये उपक्रमों के साथ सक्रिय संतोष चौबे के उपन्यास को नाट्य रूपांतरित कर अपने ही निर्देशन में इसे नई रंग भाषा और तकनीक के साथ मंच पर उतार लाने का यह जोखिम उठाया सिने-लेखक और रंगकर्मी अशोक मिश्र ने। साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय, संवाद, चित्रकला और सिनेमाई तकनीक के बेहतर तालमेल से तैयार हुआ नाटक तमाम गुंजाइशों के बावजूद भोपाल के सांस्कृतिक परिवेश में एक नई आहट जगा गया। 'जलतरंग' में गूंजते जीवन के सरगम का यह रूहानी अहसास यकीनन दर्शकों के ज़ेहन में मुद्दतों कायम रहेगा।

'जलतरंग' हिन्दी का पहला ऐसा उपन्यास है जो आख्यान और आत्मकथ्य की शैली में भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा का हाथ थामकर जीवन के आरोह-अवरोह की कहानी सुनाता है। संगीत से गहरा प्रेम करने वाले और सुरीले भविष्य की कामना से भरे देवाशीष तथा स्मृति की जुगलबंदी के बीच कहानी रफ्तार पकड़ती है। कई किरदार जुड़ते है। प्रेम के कोमल गांधार पर विकृत और विवादी स्वरों का ग्रहण भी पड़ता है। विसंगतियों से दो-चार होते नायक-नायिका आखिर अपनी इच्छा का 'जलतरंग' पाने में कामयाब होते हैं।

दरअसल इस कथासार में संगीत और शोर के बीच संघर्ष है। इस संघर्ष में पिघलते कुछ नैतिक आदर्श और उसूल हैं जिनके संदर्भो के साथ संतोष चौबे अपने समय का एक बड़ा विमर्श खड़ा करते है। भारतीय ज्ञानपीठ से छपकर आए इस पुरस्कृत उपन्यास में अशोक मिश्र दृश्य

भोपाल स्थित कलाओं के मरकज़ भारत भवन में ..जुलाई की शाम अपने नये उपन्यास 'जलतरंग' पर आधारित नाट्य प्रस्तुति के भव्य मंचन के शुभारंभ अवसर पर दीप प्रज्जवलित करते हुए संतोष चौबे। साथ में नाट्य रूपांतरकार और इस प्रयोग के निर्देशक सिने पटकथाकार - रंगकर्मी अशोक मिश्र और 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' की संपादक विनीता चौबे।

नाटक के एक दृश्य में जलतरंग कथानक के मुख्य किरदार देवाशीष और स्मृति

की संभावनाओं की तलाश करने में काफी हद तक कामयाब रहे हैं। संगीत से सटकर चलती जीवन की कार्यवाहियों को मंच पर रचने का माद्दा उनके दोहरे अनुभव से आया है। नाटकों की ज़मीन से संस्कार लेकर सिनेमा की चौखट तक उन्होंने कदम बढ़ाए हैं। इसलिए दृश्य-बिंबों को सोचते रहना उनका शगल भी है, पेशा भी। 'जलतरंग' का विन्यास भी इसी आग्रह से उन्होंने रचा। नाटक और सिनेमा को एक साथ देखने और उससे सम्प्रेषण का तार जोड़ने का निहायत नया प्रयोग लेकर वे भोपाल के दर्शकों से पेश आए। हाँलाकि रचनात्मक दृष्टि से यह एक बड़ा नेटवर्क और जोखिम से भरा काम है लेकिन आयोजक संस्था आईसेक्ट का प्रबंधन कमोबेश हर मोर्चे पर सफल रहा। 'जलतरंग' का मंचन इस बात की ताईद भी करता है कि नाटक एक बड़ी लोकतांत्रिक विधा है और यहाँ साहित्य और कलाओं की आपसदारी से एक बड़े जीवन अनुभव को रचा जा सकता है।

पाँच अंकों आलाप, जोड़, विलंबित और झाला में फैले कथानक को मंच पर जीवंत करने पचास से भी ज्यादा कलाकारों का समूह तैयार हुआ। अधिकांश शौकिया रंगकर्मी जिनके लिए 'जलतरंग' का किरदार बनना तजुर्बा भी और उपलब्धि भी रहा। करीब ढाई घण्टे का मंचन अनेक छोटे-बड़े दृश्यों की श्रृंखला के साथ अपने चरम पर पहुँचता है। शिल्पकार प्रमोद गायकवाड़ के यथार्थवादी मंच पर साकार होते दृश्यों को कमल जैन की प्रकाश-परिकल्पना से फैलते अंधेरे-उजालों ने बहुत अनुकूल परिवेश प्रदान किया। संगीत के प्रामाणिक शोध और निष्कर्षों के बखान के साथ

बंदिशों के सरगम से नाटक की आत्मा खिल उठती है। निश्चय ही इसके लिए स्वयं अशोक मिश्र और संतोष कौशिक, आशीष पोतदार तथा स्मिता नागदेव को याद किया जा सकता है। 'जलतरंग' के बड़े केनवास को साधना अगर संभव हुआ तो नेपथ्य की शक्ति के रूप में सरिता चौरसिया, प्रशांत सोनी, सौरभ अग्रवाल, रोहित श्रीवास्तव, मोहन सगोरिया, मनमोहन सोनी, विक्रांत भट्ट जैसे अनेक जुझारू कलाकारों की सूझबूझ तथा श्रम को साधुवाद।

अभिनय और संवादों को लंबे अभ्यास के बीच साधने वाले अहम पात्र मुकुल त्रिपाठी, गणपत स्वरूप पाठक (देवाशीष), ज्योति दुबे, आशी दीक्षित (स्मृति), संतोष कौशिक (अत्रे गुरूजी), नीरज रिछारिया (नारायण राव), सावित्री भंडारी (शुभांगी), काफी हद तक अपने चरित्रों से अंतरंग रहे। अन्य सहायकों का तालमेल अगले मंचनों में और बेहतर होगा, उम्मीद की जा सकती है।

बादल, बौछार और बयारों के मौसम में 'जलतरंग' की इस गमक का रोमांच कुछ ऐसा रहा कि भारत भवन की दर्शक दीर्घा समय से काफी पहले भर गई। यह एक नई साहित्यिक कृति की रंगमंच पर आमद का स्वागत तो था ही परंपरा और आधुनिकता के गठजोड़ से तैयार नई नाट्य शैली के प्रति भोपाल की अपार जिज्ञासा का प्रतीक भी। 'जलतरंग' नए परिष्कार के साथ फिर रंगपटल पर अवतरित होगा - रंगप्रेमियों को प्रतीक्षा रहेगी।

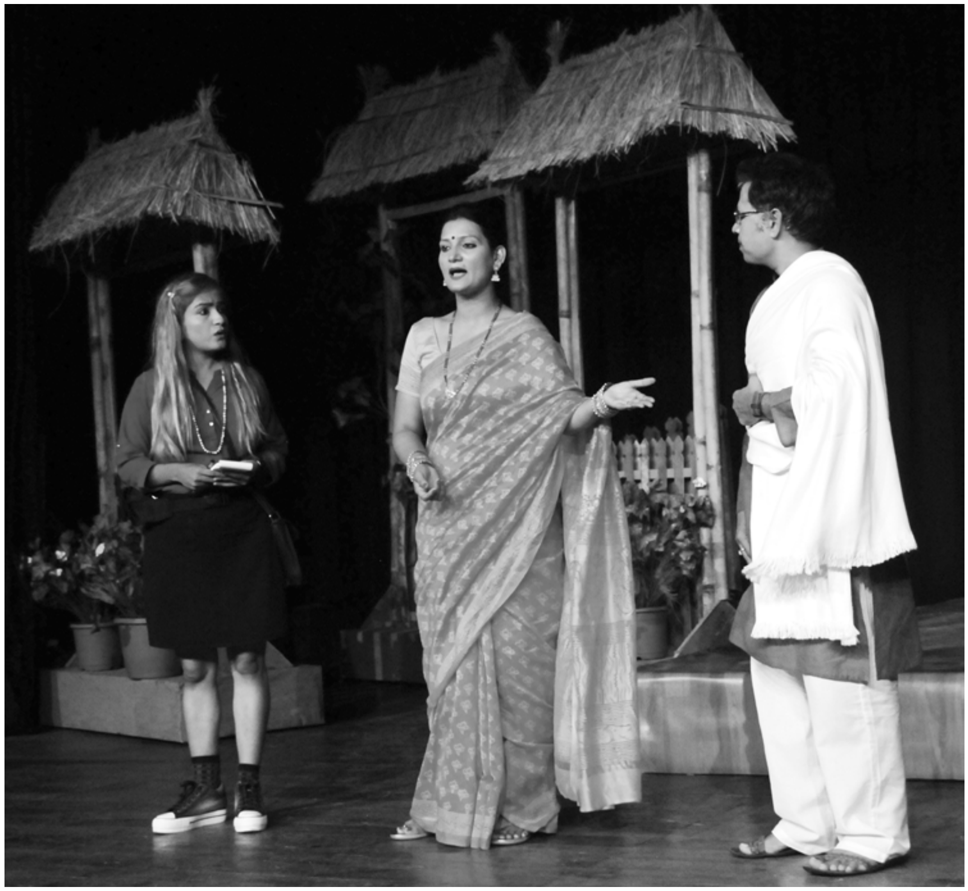

एक शायर के शेर से बात शुरू करते हैं, जिसका मजमून कुछ ऐसा है कि - मेरा क़ातिल सामने मुंसिफ बना बैठा है/देखना है फैसला किसके हक़ में होता है।

हमारा यह समय विलोम समय है। सब कुछ हमारी अपेक्षाओं के विपरीत घटता हुआ। यहां तक कि सपने देखने के पहले ही हम उनके टूटने की आवाज़ साफ़ सुन लेते हैं। हमारे बड़े-बूढ़ों ने हंसों के बेदखल होने के बाद कौओं के मोती चुगने के दौर की जो बात की थी,वह आज साक्षात हम देख ही रहे हैं।

आज के मशीनी दौर में क्रिएटिव होने या कलाकार होने में हास्यास्पद हो जाने के खतरे ज़्यादा हैं। लेकिन हम यह भी भूल जाते हैं कि इतिहास में सबसे गंभीर संकट यानी क्राइसिस के दौर में ही सबसे ज़्यादा क्रिएटिव काम हुए हैं। युद्ध हो या लगातार होते सियासी बदलाव या फिर अन्योन्य कारणों से समाज में होने वाली हलचल,ये सब रचनात्मकता की लहर उत्पन्न करने के कारक हैं।

विगत दिनों मंचित नाटक जलतरंग इसी लहर की बानगी प्रस्तुत करता अभिनव प्रयास है। विशुद्ध एमेच्योर आर्टिस्ट कास्ट और कुछेक पेशेवर कलाकार लेकर और वह भी ठेठ हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत जैसे सात्विक विषय के साथ नाट्य मंचन करना एक जोखिम से कम नहीं। मगर कहा गया है ना! ये इश्क़ नहीं आसां बस इतना समझ लीजै... जलतरंग के लेखक संतोष चौबे और निर्देशक अशोक मिश्रा सहित पूरी टीम को सलाम! सलाम! दरअसल सबके जुनून को!

40-45 दिनों में एक उत्कृष्ट नाटक को स्क्रिप्ट सहित खड़ा करना, निर्देशक अशोक मिश्रा के मुंबई फिल्म इंडस्ट्री के विगत ४० वर्षों के लंबे अनुभव का ही प्रमाण है। वैसे तो नाटक की कहानी किशोर,युवा एवं प्रौढ़ वय के संगीतकार नायक-नायिका देवाशीष व स्मृति के इर्द-गिर्द ही घूमती है,मगर उनके सुरों की दुनिया में गहराते काले बादलों की गड़गड़ाहट हालात के माध्यम से कुछ इस तरह रची-बुनी गई है कि लेखक-निर्देशक इस मायने में सफल हो जाते हैं जब नाटक देखकर निकला दर्शक कह उठता है अरे ! यह तो हम सबकी,आज की कहानी है। यह नाटक जितना ग़ैरपारंपरिक कलाकारों की अप्रतिम प्रस्तुति के लिए याद रखने योग्य है उतना ही इसे वीडियो-ऑडियो कंटेंट समाहित करने के साहसिक व अभिनव प्रयोगों के लिए भी जाना जाएगा।

शोर के बरक्स खड़ा संगीत : बरास्ते जलतरंग

राग तेलंग

प्रकाश संयोजन नाटक की लय से बराबर कदम-ताल करता चलता है, आलाप और विलंबित के क्षणों में मद्धिम प्रकाश और द्रुत व झाला के फेड आऊट दृश्यों में हौले-हौले प्रकाश की इंटेन्सिटी पर नियंत्रण को कुल मिलाकर प्रकाश का सांगीतिक प्रयोग कहा जाए तो बड़ी बात न होगी। कहना ना होगा कमल जैन के अनुभवी स्पर्श से नाटक की मोहक आभा दर्शक की दृष्टि में प्रवेश करती है। ख्यात संगीत विदुषी स्मिता नागदेव के निर्देशन मे तैयार नाटक का मनोहारी संगीत कुछ-कुछ संकलित व ज़्यादातर लाइव रिकार्डेड है,जो हर दृश्य में इस तरह गुंफित है कि नाटक में प्रवाह बना रहता है। कई कलाकारों का मंच पर पहली बार अभिनय प्रदर्शन अविस्मरणीय अनुभव रहा। टीवी कलाकार व अभिनेत्री ज्योति दुबे का काम बोलता है ठीक उनकी आंखों की तरह। मुकुल त्रिपाठी, गणपत स्वरूप, अदित्रि और आशी दीक्षित सहित सारे कलाकारों का जीवंत अभिनय देवाशीष और स्मृति की संगीत और संघर्ष यात्रा को अर्थवत्ता प्रदान करता है।

लंबे अभ्यास सत्रों के बाद भारत भवन के अंतरंग में मंचित एक पके हुए नाटक को देखना मेरे लिए आल्हादकारी अनुभव रहा। कह सकता हूं नवजात का पहला रूदन मैंने सुना और रोमांचित हुआ। मेरे पास बैठे कला पारखी मित्र ने अंत में कहा- राग भाई! यह नाटक नहीं एक सांगीतिक अनुभव है शब्दों,भावों और जुनून से सराबोर,

वह भी शायद हमारे मुल्क में एकमात्र और अनूठा! जलतरंग देखना किसी आध्यात्मिक उपलब्धि से कम नहीं! अब तो कलाकार को ही अपने पथ का चुनाव करना है या तो जोकर हो जाने का पथ या फिर कला का अग्निपथ!

कौओं के शोर से भरे इस विलोम समय में जलतरंग और सितार के सुरों की जुगलबंदी मेरे भीतर उतर गई है और मैं खुद को हंसध्वनि के पक्ष में खड़ा हुआ पाता हूं।

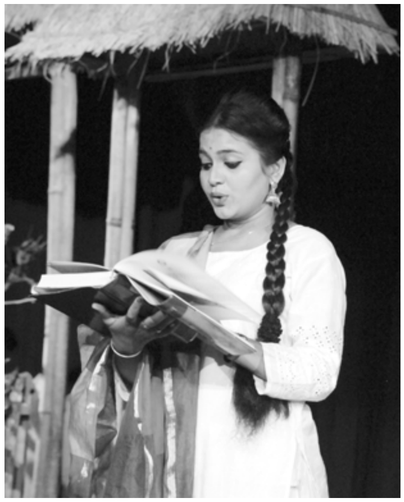

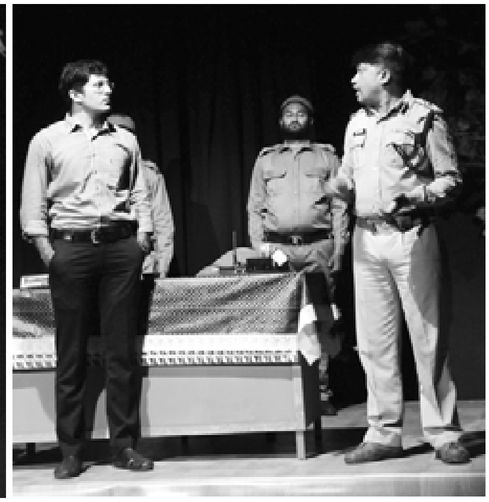

रंगमंच सम्पूर्ण अनुभव है

नाटककार राहुल सेठ से मजीद अहमद की बातचीत

लगभग तीस सालों तक अमेरिका में मैनेजमेण्ट और टेक्नॉलॉजी कंसल्टेंट की तरह काम करने के बाद राहुल सेठ सन् 2012 में दिल्ली प्रत्यावर्तित हुए। उन्होंने अपनी आरम्भिक शिक्षा अहमदाबाद में प्राप्त की और एम.ए. दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से तथा एमबीए सिटी यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क से। इन्हीं वर्षों में नाटकों से उनका लगाव हुआ। वाशिंगटन डीसी में खेले गये कई नाटकों में मुख्य अभिनेता की भूमिका निभाना भी उनके अनुभवों में शामिल है। राहुल सेठ का अंग्रेजी में पहला नाटक `Running on Empty' प्रकाशित हुआ। दिल्ली में उन्होंने 'लांग जम्प स्टुडियो' स्थापित किया, ताकि भारतीय कथा-साहित्य और नाटकों के मंचन के लिए एक प्लेटफॉर्म बन सके।

रंगमंच से आपका किस तरह का जुड़ाव रहा?

-मेरा जीवन अधिकतर अमेरिका-प्रवास में बीता। नाट्य-लेखन तक पहुंचने की यात्रा तो बहुत पहले शुरू हो गयी थी। कहिये कि एक चुभन-सी होती रही, जिसे अनदेखा करना मेरे लिए मुश्किल होता गया और इसे नाट्य रूप में अभिव्यक्त करना एक ज़रूरत-सी बन गयी। मुड़कर देखता हूं तो लगता है कि जिन आवेगों ने मुझे इस दिशा में धकेला, वे तो मेरे भीतर अरसे से गहराइयों में धंसे धीरे-धीरे पक रहे थे और फिर एकत्र होकर उभरे। बचपन में जब मैं दस साल का रहा होऊंगा, माता-पिता के साथ नाटक देखने जाने लगा। सोचता जरूर था कि यह सब है क्या, फिर भी मैं इस गढ़े हुए संसार को अभिमंत्रित-सा देखता रह जाता था। रामलीला के दौरान भड़कीले कपड़ों और लम्बी-लम्बी मूंछों वाले नर्तकों को तलवारें भांजते, नाचते देखना मन में खूब उत्तेजना जगाता था।

सत्तर के दशक में मनोहर सिंह, सुरेखा सीकरी, उत्तर बावकर ने अपनी प्रभावपूर्ण भूमिकाओं द्वारा कुछ ऐसा परिवेश रचा जिसमें विचरण करते रहना मुझे बेहद सहज लगता था। मोहन राकेश का नाटक 'आधे अधूरे' और जयवन्त दलवी के 'संध्या-छाया' में सामान्य लोगों की अन्दरूनी जिन्दगी और पीड़ा का चित्रण मुझे आज भी स्मरणीय है। जब मैंने लुई पिरेंडेलो के नाटक 'छह चरित्र लेखक की तलाश में' का मंचन देखा, तो उसने मेरे भविष्य की गति पर मोहर लगा दी। जिस सहजता से, पिरेंडेलो ने पेचीदा संरचना से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष को बुना है, उससे मैं बहुत मुग्ध हुआ था।

अमेरिका में जो रंगमंच हो रहा है, क्या उसमें भी अलग-अलग किस्म की धारायें हैं? राज्य के संरक्षण के बगैर भी क्या वहां रंगमंच मौजूद है? है, तो उसका स्वरूप और स्थिति क्या है?

अमेरिका में जो नाटक हो रहे हैं, उनमें रंग-भेद प्रमुख है। उसे लेकर अलग तरह की कठिनाइयां हैं। वहां के रंगमंच में सेक्स-सम्बन्ध, गे, समलैंगिकता को आधार बनाकर भी कई नाटक अभिमंचित होते हैं, जिसे एलजीबीटी संज्ञा से अभिहित किया गया है। सरकारी अनुदान बहुत कम मिलता है। कॉरपोरेशन/फाउण्डेशन बहुत सारे हैं जो पैसा देते हैं और जो ग्रुप हैं, विश्वविद्यालय हैं, संस्थान हैं, वे नाटक मंचन में रुचि लेते हैं। न्यूयार्क में 'ब्रॉडवे', 'ऑफ ब्रॉडवे', 'ऑफ-ऑफ ब्रॉडवे' की पूरी-पूरी तरह जीवंत मौजूदगी है। संस्थान भी हैं जो रंगमंच के पहलुओं को पढ़ाते हैं, वहीं से छात्र निकलते हैं। वहां तमाम अन्य सुविधाएं हैं, कुल मिलाकर यहां से अच्छा है।

अमेरिका में भी भारतीय नाटकों के कई ग्रुप हैं जो भारतीय नाटकों को बेहतर ढंग से मंचित कर रहे हैं, इनमें वाशिंगटन डीसी के 'ग्लोबल परफॉर्मिंग आर्ट्स', 'नाट्य भारती' प्रमुख हैं। इनके माध्यम से मंचित होने वाले नाटककारों में कुछ नाम हैं- विजय तेंडुलकर, सुरेन्द्र वर्मा, महेश दत्तानी, महेश एलकुंचवार, गिरिश कर्नाड, निर्मल वर्मा आदि।

अमेरिकी रंगमंच के सरोकार क्या हैं? आमतौर पर इन नाटकों की विषयवस्तु क्या होती है?

अमेरिकी समाज के जो सवाल हैं- उनमें व्यक्तिगत आजादी पर ज़ोर रहता है। ऐसे नाटक बहुतायत से मंचित होते हैं। 'ऑफ ब्रॉडवे'

नयी थीम को लेकर नाटकों को अभिनीत कराता है, उसमें नये प्रयोग दिखते हैं। नाटकों को देखने के लिए टिकटों की बिक्री होती है। आर्थिक मुद्दों को लेकर कम ही नाटक होते हैं। वामपंथी या किसी आइडियोलॉजी के नाटक कम होते हैं बल्कि इंडिविजुअल नाटक ज़्यादा होते हैं। कह लीजिये वामपंथी नाटक इक्का-दुक्का ही होता है।

भारत में रंगमंच की दशा आज भी दयनीय ही मानी जाती है। ज़िंदगी का हिस्सा भी वह नहीं बन पाया है। बिना सरकारी अनुदान के महानगरीय रंगमंच कम से कम असम्भव है। ऐसे में भारत आने और रंगमंच करने का निर्णय आप कैसे कर सके?

देखिये, दिल्ली के रंगमंच में उत्पादन और ऊर्जा है। हर जगह, हर दिन कहीं न कहीं नाटक होते ही हैं। वे नाटक को लेकर बहुत जोश में हैं। युवा रंगमकर्मी कुछ न कुछ नया कर रहे हैं- वे लगातार एक कोशिश में लगे हैं। सरकारी अनुदान से जो नाटक हो रहे हैं, वे तो व्यापक रूप से हो रहे हैं, लेकिन प्राइवेट ग्रुप भी संघर्ष कर रहे हैं। वे रिहर्सल स्पेस की कमी, ऑडिटोरियम के किराये को लेकर जद्दोजहद, टिकट बिक्री की समस्या आदि से घिरे हैं। बावजूद इसके ऐसे व्यक्तिगत रंग-समूह अपने नाटकों को अभिनीत करते हैं, यह उनके जोश और कमिटमेंट का सबूत हैं। मंडी हाउस के किसी नाटक में अकसर देखा जा सकता है कि ऑडिटोरियम में जगह न होने पर लड़के-लड़कियां खड़े रहते हैं, यहां तक कि दर्शक-दीर्घा की खाली जगह भी खाली नहीं दिखती। ज़ाहिर है कि नाटक के प्रति लोगों में भरपूर उत्साह है, अतएव नाटक हमारी ज़िन्दगी का हमेशा एक हिस्सा रहेगा। मेरे लिए नाटक अपनी व्यक्तिगत ज़रूरत है।

भारत में किन लोगों के काम को देखने का अवसर प्राप्त हुआ? कोई ऐसी प्रस्तुति जिसने आपको गहराई से प्रभावित किया।

मैंने यहां पिछले चार-पांच सालों में करीब ढाई सौ नाटक देखे हैं। और इनमें हर तरीके के नाटक देखने की कोशिश की। उनमें अच्छे भी नाटक हैं और कुछ बुरे भी। किसी एक का नाम कैसे लूं? लेकिन एमके रैना, अनुराधा कपूर, देवेन्द्र राज अंकुर, रॉबिन दास, अरविन्द गौड़, के माधवन, सत्यव्रत राउत, मोहित टाकलकर, शान्तनु बोस, हैप्पी रणजीत के नाटक सोचने के लिए विवश करते हैं। मुम्बई से जो नाटक आ रहे हैं, वे आमतौर पर दिल्ली के नाटकों से बहुत कुछ अलग हैं। आम आदमी की समस्याओं पर ज्यादा नाटक होते हैं पर यहां तो बहुत से नाटक घूम-फिरकर वही होते हैं। फर्क है। बाम्बे की यह बात मुझे पसंद है कि हम साधारण आदमी के संघर्ष पर नाटक करते हैं, लेकिन यहां धार्मिक, ऐतिहासिक और मिथकों पर आधारित नाटक कुछ ज्यादा ही होते हैं। स्थापित नाटक वही कोई दो-तीन दशकों से हो रहे हैं, ज्यादा कुछ बदलाव नहीं दिखता।

अमेरिका में जो नाटक हो रहे हैं, उनमें रंग-भेद प्रमुख है। उसे लेकर अलग तरह की कठिनाइयां हैं। वहां के रंगमंच में सेक्स-सम्बन्ध, गे, समलैंगिकता को आधार बनाकर भी कई नाटक अभिमंचितहोते हैं, जिसे एलजीबीटी संज्ञा से अभिहित किया गया है। सरकारी अनुदान बहुत कम मिलता है। कॉरपोरेशन/फाउण्डेशन बहुत सारे हैंजो पैसा देते हैं और जो ग्रुप हैं, विश्वविद्यालय हैं, संस्थान हैं, वे नाटक मंचन में रुचि लेते हैं। न्यूयार्क में 'ब्रॉडवे', 'ऑफ ब्रॉडवे', 'ऑफ-ऑफ ब्रॉडवे' की पूरी-पूरी तरह जीवंत मौजूदगी है। संस्थान भी हैं जो रंगमंच के पहलुओं को पढ़ाते हैं, वहीं से छात्र निकलते हैं।

पश्चिमी दुनिया के किन नाटककारों ने आपको प्रभावित किया?

सेम्यूल बैकेट, हेरल्ड पिंटर, अडवर्ल्ड एल्बी, आर्थर मिलर, एन्तोन चेखव, लुईजी पिरेंडेलो आदि नाटककार मुझे काफ़ी प्रभावित हैं।

अक़सर कहा जाता है कि हिन्दी में अच्छे नाटकों का अभाव है?

कम से कम मैं इस बात से सहमत नहीं हूं। छपे हुए नाटक बहुत हैं पर अभिनीत नहीं होते, यह भी एक बड़ा प्रश्न है। हम सिर्फ पश्चिमी लेखकों के कुछ नाटक करते जा रहे हैं। साथ ही धार्मिक और मिथक आधारित नाटक खूब कर रहे हैं, पर जो समय के ज़रूरी सवाल हैं, उनकी लगातार अनदेखी हो रही है। हिन्दी-अंग्रेजी की जो जानी-मानी कहानियां हैं, उनके नाट्य-रूपान्तरण से अच्छे नाटक तैयार किये जा सकते हैं। ये मेहनत करने की बात है। यहां के निर्देशकों को नये नाटकों के साथ रिस्क लेने की ज़रूरत है।

आप आगे नाटककार के रूप में सफ़र जारी रखना चाहते हैं या निर्देशक के रूप में? और क्यों?

राइटिंग, एक्टिंग। ...मुझे थिएटर के पूरे कैनवस में गहरी रुचि है। मैं इसे एक सम्पूर्ण माध्यम मानता हूं, जिसमें मेरी रचनात्मकता के अलग-अलग पहलू हैं। मैंने स्वयं अभिनय किया है और नाटक भी लिख रहा हूं। मेरे लिए मंच-निर्देशन अत्यन्त स्वाभाविक है। मैं अपने व्यापक अनुभव से रंगमंच को सम्पूर्णता में देखता हूं।

पौराणिक आख्यान और वर्तमान का द्वन्द्व

भालचन्द्र जोशी

मंच-राग

पिछले दिनों भोपाल, उज्जैन और इन्दौर में ''छत्तीसगढ़ फिल्म एण्ड विजुअल आर्ट सोसायटी'' द्वारा शिवाजी सावंत के प्रसिद्ध उपन्यास मृत्युन्जय के नाट्य रूपान्तरण का मंचन हुआ।

खरगोन से इतनी दूर जाकर मृत्युन्जय को देखने जाने के श्रम, समय और आकर्षण के पीछे अनेक कारण थे। एक तो यह कि एक 'कालजयी' कृति का मंचन था, दूसरा यह कि इसे सुप्रसिद्ध रंगकर्मी, नाट्य निर्देशक जयंत देशमुख निर्देशित करने वाले थे और इसका नाट्य रूपान्तरण सुप्रसिद्ध कवि राजेश जोशी ने किया है। निश्चित रूप से नाटक से मेरी अपेक्षाएँ स्वत: ही ज्यादा हो गई थीं। चूँकि इस नाटक की रायपुर में प्रथम मंचन से पहले तीन-चार लम्बी-लम्बी रिहर्सल मैं देख चुका था। नाटक में जयंत देशमुख स्थानीय कलाकारों को अवसर देने के जोखिम भरे उत्साह में कुछ ऐसे कलाकारों को भी प्रस्तुत कर रहे थे जो पहली बार मंच को संकोच और उत्साह से देख रहे थे।

'मृत्युन्जय' उपन्यास को असंख्य गैर साहित्यिक पाठकों का प्रेम भी मिला है। इसलिए 'मृत्युन्जय' यानी कर्ण के जीवन पर आधारित इस नाटक का कथासार बताना ज़रूरी नहीं है, क्योंकि कर्ण अपने आप में इतना बड़ा पौराणिक पात्र है कि वह मिथक बन गया है। कर्ण को एक विराट मिथक बनाने में वेदव्यास के साथ किंचित श्रेय मैं शिवाजी सावंत को भी देना चाहूँगा और क्रम को थोड़ा आगे बढ़ाकर कर्ण के जीवन को सामयिक सन्दर्भों से जोड़ने के प्रयास और प्रस्तुति की उत्साही निष्ठा के लिए सुप्रसिद्ध रंगकर्मी सुभाष मिश्र, जयंत देशमुख और राजेश जोशी के योगदान को भी उसी क्रम में रखना चाहूँगा। सुभाष मिश्र, जयंत देशमुख और राजेश जोशी के संयुक्त प्रयास की विशेषता ही यही है कि उन्होंने कर्ण को एक पात्र से आगे ले जाकर एक विचार की भाँति प्रस्तुत किया।

एक फिल्म कलाकार के अभिनय और आत्मविश्वास की असली परीक्षा मंच पर होती है। फिल्मों में दर्शकों की भीड़ कलाकार के प्रत्यक्ष नहीं होती है और संवाद अदायगी में भी वह संवादों को पृथक-पृथक समय में टुकड़ों में बोलने की सुविधा ले सकता है, लेकिन मंच पर कोई रिटेक नहीं होता है, वहाँ एक ही संवाद नहीं सारे संवाद निरन्तरता में बोलने होते हैं। इस कठिनाई को कर्ण के चरित्र में प्रस्तुत सुनील तिवारी ने बहुत श्रम और धैर्य से पार किया है। मैंने सुनील तिवारी को रिहर्सल के समय रायपुर में भी देखा था और उसके फिल्म कलाकार होने को लेकर मन कहीं थोड़ा सशंकित था, लेकिन इन्दौर में 'मृत्युन्जय' की प्रस्तुति देखकर उसके अभिनय, आत्मविश्वास और लम्बे-लम्बे संवादों को अभिनय की ज़रूरी नाटकीयता के साथ बगैर किसी हिचक, अवरोध में देखकर मैं मुग्ध हो गया। सुनील का शारीरिक सौष्ठव कर्ण के चरित्र के अनुकूल है और वह सुदर्शन भी है। मुख्य और विशेष बात यह है कि सुनील अब अपनी आँखों को अभिनय में शामिल करना सीख गए हैं। यह एक कलाकार की बड़ी उपलब्धि होती है। सुनील जब कर्ण होते हैं तो वह शौर्य, रोष, मासूम विलाप, मानसिक द्वन्द्व उनकी देहयष्ठि के साथ आँखों से भी अभिव्यक्त होता है।

जयंत देशमुख के सामने एक बड़ी समस्या यह भी थी कि कर्ण के साथ प्रस्तुत होने वाले पात्र भी उतने ही प्रभावी होना चाहिए ताकि कर्ण का चरित्र सम्पूर्णता में प्रकट हो और नाटक अपने ध्येय तक पहुँच सके।

चालीस पात्रों की विशाल संख्या को निर्देशकीय क्षमता से सँभालना इसलिए कठिन है कि फिल्म में तो एडिटिंग की सुविधा होती है, लेकिन मंच पर भीड़ में खड़े एक पात्र की भी अभिनय अभिव्यक्ति नाटक की मंशा से परे हो गई तो वह उस समय के पूरे दृश्य की अनिवार्यता को खण्डित करेगा। 'मृत्युन्जय' की इस प्रस्तुति में एकाध दृश्य को छोड़ दिया जाए तो लगभग प्रत्येक कलाकार ने अपना सम्पूर्ण देने की कोशिश की है।

पूरे नाटक का टेम्पो अच्छा बना हुआ था। सिर्फ एक जगह 'मृत्युन्जय' के एक और महत्वपूर्ण पात्र द्रोपदी को लेकर दृश्य को 'दचका' लगा। पात्र चयन की पहली अपेक्षा और प्राथमिकता तो द्रौपदी का अभिनय कर रही लड़की सपना के पास थी जिसने उस पात्र के चयन में उसकी मदद की क्योंकि द्रौपदी बेहद सुन्दर स्त्री थी। सपना चरित्र में दाखिल हो उसके लिए उसके स्वभाव की सरलता भी संभवत: किंचित बाधा खड़ी कर रही थी, क्योंकि द्रौपदी जैसी सुन्दर और अभिमानी स्त्री का दर्प इस चरित्र के चेहरे पर नहीं आ पा रहा था। खासकर उस समय जब छत पर घूमती हुई मछली के आँख में निशाना साधने में वीर राजकुमार असफल हो रहे थे। ऐसे समय में द्रौपदी के चेहरे पर जो अभिमान और किंचित मात्र व्यंग्य की जो महीन मुस्कान होनी थी, वह सपना के चेहरे पर नहीं थी, अन्यथा दृश्य और प्रभावी बन जाता।

नाटक की एक विशेषता यह भी थी कि कारणवश जो पात्र नहीं

आ पाए उसके लिए तत्काल जो विकल्प के रूप में कलाकार आए उन्होंने अपनी संवाद अदायगी और अभिनय में उस विकल्प की विवशता को नहीं आने दिया। कमाल तो यह था कि नाटक के प्रथम भाग में जो कुंती का अभिनय कर रही थी, दूसरे भाग में दूसरी स्त्री उसके स्थान पर थी, लेकिन दर्शकों को यह कहीं भी भान नहीं हो पाया कि चरित्र वही है, लेकिन पात्र बदल गए हैं। पृथक-पृथक दोनों कलाकारों ने लम्बे-लम्बे संवाद स्वाभाविक रूप से बोले, लेकिन चरित्र के भीतर उतरकर उस चरित्र को जो कलाकार जीने लगता है, उसके लिए स्व का अस्तित्व खत्म हो जाता है जैसे सुनील तिवारी कहीं से भी सुनील तिवारी नहीं लगते, वह 'मृत्युन्जय' के चरित्र के भीतर दाखिल हो गया है। वह मंच पर आते ही कर्ण लगता है, हर कोण और हर दृष्टि से।

उपन्यास 'मृत्युन्जय' में मृत्यु के दृश्य में वर्णनात्मकता का सहारा था जो नाटक में संभव नहीं था इसलिए कृष्ण द्वारा बाण को मध्य से तोड़ना और दृश्य का अँधेरे में विलीन हो जाना, बेहद प्रभावी संवेदनशील दृश्य बन पड़ा। इसी के साथ दृश्य के अँधेरे में विलीन होते समय पार्श्व में कर्ण की जयगान की मार्मिक धुन ने पूरे दृश्य को मार्मिक बना दिया। उपन्यास के मंचन में चुनौती ही यही थी कि इसे किस हरकत और किस जगह समाप्त किया जाए? कृष्ण का बाण तोड़ना और दृश्य का अँधेरे में चले जाना ही कर्ण की त्रासदी को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करने की सफलता है।

आनंद मोहन माथुर सभागृह में एक दिक्कत यह थी कि वहाँ जो भी कारण रहे हों, लेकिन मंच के लिए प्रकाश व्यवस्था संभवत: न के बराबर थी। चूँकि मैं नाटक शुरु होने के काफी पहले थियेटर हॉल में पहुँच गया था तो मैंने देखा कि किस तरह प्रकाश संयोजन की थियेटर की कमी को जयंत देशमुख और विशेषकर कमल जैन ने इस तरह संयोजित किया कि वह मंच पर ही पीछे बैठे संगीतकार भी प्रकाशित न होने पाए अन्यथा दर्शक पात्रों को छोड़कर संगीतकारों पर दृष्टि केन्द्रित करते। मंच की ज़रूरतों के सामान्य अभावों से जयंत हताश नहीं होते, वे उसे चुनौती की भाँति स्वीकार करते हैं, यह 'मृत्युन्जय' के इस मंचन के दौरान महसूस किया। बकौल कमल, रौशनी भी मंच पर एक किरदार बन जाती है।

नाटक के मंचन में यदि मंच के कोने में एक टोकरी भी रखी है तो वह निर्देशक के सोच का हिस्सा होती है कि वह दृश्य के लिए कितनी उपयोगी है। मंच के लिए कौन-सी सामग्री कितनी उपयोगी होगी निर्देशक की इस मंशा को समझकर उसे किफायत से जुटाना प्रस्तुति संयोजन और सामग्री सहायकों की बड़ी ज़िम्मेदारी होती है। इस मंचन में जयंत देशमुख ने स्टेज प्रॉपर्टी के लिए छत्तीसगढ़ की लोककलाओं से सज्जित स्थानीय सामग्री का उपयोग किया है। इस दृष्टि को संभव बनाने के लिए प्रस्तुति में श्रीमती रचना मिश्र और श्रीमती सुजाता राजिमवाले को जो मदद कौशल विश्वकर्मा, बृजेश इंगले, सम्पत चारी, अनमोल वाजपेयी, मोनिकासिंह और महेन्द्रसिंह ने की है वह सिर्फ उनके श्रम को ही नहीं प्रकट करती है, बल्कि मंचन को लेकर उनकी दृष्टि के विकास को प्रकट करती है।

अभिनय में दुर्योधन की भूमिका में शकील साजिद ने कमाल का काम किया है। एक मुस्लिम व्यक्ति ने एक हिन्दु पौराणिक पात्र का अभिनय किया है यह उतना उल्लेखनीय नहीं है, क्योंकि एक निष्णात कलाकार के लिए सब संभव है, लेकिन अपनी धज यानी भरी-पूरी देह को दुर्योधन की काया में तब्दील करने की सुविधा को अपने अभिनय कौशल से सम्भव बनाया है।

कुछ पात्रों के श्रम से ही नाटक का मंचन सफल नहीं होता है, यह एक टीम वर्क है। संयोग और श्रम से सुभाष मिश्र ने मंचन की 'शिविर परिकल्पना' और प्रस्तुति को इस पूरी टीम के सहयोग से संभव किया है। नाटकों के प्रति सुभाष मिश्र की लगन, जुनून श्रम और समर्पण कुछ ऐसा उसके व्यक्तित्व का हिस्सा हो गए कि वह नाटक की प्रस्तुति को सफल और संभव बना लेता है। उसके समर्पण और जुनून के सफल सहयोगियों में शेखर शुक्ला (भीष्म पितामह), रचना मिश्र (राधा माँ), डॉ. अनुराधा दुबे/आलिया (कुंती), पूनम मिश्रा (वृषाली), संजीव मुखर्जी (अधिरथ, इन्द्र), क्रांति दीक्षित (अश्वत्थामा), अभिषेक चौधरी (कृष्ण), सुहास बंसोड़ (द्रोण, सैनिक, ठिंठोरची), सुरूचि मिश्रा (नर्तकी, छोटी कुंती), आकाश सोनी (सूर्य, अर्जुन, जंगली भैसा), मुकेश यादव (शकुनी, सैनिक, संजय, शैल्य), अनमोल वाजपेयी (शोण), मोनिकासिंह (नर्तकी, सेविका), निशु पांडे (धृष्टद्युम्न), कौशल विश्वकर्मा (धृतराष्ट्र), सागर (वृषवर्मा, सैनिक), साकेत साहू (सत्यसेन, सैनिक), हेमंत यादव (द्रुपद, सैनिक), विवेक सोलंकी (सैनिक), अजय जांगड़े (सैनिक) महेन्द्र राजपूत (सैनिक), ललित देवांगन (सैनिक), सूरज सोनी (सैनिक) एवं अन्य कलाकार जो नाटक के महत्वपूर्ण पात्र भी अभिनित कर रहे थे और साधारण सैनिक भी, रंगकर्म के प्रति यह समर्पण है जो फिल्म और टी.वी. में संभव नहीं है कि बड़ी भूमिका के बाद कोई कलाकार छोटी भूमिका स्वीकार कर ले।

सबसे महत्वपूर्ण जटिल और मंचन की दृष्टि से जोखिम भरा दृश्य था कर्ण की मृत्यु। इसे संवेदना के उस स्तर तक निर्देशक को ले जाना था जहाँ वह दर्शकों की संवेदना से सम्बद्ध हो जाए और यही जयंत देशमुख की सफलता भी थी। उपन्यास 'मृत्युन्जय' में मृत्यु के दृश्य में वर्णनात्मकता का सहारा था जो नाटक में संभव नहीं था इसलिए कृष्ण द्वारा बाण को मध्य से तोड़ना और दृश्य का अँधेरे में विलीन हो जाना, बेहद प्रभावी संवेदनशील दृश्य बन पड़ा। इसी के साथ दृश्य के अँधेरे में विलीन होते समय पार्श्व में कर्ण की जयगान की मार्मिक धुन ने पूरे दृश्य को मार्मिक बना दिया। उपन्यास के मंचन में चुनौती ही यही थी कि इसे किस हरकत और किस जगह समाप्त किया जाए? कृष्ण का बाण तोड़ना और दृश्य का अँधेरे में चले जाना ही कर्ण की त्रासदी को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करने की सफलता है।

इसी संदर्भ में नाटक के प्रस्तुति प्रमुख ख्यात रंगकर्मी सुभाष मिश्र का कहना है कि- प्रत्येक पौराणिकता अपने आख्यानों में हर समय के लिए, हर वर्तमान के लिए उसकी उपस्थिति का स्पेस बचाकर रखती है और बताती भी है। यह एक चुनौती थी जिसे हम 'मृत्युन्जय' से संभव करने की कोशिश में लगे हैं।''

फ़ीचर

अमृता के सौन्दर्य पर मुग्ध थे नेहरु

किशोर दिवसे

यकीनन अठाईस बरस की उम्र में मौत ने उसे हमेशा के लिए खामोश कर दिया लेकिन अगर उपलब्धियों की बात करें तो उसे भारत की फ्रीदा काहलो कहा जाता है, अमृता शेरगिल को। पेंटर अमृता पंजाबी सिख पिता और हंगेरियन-यहूदी माता की संतान थी। कम उम्र से ही वह चित्रकारी में रम गई। हंगरी में रहने के दरम्यान अमृता का परिवार फाकेमस्ती की हालत में आ जाने की वजह से शिमला आ गया। वह दौर था 1919 का। बीसवीं सदी की चित्रकारी में अमृता शेरगिल सशक्त हस्ताक्षर रहीं। वे आधुनिक भारत की पहली महिला चित्रकार हैं।

अमृता की ज़िन्दगी के रंग अनेक देशों में छाप छोड़ते रहे। पेंटिंग के शुरूआती गुर अमृता ने मेजर व्हितमार्श से सीखे। बाद में बेवन पेटमेन, अमृता के गुरु रहे। अमृता के चाचा इरविन बक्ताम मशहूर इंडोलोजिस्ट थे। भारतीय चित्रकला व संस्कृति यूरोप में चर्चित करने में उनका अभूतपूर्व योगदान रहा। अमृता को उन्होंने भी चित्रकला में प्रशिक्षित किया। इरविन ने ही बताया कि कैसे घरेलू कामगारों को मॉडल की तरह चित्रकारी में इस्तेमाल किया जाता है। 1924 में अमृता इटली में फ्लोरेंस के सांता एनान्जियाला आर्ट्स स्कूल में अध्ययनरत रही। ग्रैंड शमियर इकोल देस ब्युक्स आर्ट्स स्कूल हंगरी में भी हुई।

हंगरी, इटली, फ्रांस और भारत की जिंदगी उनकी चित्रकला में प्रतिबिंबित होती रही। 1932 में शेरगिल की बनाई युवतियों की कलाकृतियों ने ज़बरदस्त वाहवाही बटोरी। कालान्तर में उनकी पेंटिंग ताहितियन (1937), रेड ब्रिक हाउस (1938), हिल सीन (1938), द ब्राइड (1940) ने धूम मचा दी। बीसवीं सदी के दौरान शेरगिल को मिलने वाली कलाकृतियों की कीमतें चौंकाने वाली रहीं।

हंगरी के बुडापेस्ट में अमृता का जन्म 30 जनवरी 1913 को एक अमीर परिवार में हुआ था। पिता उमराव सिंह शेरगिल संस्कृत और पर्शियन के विद्वान थे। आठ बरस की उम्र में ही अमृता ने पेंटिंग सीखना शुरू कर दिया था। अमृता की मुलाक़ात मई 1935 में अँगरेज़ पत्रकार माल्कम मगरिज़ से हुई जो स्टेट्समैन कोलकाता में सहायक संपादक थे। अमृता में शिमला में साथ-साथ रहने के दौरान माल्कम की एक पेंटिंग बनाई। माल्कम बाद में इंग्लैण्ड लौट गए। शेरगिल ने कला समीक्षक कार्ल खंडलावाला के सुझाव पर अजन्ता की गुफाओं, पहाड़ी और मुग़ल स्कूल ऑफ पेंटिंग का गहन अध्ययन किया। 1937 में शेरगिल ने दक्षिण भारत का दौरा किया। कलाकृति त्रयी में उन्होंने वधू का स्नानगृह, ब्रह्मचारी, बाज़ार जाते ग्रामीणों पर बनी कलाकृतियाँ बनाई।

''मैं सिर्फ भारत में ही पेंटिंग बना सकती हूँ।'' शेरगिल ने अपनी मित्र से कहा था। यूरोप में पिकासो, मातिस और ब्रेक का वर्चस्व है लेकिन भारत मेरा है।' भारत में अमृता ने रहने के दौरान कला धर्मिता का नया युग जीया। अमृता शेरगिल के चौदह वर्ष की उम्र में (1927) में बनाये गए सेल्फ पोर्ट्रेट को हाल ही डीएजी मॉडर्न आर्ट फेयर दिल्ली में आयोजित इन्डियन आर्ट ऑक्शन में शामिल किया गया है। उनके कई चित्र दिल्ली की नेशनल गैलरी में सहेज कर रखे गए हैं। अमृता शेरगिल ने अपने हंगेरियाई चचेरे भाई डॉ. विक्टर एगन से 1938 में अपने गृह निवास पर शादी की और गोरखपुर के सराय स्थित अपने गृह निवास पर लौट गई। महिलाओं की पेंटिंग जो अमृता ने बनाई उनपर रवीन्द्रनाथ और चमकीले रंगों तथा शियारोस्क्युरो का उपयोग अवनीन्द्रनाथ का प्रभाव दर्शाता है, जो बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट्स के ध्वज वाहक थे।

गाँधी दर्शन का भी अमृता पर काफी प्रभाव रहा। अमृता के सौन्दर्य का जादू नेहरु के सर चढ़कर बोलता रहा। एक दौर था जब ग्राम पुनर्निर्माण के लिए कांग्रेस के प्रचार में शेरगिल की कलाकृतियों को खूब इस्तेमाल किया गया। विक्टर और अमृता सितम्बर 1941 में लाहौर चले गए। कहा जाता है कि कुछ पुरुषों के अलावा महिलाओं से भी उनका प्रेम संबंध रहा। ''टू वुमन'' नाम की पेंटिंग अमृता और उनकी प्रेमिका की बताई जाती है।

अमृता शेरगिल की पेंटिंग का असर सैयद हैदररज़ा से लेकर अर्पिता सिंह तक दिखाई देता है।

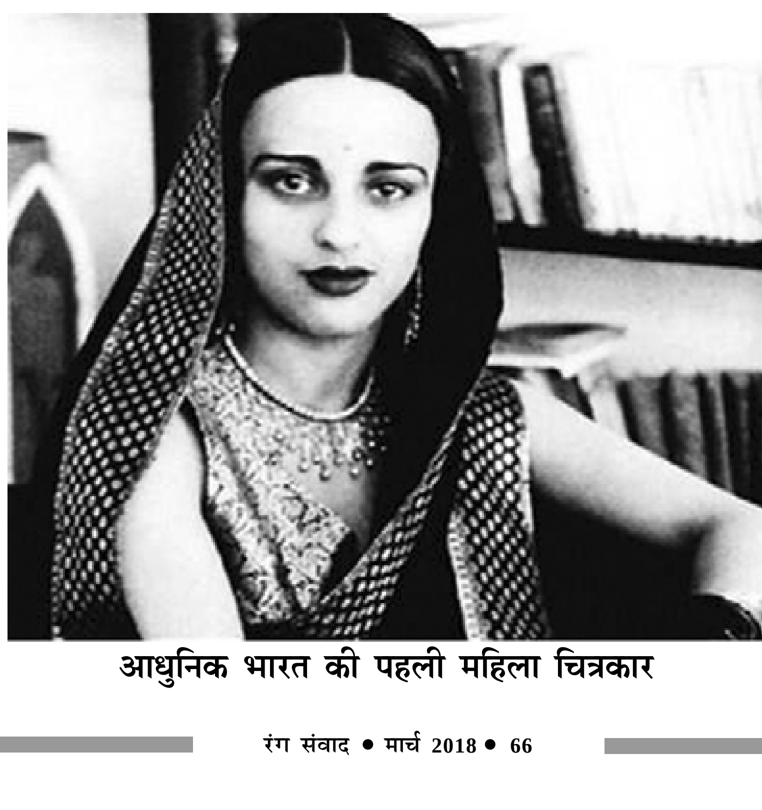

आधुनिक भारत की पहली महिला चित्रकार

महिलाओं के बहुआयाम को शेरगिल ने अपनी कलाकृतियों का अहम विषय बनाया। डाक-तार विभाग ने शेरगिल की पेंटिंग पहाड़ी औरत पर डाक टिकट भी प्रकाशित किया। दिल्ली में अमृता शेरगिल मार्ग का नामकरण भी किया आया। 2006 में ''गाँव का दृश्य'' नाम की अमृता की पेंटिंग दिल्ली में नौ करोड़ में नीलाम हुई जो भारत में उस दौर की सर्वाधिक कीमत थी।

अनेक चित्रकारों की प्रेरणा थी अमृता शेरगिल। जावेद सिद्दीकी के चर्चित नाटक तुम्हारी अमृता ''(1992) का केन्द्रीय किरदार भी अमृता रही। जिसमें शबाना आज़मी और फारुख शेख ने भूमिकाएं निभाईं। अमृता चौधुरी के उपन्यास ''फेकिंग इट'' अमृता की कलाकृतियों पर आधारित था। सलमान रुश्दी के 1995 में प्रकाशित उपन्यास ''द मूर्स लास्ट साईं'' में आरोरा ज़ोगोबी का किरदार भी अमृता पर आधारित रहा।

1941 में जब अमृता लाहौर में अपनी सोलो पेंटिग प्रदर्शनी के उदघाटन में व्यस्त थीं, यकायक गंभीर रूप से बीमार होकर कोमा में चली गईं। 5 दिसम्बर 1941 की मध्यरात्रि अमृता शेरगिल का लाहौर में निधन हो गया। गर्भपात और उससे उपजी शारीरिक तकलीफों को मौत की वजह बताया गया है। अमृता की मां ने आरोप लगाया, ''मेरी बेटी अमृता के पति विक्टर ने उसकी हत्या कर दी.'' आखिरकार 7 दिसम्बर को अमृता को दफना दिया गया। कलाकृतियों की अनमोल विरासत वे छोड़ गईं।

चित्र का शरीर

चित्र का शरीर है यह
लेकिन चित्रकार के हाथ से
फिसल गया है चित्र का चित्त

जैसे कि - राग का रूप तो
ला पाया हो संगीतकार
रूह लाने में फूल गयी हो उसकी साँस
कविता के विन्यास भर पर
इतरा रहा हो कवि
और कविता की काया में
आत्मा लाने में काँप गए हों उसके हाथ

नृत्य भी देह में रहकर
देह से परे हो जाने की साधना है
नाचते हुए जीवन के सारे रस-राग

अपने जीवन में ही अपने को अनुपस्थित कर
मंच पर पात्र का जीवन जीने की कला है नाटक
यदि यह सधा नहीं तो नीरस हो जाता है रंगकर्म

अपने आकार और आत्मा के लिए
कलाएँ बहुत मेहनत माँगती हैं
जैसे अपनी सुगंध को आकार देने में
अपना फूलपन बचाते हुए
फूल को जूझना होता है दिनरात

कलाएँ अजीवित का अलंकरण नहीं हैं

रचनाकार की कल्पनाशीलता का पसीना
रचना के आलोक में ही
अपने नमक और नमी के साथ
दिखता है!

-प्रेमशंकर शुक्ल

सपने देखना इंसान की फितरत है लेकिन अगर सपने किसी कलाकार की आँख में पल रहे हों तो उनकी हसरत जैसे सारी कायनात को अपनी भुजाओं में समेट लेना चाहती है। रंगमंच से लेकर सिनेमा के रुपहले परदे तक अपनी सपनीली दौड़ लगाने वाला एक ऐसा ही किरदार है- रामचन्द्र। एक बेहतर अभिनेता के बतौर अपनी पहचान और शोहरत का शिखर तय करने वाले इस कलाकार को अंततः नाटक में ही ठौर मिली लेकिन इस जुनूनी, जांबाज और जुझारू कलाकार का चयन केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी दिल्ली ने श्रेष्ठ अभिनय के लिए किया तो अपनी तमाम दुश्वारियाँ, संघर्ष और थकान को भुलाकर रामचन्द्र संतोष और खुशी की चमक से भर उठे। बिहार के एक छोटे से गाँव मोतीहारी से चलकर दिल्ली, लखनऊ होते हुए रामचन्द्र की यायावरी और मरहूम रंगकर्मी हबीब तनवीर। उन्होंने ऊँचे पूरे, हट्टे-कट्टे और अपार रंग ऊर्जा से भरे नौजवान को 'नया थियेटर' में शामिल कर लिया। हबीबजी की चलती-फिरती नाट्य कार्यशाला में रामचन्द्र ने हर पल सबक सीखे। खुद की प्रतिभा को सँवारा। नाटक को समग्रता में समझा। कई नाटकों में महत्वपूर्ण किरदार निभाये। हाल ही रामचन्द्र ने निर्देशन के सूत्र भी सम्हाले हैं। शेक्सपीअर का 'हेमलेट' उनकी, इसी काबिलियत का नमूना है। बहरहाल 'रंग संवाद' के लिए रंगकर्मी संजय श्रीवास्तव ने रामचन्द्र से लंबी बातचीत कर उनके सृजनात्मक रुझान और सोच को समेटने की पहल की है। -विनय

नाट्य अभिनेता रामचन्द्र से संजय श्रीवास्तव का संवाद

ईश्वर ने मुझे थिएटर के लिए ही भेजा है

आपके घर वालों, मतलब माता-पिता की क्या प्रतिक्रिया थी नाटक के फैसले पर?

पिताजी पुलिस में थे वो चाहते थे कि प्रशासनिक सेवा या कम से कम पुलिस में जाऊँ। मगर थियेटर का ग्लेमर बार-बार मुझे इसी तरफ खीचता रहा। किसी ने नाट्य विद्यालय एन.एस.डी. के बारे में बताया। वहां का फार्म भरने बैठा तो पता चला कि ग्रेज्युयेशन जरूरी है। इसी बीच पिता रिटायर हो गये और कुछ दिन में घर में फाके के नौबत आ गई। मैने कई जगह नौकरी के लिये ट्राय किया, फौज, पुलिस, पर बहुत सफलता नहीं मिली। इसी बीच एन.एस.डी ट्राय किया मगर वहां हुआ नहीं क्यों कि कुछ जानता ही नहीं था नाटक या थियेटर के बारे में। बस इतना पता था कि नाटक एक रास्ता है फिल्मों में जाने का। इधर घर की हालत खराब होती जा रही थी, घर भी गिरने की कगार पर था, नौकरी मिल नहीं रही थी, क्या करें कुछ समझ नहीं आता था!

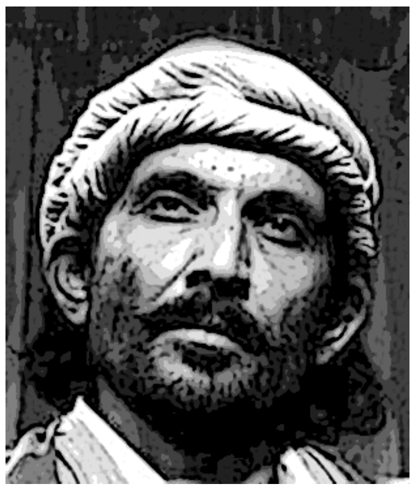

आप इस हालात के बाद भी नाटक की तरफ कैसे चले गये?

मैने पिता जी को यह समझाया कि आपने सारी उम्र नौकरी की और आज फाके के हालात हैं तो मैं नौकरी नहीं करूंगा। मैने निर्णय लिया कि नाटक के जरिये फिल्मों में जाऊंगा और पैसा कमाऊंगा। बस उसके बाद मैने नौकरी का ख्याल छोड़ा और 1988-89 में बी.एन.ए. भारतेन्दु नाट्य अकादमी लखनऊ आवेदन दिया। वहां से बुलावा आया। मैं लखनऊ गया, वहां आडीशन हुआ एन.एस.डी. के बारे में पूछा, मुझे कछ मालूम ही नहीं था। मनोहर सिंह, रामगोपाल बजाज, सेन गुप्ता जी, जैसे लोग आडीशन ले रहे थे चूंकि मेरा एन.एस.डी. में नहीं हुआ था, तो यहां के फार्म में सब गलत, झूठ लिखकर भेज दिया था और पैनल के सामने मैने ये स्वीकार किया कि मैं नाटक के बारे में कुछ नहीं जानता, मगर नाटक करना चाहता हूँ। पैनल ने निर्णय दिया कि ठीक है आपका चयन किया जायेगा मगर स्कालर शिप नहीं मिलेगी छः महीने बाद उस पर विचार करेंगे, मैं तैयार हो गया।

फिर लखनऊ में आपने कैसे अपना काम चलाया या जीवन यापन किया?

मुझे घर से कोई मदद मिलने की उम्मीद थी ही नहीं। मैं वहां के हालात जानता था मगर मैंने फैसला कर लिया था कि वापस नहीं जाऊंगा। तो मैने रिक्शा चलाया टयूशन पढ़ाई, फिर मेरे चचेरे भाई जो ओ.एन.जी.सी. में नौकरी करते थे उन्हें पता चला उन्होंने भी मदद की, दोस्तों ने भी साथ दिया। आज उन सभी का शुक्र गुजार हूँ जिन्होंने मेरा साथ दिया।

कुछ महीने बाद स्कालरशिप शुरू हो गई ३५०रूपये महीना और संघर्ष का एक दौर पूरा हो गया मगर अभी खत्म नहीं हुआ था। मेरी हिन्दी ठीक नहीं थी, दिल्ली को दिली और लखनऊ को नखलऊ बोलता था। मुझ पर मेरी स्थानीय भाषा का पूरा प्रभाव था, स.श. और भी बहुत सारे शब्द। मैं अपने आप को सुधारने में जुट गया। यहां भी मेरे दोस्तों ने मेरी बहुत मदद की मेरी हिन्दी सुधारने में। अकादमी में बहुत सीखा। अभिनय के सिद्धांत सीखे, नाट्यशास्त्र पड़ा कई किताबे पढ़ी, तब ये समझ आना शुरू हुआ कि हम आज तक जो करते आये वो अभिनय और नाट्य नहीं है। तुगलक,

अंधायुग, हेमलेट, अथेलो की स्पीच, अलग अलग ढंग से बोलता रहता था। फिर अकादमी में सेकेण्ड ईयर में गेलेलियो की स्पीच के समय समझ आया। फ्रिस्ट बेनेविट्स का कथन दिमाग में बैठ गया कि हर लाईन नये ख्याल के साथ विचार व्यक्त करती है, विचार में आती है उसे साथ लाओ। यहां पर नवाजुद्दीन सिद्धीकी भी थे हमसे एक साल पीछे।

आप हबीब साहब के पास कैसे पहुँचे?

भानु भारती जी के साथ 'गोदान' किया। साकेत का छोटा सा रोल मिला। अखबार में फोटो छपा। फिर रोल मिलने लगे। राज बिसारिया जी ने बहुत मदद की। फिर जुलियस सीजर किया। मैं एंटनी करना चाहता था, मगर भविष्यवक्ता का रोल मिला। नाटक तो कर रहा था मगर अभी भी कुछ संतोष नहीं था।

उसी समय मेरे एक दोस्त शफीक ने बताया कि विजय शुक्ला जी ने दिल्ली बुलाया है। अब मैं लखनऊ से दिल्ली पहुंच गया, यहीं मैं पहली बार हबीब साहब से मिला। बड़ी ही अलग शख्सियत। वो नया नाटक तैयार करने वाले थे। मिलने पर बोले कि कुछ कर के, बोल के दिखाओ मुझे। अश्वत्थामा की स्पीच याद थी, वही बोल दी। उन्होंने सुना, पाईप से धुँआ खीचा और बोले आग है, पर सीख कर आये हो। जितना भी सीख कर आये हो उसे साफ करना पड़ेगा तब मेरे एक्टर बनोगे। इस तरह मैं नया थियेटर में आ गया। 20 रू. प्रतिदिन और रहने को फ्लेट दिल्ली में मेरे लिये बहुत था। मगर मैं अभी भी फिल्मों में ही जाना चाहता था। मगर शायद मेरी किस्मत को मेरा फिल्मों में जाना कभी मंजूर नही था।

मतलब!

हबीब साब ने नया प्ले शुरू किया 'देख रहे हैं नैन' एक जर्मन कहानी थी, जिसे जर्मन ऐम्बेसी ने स्पान्सर किया था। मैं पहले शो में शामिल हो गया और तभी फिल्म बैंडिट क्वीन के लिये कास्ट कर लिया गया। डाकू का रोल था। इधर हबीब साहब के प्ले को इग्लेण्ड में शो मिल गया था। एक तरफ फिल्म भी जो मेरा सपना था, दूसरी तरफ नाटक और पहला विदेश दौरा। मैं धर्म संकट में फँसा रहा मगर बाद में मैने फिल्म छोड़ना ठीक समझा और नाटक के लिये इंग्लेण्ड गया। तय हो गया था कि मेरी प्राथमिकता थियेटर है। मैं इग्लैण्ड पहुँचा। वहां का थियेटर देखा-सीखा। वहां अयूब खान मिले उन्होंने बताया कि यहां फिल्म और थियेटर के कलाकार बराबर है, कलाकार मतलब कलाकार।

हबीब साब के थियेटर ने मेरे सारे सपने बदल दिये। मुझे उनके साथ काम करते ३ साल हो गये थे। फिर उनके प्ले 'मिड समर नाईटड्रीम' में ओबरान का रोल मिला। पूना में शो था। मैं बैक स्टेज पर था हबीब सा. ने बुलाया और बोले बैक स्टेज के बजाय एक्टिंग पर ध्यान दो। दो दिन बाद पृथ्वी में शो करना है। पृथ्वी में शो हुआ। हबीब सा. ने बुलाया और 50 रू ईनाम दिया। ये उनकी तरफ से पहला ईनाम था जिसने मेरा इरादा अटल कर दिया। मुझे फिर 20 रू के 50 रू दिन मिलने लगा फिर 100 रू कर दिया गया।

'जिन लाहौर नहीं' के बाद मैं 'ए' प्लस ग्रेड में गया। मगर मेरी हार्दिक अच्छा फिल्मों में करने की ही थी, थियेटर की नहीं। मगर करता रहा शायद मुफलिसी की वजह से या किस्मत से क्यों कि जिस ख्याल के साथ थियेटर शुरू किया वो पूरा नहीं हुआ। इसलिये सोचा कि हबीब सा के यहां से निकलने के बाद में थियेटर छोड़ दूंगा, पहले भी कई बार सोचा कि छोड़ दूँ मगर हबीब सा हरबार वापस ले आये।

एक वाकया और बताता हूँ। साउथ के एक प्रोड्यूसर मुझे मिले। पूना में 'मुद्रा राक्षस' का एक शो था। उसके बाद लगातार पांच शो थे। वो प्रोड्यूसर चाहते थे कि मैं तुरंत हाँ कहकर उनके साथ चलूँ। मुह मांगा पैसा, रहने को घर सब कुछ देने को तैयार थे। मांजी से सुना तो टेंशन में आ गई, हबीब सा. के पास गई बोली वो राम जा रहा है। उसे रोको तभी मैं वहां पहुँचा हबीब साब को सब बताया तो वो बोले कि प्ले माउंट होता है एक्टर से। तुम नहीं तो कौन करेगा ये बता दो और चले जाओ लगातार पाँच शो हैं। मैं जवाब नहीं दे पाया और मौका गया हाथ से ऐसा कई बार हुआ। चन्द्रप्रकाश द्विवेदी जी ने महाभारत में शकुनी के लिये कास्ट किया मगर बाद में उन्होंने वहां से छुड़ा

मै पहली बार हबीब साहब से मिला। बड़ी ही अलग शख्सियत। वो नया नाटक तैयार करने वाले थे। मिलने पर बोले कि कुछ करके, बोल के दिखाओ। अश्वथामा की स्पीच याद थी वही बोल दी। उन्होंने सुना, पाईप से धुआ खीचा और बोले आग है, पर सीख कर आये हो। जितना भी सीख कर आये हो उसे साफ करना पड़ेगा तब मेरे एक्टर बनोगे। इस तरह मैं नया थियेटर में आ गया बीस रुपये प्रतिदिन और रहने को फ्लेट दिल्ली में मेरे लिये बहुत था। मगर मैं अभी भी फिल्मों में ही जाना चाहता था। मगर शायद मेरी किस्मत को मेरा फिल्मों में जाना कभी मंजूर नही था।

दिया और फिर वो शुरू ही नहीं हुआ। एक जगह और बात की तो वहां उन्होंने कहा कि पहले हबीब सा से बात करवा दो। भिखारी ठाकुर की भोजपुरी फिल्म 'नाचे नथनिया' किया, मगर वहां पैसे की समस्या थी। मैंने कहा- फ्री नहीं करूंगा। मुझे शायद किस्मत ने थियेटर के लिये ही बनाया है।

आपको नया थियेटर की कमान कैसे मिली?

मैंने तय कर लिया कि थियेटर छोड़कर मुम्बई चला जाऊंगा। उन दिनों हबीब सा बीमार थे तो सब लोग उनसे घर मिलने गये। नया थियेटर की बात चली। सब समझते थे कि हबीब सा. की बेटी नगीन जी उनकी उत्तराधिकारी है। मगर उस दिन उन्होंने कहा कि नया थियेटर की जिम्मेदारी राम सम्भालेगा। जैसे कभी बलराज जी के बाद उन्हें ग्रुप की जिम्मेदारी मिली थी वैसे ही उन्होंने मुझे सौप दी। मैं कुछ नहीं कह पाया और इस तरह से मुझे नया थियेटर की बागडोर मिली। कुछ दिन बाद ही हबीब सा. नहीं रहे और फिर मैंने कहीं भी जाने का इरादा छोड़ दिया। ये है थियेटर में रहने की मेरी कहानी। वैसे मैं डायरेक्शन से ज्यादा एक्टिंग में सहज महसूस करता हूँ।

हबीब सा. के साथ कौन-कौन से नाटकों में अभिनय किया?

मुद्रा राक्षस, जिन लाहौर नई देख्या, वेणी संहार, जहरीली हवा, चरणदास चोर, आगरा बाजार, राजपत लाला शोहरत राय और भी कुछ। और निर्देशन या हबीब सा. के अलावा किसी अन्य निर्देशन के साथ। कोणार्क, तामे-एक इतिहास, खामोश जूलुस, पं. राजधर की दशा, हेमलेट, उत्सर्ग का निर्देशन तथा रंजीत कपूर के साथ १० जनपथ सीरियल किया।

थियेटर करने वालों के लिये कोई संदेश।

हम नाटक की एक पूरी ट्रेनिंग से गुजरे। वर्तमान में उस ट्रेनिंग का अभाव साफ नजर आता है। हर कोई दो या तीन नाटकों के बाद या तो मुंबई की राह पकड़ लेता है या निर्देशक बन जाता है। यहां तक कि आज कलाकार पूरी स्क्रिप्ट तक नहीं पड़ते सिर्फ उसी पेज की कॉपी अपने पास रखते हैं जिसमें उनके संवाद हैं। आजकर तो मोबाईल में फोटो खीच लेते है पेज भी नहीं रखते। नतीजा ये होता है कि उन्हें अपनी इंट्री तक याद नहीं रहती। निर्देशक भी इस बात पर ध्यान नहीं देते। हर बात की जल्दी है पता नहीं क्यों और किस बात की जल्दी।

मगर थियेटर ने मुझे शायद वो दिया जो सबको नहीं मिलता। पैसा बहुत कुछ दे सकता है पर सबकुछ नहीं। मुझे ईश्वर ने शायद थियेटर करने के लिये ही भेजा है। इसलिये मैं अब बस यही कर रहा हूँ।

भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी से संगीत नाटक अकादमी राष्ट्रीय पुरस्कार ग्रहण करते हुये रामचन्द्र।

* सृजन के आसपास *

फागुनी सुर ताल पर बौराई शाम

वनमाली सृजन पीठ का वासंती पैगाम

मांदल और ढोलक की थाप... बाँसुरी की मीठी तान... और इस मादक संगीत में घुले वासंती अहसासों के सौंधे गीतों की लड़ियों पर थिरकती अलमस्ती का आलम वनमाली सृजन पीठ ने उल्लास और आनंद का ऐसा ही फागुनी पैगाम दिया- ''देख बहारें होरी की''। रवींद्र भवन भोपाल और गौरीकुंज सभागार खंडवा के मंच पर क्रमशः नव संवत्सर के मंगलाचरण में साकार हुआ यह नज़ारा नृत्य और संगीत की अनूठी आपसदारी के बीच परंपरा के प्रेम पगे रंगों में गहरे तक डूबने-उतराने का दिलकश मंजर भी था।

करीब चालीस कलाकारों ने मिलकर कृष्ण-राधा और ग्वाल गोपियों की ऐसी सुन्दर छवियाँ उकेरीं कि उनके जादुई सम्मोहन का सुरूर देर तक खंडवा के दर्शकों पर छाया रहा। कथाकार-कवि संतोष चौबे की मूल परिकल्पना पर आधारित इस प्रस्तुति की नृत्य संरचना वरिष्ठ नृत्यांगना लता मुंशी ने की जबकि इस रूपक को कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने सटीक सन्दर्भों के साथ सूत्रबद्ध पेश किया। लगभग सवा घंटे तक चले इस कलात्मक ताने-बाने का लुत्फ़ लेने बड़ी तादाद में शहर के कला प्रेमियों ने रुख किया।

आईसेक्ट स्टूडियो की साझेदारी में हुआ यह जश्ने रंग दरअसल होली के बहाने उस सुरमयी विरासत को याद करने का मौका भी था जिसकी चमक नए ज़माने के गुबार में कुछ धूसर भी हुई है लेकिन यादों को सहलाने पर वे रंग फिर अमन,एकता और भाई चारे की सौगात लिए जीवन में लौट आते हैं। बृज और मैनपुरी अंचलों में सदियों से होली के अवसर पर गाये जाने वाले असंख्य लोक गीतों के संग्रह से ग्यारह रचनाओं को चुनकर लता मुंशी ने नृत्य के ज़रिये उन्हें देह मुद्राओं तथा अभिनय की शैली में ढालकर रोचक स्वरूप दिया है। होलियों को सुनते हुए देखने का निश्चय ही नया प्रयोग था। इन होलियों में प्यार और मनुहार की अल्हड़ मस्ती है तो मासूम ज़िदों के साथ विरह की करुण पुकार भी है। प्रकृति और संस्कृति के साथ शाश्वत रिश्ते का लालित्य भी बिखरा है जिसके बिना जीवन का रस अधूरा है। लोक संगीत के मटियारे स्वाद में रची-बसी धुनों में विभिन्न रागों और ध्रुपद-धमार जैसी संगीत शैलियों का भी अलहदा आनंद था। संगीतकार संतोष कौशिक और राजू राव ने बड़े ही जतन से इन गीतों को उनकी पारंपरिक खुशबू के साथ संवारा है। इंद्रधनुषी छटाओं से सजी इस पेशकश को कमल जैन की प्रकाश परिकल्पना ने और भी सजीव बना दिया।

ब्रज की होलियां नटवर नागर कृष्ण और रसिकप्रिया राधा के बीच अनंत प्यार और यमुना के तट पर ग्वाल-गोपियों की प्रेम पूर्ण तकरार का मनोहारी चित्रण है। 'देख बहारें होरी की' के राग-रंग का सिलसिला भी कुछ ऐसा ही परवान चढ़ा। शुरुआत हुई- ''मोहन पे रंग डारो- ओ होरी आयी'' से फिर गोपियों ने कहा- ''यशोदा नन्द को हमें तो जोगनिया बनाये गयो री''...इस बीच जब यमुना तट पर श्याम ने होली रचाई तो उनकी बरजोरी पर सखियों की शिकायत की- ''वृन्दावन नटवर करत रार, दधि बेचैन मैं ना जाउंगी'' ...लेकिन कान्हा के बिना तो उत्सव अधूरा है है लिहाज़ा गोपियाँ फिर एक-दूसरे से गुहार करती हैं- ''सजन ढिंग चलो गुइयाँ, आज खेलें होरी'' उधर विरह की मारी एक गोपी ऐसी भी है जो परदेस गए अपने पिया को फागुन में कुछ ऐसे याद करती है ''मत जा स्वामी विदेश,ओ होरी के दिनन में'' ...धूप-छाहीं जीवन के हर लम्हे को गाती-गुनगुनाती होली की बहारों का यह जश्न सौहार्द और समरसता के सनातन सन्देश को मुखरित करता प्रेम की मीठी गाँठ बांधता सबकी यादों में समा गया। परम्परा और आधुनिकता के बीच इसे आदिम संवाद के रूप में देखा जाना चाहिए।

यमन नृत्य और संगीत अकादेमी ने कई दिनों के अभ्यास के दौरान इस प्रस्तुति को तैयार किया। सामूहिक ऊर्जा से साकार हुए इस रूपक में आरोही मुंशी, रिया झा, रूचि सक्सेना, नीलम त्रिपाठी, यामिनी गेडाम, जीवा मेहता, प्राची चौहान, रूमा भट्टाचार्य, शिवराम राठौर, सिद्धार्थ बारीक, हरीश शर्मा आदि ने बेहतर तालमेल बनाया। श्याम मुंशी, आशीष श्रीवास्तव, प्रशांत सोनी, आशीष पोतदार, सौरभ अग्रवाल, रोहित श्रीवास्तव ने तकनीकी सूत्र थामे। खंडवा में हुई प्रस्तुति का संयोजन शरद जैन और लुकमान मसूद का रहा।

मन के रंगों का उत्सव

शैल-शिखरों और ताल-तलैयों की नगरी भोपाल की वादियों में बसंत की आहट अब लोकरंगों से सरावोर उत्सव का आगाज़ हुआ करती है। इस दफा भी संस्कृति का ऐसा ही इंद्रधनुष भोपाल के फलक पर समता-ममता और सौहार्द्र का पैगाम बना। नृत्य-संगीत, शिल्प-चित्रकारी और प्रदर्शनकारी कलाओं के आसपास जनसैलाव उमड़ता रहा।

मध्यप्रदेश की नवागत राज्यपाल आनंदी बेन पटेल ने 26 जनवरी की शाम भेल दशहरा मैदान में 33वें लोकरंग का शुभारम्भ किया। मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग का यह प्रतिष्ठा आयोजन विगत 32 सालों से आयोजित किया जा रहा है। राज्यपाल ने परम्परागत रूप से समारोह का उद्‌घाटन करते हुए परिसर में लगायी गयीं प्रदर्शनियों का अवलोकन किया। ये प्रदर्शनियां देवी के एक सौ आठ स्वरूपों पर एकाग्र देवी, कलाओं में नाग पर केन्द्रित मणिधर, सुषिर वाद्यों पर एकाग्र गंधर्व आदि प्रदर्शनियों का अवलोकन किया और प्रयोजन की सराहना की। मुख्य आयोजन लोकरंग के मंच पर था जहाँ पर उन्होंने लाल परेड झाँकी, सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ, लोकनृत्य, परेड, श्रेष्ठ शासकीय कर्मियों के पुरस्कार

जिफलिफ में रौशन हुए
रंग हबीब

अपने फन-ओ-शख्सियत को मुख्तालिक रंगों से रौशन करने वाले हमारे वक्ती दौर के मकबूल रंगकर्मी हबीब तनवीर को उनकी सरज़मीं रायपुर में याद करना एक तरह से एक उस विरासत के करीब जाने की कवायद भी था जहां आधुनिक रंगमंच चली आ रही परम्परा से गलबाहें करता निहायत नयी जुबां और शैली में नमूदार है।

यही हबीब तनवीर के हुनर के हस्ताक्षर हैं जहां नये दौर की नाटकों की दुनिया अपनी मटियारी तहजीब और बोली-बानी में रचे बसे जीवन को साथ लेकर एक नये सांस्कृतिक हस्तक्षेप की संभावना में बदल रही थी। फिल्म, कला और साहित्य को साथ लेकर संवाद का अंतर्राष्ट्रीय मंच तैयार करने की रचनात्मक पहल जिफलिफ का एक महत्वपूर्ण सत्र इस तरह हबीब साहब की यादों-बातों से गुलज़ार होता रहा। इस उत्सव के एक अहम प्रायोजक के बतौर आईसेक्ट की भागीदारी से तैयार स्मरण:हबीब तनवीर का यह सत्र निश्चय ही एक मूर्धन्य कला व्यक्तित्व के पोशीदा पहलुओं को जानने-समझने का रोचक सिलसिला बना। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली के पूर्व निदेशक और रंगकर्मी देवेन्द्र राज् अंकुर, कथाकार,संस्कृतिकर्मी और शिक्षाविद संतोष चौबे, नाटक और फिल्म के कला आकल्पक जयंत देशमुख, रंगमंच और सिनेमा के स्थापित पटकथाकार अशोक मिश्र, हबीब जी की बेटी गायिका-रंगकर्मी नगीन तनवीर और संवाद के सूत्रधार कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने मिलकर हबीबजी की रंग दृष्टि, उनके व्यावहारिक रंग-ढंग और गहरे समपर्पण को याद किया। संवाद के इस रोचक प्रसंग में निर्धारित वक्ताओं के अलावा रायपुर और भोपाल के नाट्यकर्मियों और लेखकों ने भी वैचारिक हस्तक्षेप किया।

समग्रत: इस बात को रेखांकित किया गया कि तनवीर ने आज़ाद भारत की सांस्कृतिक तस्वीर को अपनी तरह से पेंट किया. वे बहुआयामी थे. छतीसगढ की लोक और जनजातीय कला और कलाकारों को जोड़कर वे विश्व रंगमंच पर अपनी अभिव्यक्ति का नया मुहावरा लेकर पेश आये, सम्मानित हुए और आखरी सांस तक समर्पित रहे। नगीन तनवीर ने अपने पिता से मिले संस्कार और सबक को बेशकीमती बताते हुए कहा कि उनके काम पर एक बडे विमर्श की दरकार है। नगीन ने हबीबजी के लिखे और स्वरबद्ध नाट्य गीत और संगीत की प्रस्तुति से परिवेश को राग-रंग से सराबोर कर दिया। चर्चा में कथाकार सतीश जायसवाल और सुभाष मिश्र ने भी हिस्सा लिया।

प्रदान किए। इसके बाद उन्होंने मध्यप्रदेश शासन के सम्मानों महात्मा गांधी और कालिदास रूपंकर से संस्थाओं और कलाकारों को विभूषित किया। पहले 2013 से 2016 तक चार वर्षो के महात्मा गांधी सम्मान क्रमश: चेन्नई के कस्तूरबा गांधी कन्या गुरुकुलम, रायपुर के वनवासी विकास संस्थान, दिल्ली के एसोसिएशन ऑफ़ वालेण्ट्री एजेंसीज फॉर रूरल डेवलपमेंट तथा गोहाटी के शांति साधना आश्रम को प्रदान किए गयेद्य इन सम्मानों में दस-दस लाख रुपये की राशि सम्मान पट्टिका, व श्रीफल प्रदान किए गये। इसी प्रकार 2015 का कालिदास सम्मान विख्यात शिल्पकार भोपाल के श्री रोबिन डेविड तथा 2016 का सम्मान श्री हरचन्दन भट्टी को प्रदान किया गया। इस सम्मान में दो-दो लाख रुपये की राशि, सम्मान पट्टिका, शॉल व श्रीफल प्रदान किया गया।

सम्मान समारोह के पश्चात भीली जनजाति की अनूठी जल कथा पिथौरा का मंचन किया गया। इस प्रदर्शन में लगभग दो सौ कलाकारों ने हिस्सा लिया। पिथौरा के सूत्रधार विख्यात फिल्म कलाकार गोविन्द नामदेव थे जो लगभग दस दृष्यों में आकर पूरी कथा को तारतम्यता प्रदान करते दीखे। यह कथा जल देवता के आव्हान के भावनात्मक अभिप्रायों से जुड़ी है जिसमें भील जनजाति का एक बहादुर युवक अनेक बाधाओं को पार करते हुए हिम देव से प्रार्थना करता है कि मेघ को साथ भेज दें ताकि मनुष्यों का जीवन बाधित न हो, खेती किसानी में बाधा न आये, सबका जीवन खुशहाल बने। मूल रूप से इस कथानक को मंच पर लाते हुए चार लेखकों, रंगकर्मियों ने रचा था जिनमें श्री गोविन्द नामदेव, लोकेन्द्र त्रिवेदी, भरत व्यास, सुश्री इन्दिरा दांगी शामिल हैं। इसमें मुम्बई, दिल्ली और भोपाल के रंगकर्मियों ने सहभागिता की थी जिनकी भागीदारी से प्रस्तुति प्रभावपरक बन पडी थी। इसे देखने बडी संख्या में दर्शक उपस्थित थे जिन्होंने प्रस्तुति को बेहद सराहा। विनय उपाध्याय, अरविंद सोनी और विजय मनवानी लोकरंग की सभाओं के सूत्रधार थे।

समारोह में 30 जनवरी तक बीएचईएल दशहरा मैदान में प्रतिदिन दोपहर 2 बजे से शिल्प मेला और बाह्य परिसर में विभिन्न गतिविधियाँ और प्रदर्शनियाँ जन सामान्य के लिए खुली रही। मुख्य मंच पर देश-विदेश की नृत्य संगीत की प्रस्तुतियों ने राजधानी के रसिकों का मन मोह लिया। सदियों पुरानी परंपरा और विरासत के विभिन्न पहलुओं से प्रत्यक्ष होने और उनसे जुड़े देशज कलाकारों से संवाद का यह खुला मंच निश्चय ही हमारे आधुनिक समय की बड़ी उपलब्धि है।

शिक्षक ही हो शिक्षा संचालन का सूत्रधार

खंडवा में वनमाली व्याख्यानमाला

शिक्षा में भारतीय तत्व विषय पर मुकुल कानिटकर का प्रभावी उद्‌बोधन

शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख शिक्षक होना चाहिए। एक शिक्षक डायरेक्टर, कुलपति, ज्वाइंट डायरेक्टर तक रहता है लेकिन शिक्षा नीति बनाने में उसका कोई हस्तक्षेप नहीं रहता। इसलिए एक शिक्षक जब शिक्षा नीति बनाएगा और वह उसका प्रमुख होगा तो समाज में शिक्षा के परिवर्तन आपको देखने को मिलेंगे। इसी प्रकार राजनीति में बदलाव के लिए समाज में बदलाव की आवश्यकता है।

यह बात खंडवा के गौरीकुंज सभागार में आयोजित वनमाली व्याख्यानमाला की तीसरी कड़ी के तहत अखिल भारतीय शिक्षण मंडल के संगठन मंत्री मुकुल कानिटकर ने कही। उन्होंने कहा मैंने नई शिक्षा नीति के लिए दो सुझाव दिए हैं, जिसमें शिक्षा का प्राधिकरण होनाचाहिए। जो एक स्वतः संस्था के रूप में कार्य करें। जिसमें हर वर्ग के लोगों को शामिल किया जाए। मैं समझता हूं इससे शिक्षा के स्तर में बदला आएगा। अगर यह अभी संभव नहीं हो तो दूसरा सुझाव भी दिया है कि शिक्षक को शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख बना दिया जाए।

अपने धाराप्रवाह प्रभावी उद्‌बोधन में भारतीय जीवन तत्वों से शिक्षा की संबद्धता का विश्लेषण करते हुए मुकुलजी ने कहा कि जब एक शिक्षक शिक्षा नीति तय करेगा को समाज में नैतिक मूल्य आएगा। जबकि आज मुझे भी शिक्षा मंत्री बना दिया जाए तो मैं भी काम नहीं कर पाऊंगा। क्योंकि जिसका जो काम है वही कर पाएगा। राजनीति के बदलाव के एक सवाल के जवाब में आपने कहा राजनीति तो प्रतिनिधि लोकतंत्र है। समाज जैसा होगा वैसे ही राजनीतिक चुनकर राजनीति में आएंगे। इसलिए राजनीति से समाज नहीं बदलेगा। बल्कि, इसकी स्थिति उल्टी है जैसे एक व्यक्ति के हाथ में चाकु दे तो वह जान ले लेता है जबकि वहीं एक व्यक्ति के हाथ होने पर जान बचाता है। वह डॉक्टर, सर्जन कहलाता है। यह किसके हाथ में यह मायने रखता है। गांधीजी के हाथ में और जिन्ना के हाथ में वह चीज थी। बस उसका उपयोग कैसे हुआ यह उस बात पर निर्भर करता है। इसलिए समाज में बदलाव आएगा तो राजनीति में भी बदलाव आपको देखने को मिलेगा। और मैं यह मानता हूं कि यह बदलाव आपको 10-15 सालों में देखने को मिलेगा।

खंडवा के शैक्षणिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़े गणमान्य जनों की उपस्थिति में श्री कानिटकर ने निमाड़ अंचल की महान सांस्कृतिक विरासत और वनमालीजी का भावभीना स्मरण किया। 'शिक्षा में भारतीय जीवन तत्व' विषय की परतें खोलते हुए उन्होंने बेहद तार्किक ढंग से समकालीन शैक्षिक विसंगतियों को उद्घृत किया। उन्होंने शिक्षा के स्तर में आई गिरावट पर जोर दिया। उनका कहना है कि आज दो साल के बच्चों को प्ले, और नर्सरी जैसे एजुकेशन में हम अंग्रेजी सीखने के लिए भेज रहे हैं। वह बाद में न अपनी मातृभाषा सही बोल पाता और न ही अंग्रेजी।आज हम कहां जा रहे हैं। जबकि मैंने हिन्दी माध्यम से पढ़ाई की है। और मैं उन अंग्रेजी माध्यम के लोगों से ग्रामीटिकली अच्छी अंग्रेजी बोलना जानता हूं।

आरंभ में वनमालीजी के सुपुत्र प्रसिद्ध कथाकार-कवि और आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने व्याख्यानमाला के वैचारिक उद्देश्य पर प्रकाश डाला। उन्होंने व्याख्यान के विषय की बुनियादी पृष्ठभूमि खुलासा करते हुए कहा कि भारत की महान पारंपरिक संपदा विश्व स्तर पर बहुत ही वैज्ञानिक और जीवन उपयोगी साबित हुई है। इस क्षेत्र में अनेक महान सिद्धियां भारत की ज्ञान परंपरा को हमेशा से समृद्ध करती रही हैं। हमें उनका

समकालीन परिवेश में संज्ञान लेते हुए विशेषकर नई पीढ़ी से उन्हें ठीक से अवगत कराने की जरूरत है। कार्यक्रम का संचालन करते हुए वनमाली सृजन पीठ के समन्वयक विनय उपाध्याय ने बताया कि वनमालीजी के जीवन और कर्म से प्रेरित होकर एक ऐसे वैचारिक अनुष्ठान का यह पृकल्प आरंभ हुआ है जिसमें हमारे वक्ती दौर के अनेक नये संदर्भों, चिंताओं और प्रश्नाकुलता को साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण आदि के परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने का सिलसिला शामिल है। इस अवसर पर आईसेक्ट के स्थानीय संयोजक लुकमान मसूद तथा सृजन पीठ के स्थानीय संयोजक शरद जैन ने श्री कानिटकर का श्रॉल-श्रीफल से स्वागत किया। इस मौके पर आईसेक्ट विवि के समकुलपति अमिताभ सक्सेना भी विशेष रूप से उपस्थित थे।

गौरीकुंज परिसर में वनमालीजी के कृती-व्यक्तित्व पर एकाग्र छायाचित्र प्रदर्शनी : बिम्ब प्रतिबिम्ब आगन्तुकों के आकर्षण का केन्द्र बनी। प्रदर्शनी का संयोजन-आकल्पन छायाकार नीरज रिछारिया ने किया।

हर संस्मरण गांव ले जाता है

'मोहि ब्रज बिसरत नाहीं'

लोगों ने यह मान लिया है कि विद्वानों की खान तो सिर्फ उत्तरप्रदेश में है। लेकिन, लेखिका की इस कृति ने याद दिला दिया कि निमाड़ ने भी पं. रामनारायण उपाध्याय जैसा साहित्यकार दिया है। इस कृति 'मोहि ब्रज बिसरत नाहीं' की लेखन शैली में भी रामनारायण जी की लेखनी की छवि दिखती है। पुस्तक में किस्सागोई शैली में संस्मरणों को रखा गया है, जो पाठकों को जोड़े रखेगा। यह बात वरिष्ठ साहित्यकार बटुक चतुर्वेदी ने कही। वे हिंदी भवन भोपाल के महादेवी वर्मा कक्ष में आयोजित समारोह में अपना वक्तव्य दे रहे थे। मप्र राष्ट्र भाषा प्रचार समिति द्वारा सुमन चौरे की लोक संस्मरणों की संग्रह पुस्तक 'मोहि ब्रज बिसरत नाहीं' का लोकार्पण हुआ।

लेखिका सुमन चौरे ने कहा, जिस गांव की नदी में मैंने बचवन में डुबकियां लगाई थीं, सालों बाद उस गांव में जब लौटी तो मानो उस नदी की सिर्फ अस्थियां बची हों। किसी एक गढ्ढे में पानी दिखा लेकिन इसलिए क्योंकि उसमें किसी ने सनई भिगो रखी थी। बेहद दुर्गन्ध के बीच मुझे समझ नहीं आया कि इस जल का आचमन कैसे करूं। बस इसी सवाल ने मुझे अपने बचपन के गांव से जुड़ी यादों को संस्मरणों के माध्यम से लिखने पर बाध्य कर दिया।

आलोचक आनंद सिंह ने अपनी टिप्पणी में कहा, लेखिका की पुस्तक में लगभग हर संस्मरण में वो वर्तमान को भी छूती हैं और अतीत की यादों में पहुंच जाती हैं। लेखिका की भाषा समृद्ध है और लोक जीवन को समझने की मर्म दृष्टि है, लेकिन किताब में अगर संस्मरणों और रेखा चित्र लेखन को अलग अलग कर दिया जाता, तो किताब थोड़ी पतली होती। मेरा मानना है कि यदि यह किताब दो भागों में होगी तो यकीनन यह रचना हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान लेगी। इस अवसर पर विजय बहादुर सिंह के कहा, डॉ. चौरे की किताब को देख कर लगता है कि गांव बहुत खूबसूरत थे। लेकिन, उसी गांव में प्रेमचंद जैसा लेखक भी हुआ, जिसने गांवों के दु:ख दर्द को लिखा है। हम दरअसल दो सभ्यताओं के बीच पले बढे लोग हैं। गांव को लेकर आपकी यादों को मैं प्रणाम करता हूं, लेकिन यह भी सच है कि वह गांव अब बचेगा नहीं। किताब के कई संस्मरण खुशहाली से भरे हैं, लेकिन कुछ में बदलाव का दर्द भी है।

दीनानाथ मंगेशकर पुरस्कार

सुपरस्टार आमिर खान को उनकी सुपरहिट फिल्म 'दंगल' के लिए 75वें दीनानाथ मंगेशकर पुरस्कार से नवाजा गया। आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत ने यह सम्मान भेंट किया।

ये अवॉर्ड संघ प्रमुख के हाथों मिलना भी दिलचस्प रहा क्योंकि 2015 में असहिष्णुता के मुद्दे पर डर का माहौल बताते हुए पत्नी किरण राव के देश छोड़ने वाले बयान पर आमिर खान को भारी विरोध झेलना पड़ा था। लता मंगेशकर के कहने पर आए आमिर खान लंबे समय से अवॉर्ड समारोह का बायकॉट करते रहे हैं। यही वजह है कि उनकी कई ऐसी फिल्में जिनके लिए उनको अवॉर्ड मिलने चाहिए थे, वो उनके हक में नहीं आए। इससे पहले आमिर ऑस्कर सेरेमनी में नजर आए थे जब फिल्म 'लगान' के लिए वो एकेडमी अवॉर्ड सेरेमनी में शामिल हुए थे। लेकिन इस बार आमिर ने लता मंगेशकर के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी।

आमिर ने कहा कि मैं आज जहाँ भी हूँ इसका श्रेय मेरी सभी फिल्मों के लेखकों को जाता है। मैं यहां निर्देशकों और लेखकों के बेहतरीन काम की वजह से हूँ। मैं उन सभी का शुक्रिया अदा करता हूं। समारोह में मौजूद निर्देशक नीतेश तिवारी ने भी दर्शकों से फिल्म को एक बड़ी हिट बनाने के लिए उनका शुक्रिया अदा किया। समारोह में कपिल देव को भी भारतीय क्रिकेट में दिये उनके योगदान के लिए सम्मानित किया गया। वैजयंतीमाला बाली को भारतीय सिनेमा में उनकी उपलब्धियों के लिए 'मास्टर दीनानाथ विशेष पुरस्कार' से नवाजा गया। मास्टर दीनानाथ स्मृति प्रतिष्ठान और हृदयेश आर्ट्स द्वारा आयोजित इस समारोह में प्रतिष्ठित गायिका लता मंगेशकर ने भी शिरकत की थी।

यह अवॉर्ड हर साल मास्टर दीनानाथ मंगेशकर के सम्मान में अलग-अलग क्षेत्रों में उत्कृष्ट काम करने वालों को दिया जाता है।

भोपाल का ऐतिहासिक दस्तावेज़

'सिर्फ़ नक्शे कदम रह गए' का लोकार्पण

श्याम मुंशी की किताब ''सिर्फ़ नक़्शे कदम रह गए'' महज़ एक शहर और वहां के लोगों का दस्तावेज़ ही नहीं बल्कि उनके बीच के रिश्तों, प्रेम और तहज़ीब का जीवंत अनुभव बयां करती है। राज्य संग्रहालय के सभागार में कुछ इसी तरह के उद्‌गार आमंत्रित वक्ताओं ने व्यक्त किए। मौका था संगीत, रंगकर्म, साहित्य तथा कला समीक्षा के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाले श्याम मुंशी की नई पुस्तक ''सिर्फ नक्शे कदम रह गए'' के लोकार्पण का। समारोह की अध्यक्षता आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति और प्रसिद्ध साहित्यकार संतोष चौबे ने की।

वनमाली सृजन पीठ द्वारा आयोजित इस समारोह में पुस्तक पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि श्याम मुंशी विरासत की बात करते हुए भोपाल के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं के प्रति जिज्ञासा जगाते हैं। ऐसी किताबें नई पीढ़ी के लिये ज़रूरी दस्तावेज़ है। श्याम मुंशी ने इस अवसर पर किताब के कुछ हिस्सों का पाठ किया। इस किताब में 1956 से पहले के भोपाल को बताया गया। जिसे आज के समय में जानना ज़रुरी है। भोपाल की संस्कृति, भाषा, पहचान, ज़बान व समाज को इस किताब में देखा जा सकता है। भोपाल शहर कहाँ से कहाँ पहुंचा, भोपाल के इतिहास का भी रेखांकन किताब में किया गया है। किताब में भोपाल नगर के सामाजिक इतिहास की झलक प्रस्तुत की गई है। इस मौके पर कवि राजेश जोशी ने कहा कि इस पुस्तक में उन दिलचस्प लोगों के जीवन और उनकी खुसूसियतों के रोचक किस्से हैं जिनसे भोपाल को वास्तव जाना जाता है। जिनसे भोपाल, भोपाल बनता है। यह कहा जा सकता है कि यह किताब भोपाल के अवाम की तारीख़ की, जन इतिहास की ज़रुरी सामग्री है। कथाकार मंज़ूर एहतेशाम ने कहा कि इस पुस्तक में भोपाल के जन जीवन और लोगों के बीच के किस्सों को इतनी खूबसूरती से प्रस्तुत किया है कि यह पूरे समय बांधे रखती है। इस अवसर पर मनोहर वर्मा, दिनेश राय और इकबाल मसूद ने भी अपने विचार व्यक्त किए। संचालन रामप्रकाश त्रिपाठी ने किया।

मूल्य-चेतना की व्यापक भाषा है कला

शरद व्याख्यानमाला-2017

म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल द्वारा आयोजित शरद व्याख्यानमाला में अपना शोध परक व्याख्यान देते हुए पद्मश्री प्रो. रमेशचन्द्र शाह ने कहा- यदि संस्कृति मूल्य चेतना है तो कला इस मूल्य चेतना की व्यापक और समर्थतम भाषा है। आपने भारतीय कला-दृष्टि को ठीक-ठीक समझने के लिए आनंद कुमार स्वामी, गोविन्दचन्द्र पांडे और जगदीश स्वामीनाथन के साथ-साथ प्रयाग शुक्ल रचित पुस्तकों एवं संस्थापनाओं को पढ़ने का आग्रह भी किया।

प्रो. शाह ने आगे कहा कि सांस्कृतिक आत्म बोध से भी आत्मा का विश्वसनीय परिचय मिलता है, जो कि पूर्ण विकसित संस्कृति के माध्यम से ही निष्पन्न हो सकता है। आपने कहा- भारतीय काव्य-कला में ही नहीं, भारतीय चित्र और मूर्ति कला परंपरा में भी मनुष्य की ऐतिहासिक रूपावली की नहीं, बल्कि उसके सनातन स्वरूप की खोज है। पाश्चात्य दृष्टि से इसकी प्रतिकूल आलोचना हुई है। शाह ने अपने विशद उद्बोधन में कहा कि कला का क्षेत्र जीवन के अन्य क्षेत्रों से अलग नहीं है। वहाँ भी कला-गुणों की परख पूर्ववर्ती पीढ़ियों को समझ-बूझकर की जाती है।

शाह ने बड़ी संख्या में उपस्थित साहित्यकारों के बीच कहा कि- भारतीय कला-दृष्टि के संबंध में भारतीय विद्वानों ने जो दृष्टि प्रस्तुत की है, उसके आधार पर हम इस उत्तर-आधुनिक समय की निकटतम चुनौतियों से उत्तीर्ण होकर अपनी संस्कृति के अधुनातन उत्कर्ष को चरितार्थ कर सकते हैं।

साहित्य अकादमी का सम्मान समारोह

म.प्र. साहित्य अकादमी द्वारा स्थानीय मानस भवन भोपाल के रामकिंकर सभागार में राज्यपाल ओमप्रकाश कोहली के मुख्य आतिथ्य और संस्कृति विभाग के प्रमुख सचिव एवं वरिष्ठ साहित्यकार मनोज श्रीवास्तव के विशिष्ट आतिथ्य में वर्ष 2013 और 2014 के राष्ट्रीय और प्रादेशिक पुरस्कारों का अलंकरण समारोह सम्पन्न हुआ, जिसमें देशभर के 27 साहित्यकारों को कृति आधारित पुरस्कारों से अलंकृत किया गया। समारोह के प्रारंभ में अकादमी के निदेशक डॉ. उमेश कुमार सिंह ने स्वागत वक्तव्य दिया।

राज्यपाल श्री कोहली ने अलंकृत साहित्यकारों को बधाई एवं शुभकामनाएँ देते हुए समाजोपयोगी और भी बेहतर साहित्य रचने का आग्रह किया। आपने साहित्य अकादमी के नवाचारी कार्यक्रमों की सराहना करते हुए आशा व्यक्त की कि नये कार्यक्रम भी अच्छे ढंग से आयोजित होंगे। विशिष्ट अतिथि मनोज श्रीवास्तव ने साहित्य परिषद के भावी कार्यक्रमों के बारे में विस्तार से बताया। आपने कहा कि प्रदेश में जो साहित्य सेवी संस्थाएँ संचालित हैं, उनकी गतिविधियों को सुनियोजित और समन्वित रूप देने के लिए एक परिसंघ जैसा संगठन बनाने के

कला समीक्षक प्रयाग और कथाकार चौबे सम्मानित

हिन्दी भवन, भोपाल में म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के वार्षिक वैचारिक अनुष्ठान शरद व्याख्यानमाला के अवसर पर हुए अलंकरण समारोह में श्री नरेश मेहता स्मृति वांग्मय सम्मान - 2016 से कवि एवं कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल को एवं शैलेश मटियानी स्मृति चित्रा कुमार कथा सम्मान-2016 से कथाकार डॉ. संतोष चौबे को अलंकृत किया गया। म.प्र. के राज्यपाल ओमप्रकाश कोहली इस अवसर पर विशेष रूप से शामिल हुये। उन्होंने दोनों अलंकृत विभूतियों के सृजनात्मक अवदान को रेखांकित किया और अपनी ओर से बधाई और शुभकामनाएँ दीं। कार्यक्रम की अध्यक्षता समिति के अध्यक्ष सुखदेवप्रसाद दुबे ने की। इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में पद्मश्री प्रो. रमेशचन्द्र शाह उपस्थित थे। व्याख्यानमाला और अलंकरण समारोह का संचालन डॉ. मैथिली साठे ने और सम्मानित विभूतियों की प्रशस्ति का वाचन 'अक्षरा' पत्रिका की संपादक सुनीता खत्री ने किया। समिति के मंत्री संचालक कैलाशचन्द्र पन्त ने स्वागत वक्तव्य दिया।

शैलेश मटियानी कथा सम्मान से अलंकृत डॉ. संतोष चौबे ने कहा कि मैं समिति के प्रति आभारी हूँ कि उसने मेरे सद्य प्रकाशित उपन्यास 'जल तरंग' को सम्मानित के लायक माना है और उसको इस तरह रेखांकित किया है। नई कहानी और साठोत्तरी कहानी की दुनिया में शैलेश मटियानी एक चमत्कार के रूप में देखे जाते हैं। 'जल तरंग' में बदलाव का प्रयास है। कुछ नया कहा गया है। टैक्नॉलॉजी ने हमारी ग्रहण शक्ति में बड़ा परिवर्तन ला दिया है। मेरे इस उपन्यास का आधार संगीत है। शास्त्रीय संगीत को समझने एवं उसको कथा से जोड़ने की बड़ी जानकारी इससे प्राप्त होगी। आपने कहा-कलाओं के भीतर आवाजाही बढ़ी है। पेंटिंग से संगीत का रिश्ता है। जब हम संगीत के पक्ष में खड़े होंगे, तो मानव के पक्ष में खड़े दिखाई देंगे। आज की आवश्यकता यह है कि हम शोर को अपनी रचनात्मकता पर हावी न होने दें।

पूर्व में समिति के मंत्री संचालक कैलाशचन्द्र पन्त ने स्वागत भाषण देते हुए दोनों पुरस्कारों के निहित उद्देश्य पर प्रकाश डाला।

बारे में विचार हो रहा है। कार्यक्रम का संचालन पत्रकार-कवि दीपक पगारे ने किया, जबकि प्रशस्ति वाचन का दायित्व डॉ. प्रीति प्रवीण खरे और श्री धर्मेन्द्रसिंह सोलंकी ने कुशलतापूर्वक निभाया।

समारोह में जिन साहित्यकारों को अ.भा. पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, वे हैं- (वर्ष 2013) डॉ. सुधाकर अदीब, डॉ. श्रीराम परिहार और श्री अनूप आशीष तथा (वर्ष 2014) डॉ. उदयप्रताप सिंह, डॉ. स्वाति तिवारी, हरि भटनागर, डॉ. आनंदकुमार सिंह और नरेन्द्र दीपक। प्रादेशिक पुरस्कार पाने वाले साहित्यकार हैं- (वर्ष 2013) सुरेश कुमार वर्मा, डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. विनय षड़ंगी राजाराम, अनिरुद्धसिंह सेंगर, डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र', सुधारानी श्रीवास्तव, प्रीति दुबे, डॉ. लोकेन्द्रसिंह गुर्जर 'नागर', डॉ. परशुराम शुक्ल तथा (वर्ष 2014) श्रीमती इंदिरा दांगी, नीता श्रीवास्तव, जहीर कुरैशी, डॉ. महेन्द्र अग्रवाल, विश्व मोहन माथुर, मोहन नागर, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे और हरेराम वाजपेयी।

हिन्दी पत्रकारिता दिवस पर तिवारी और उपाध्याय को राष्ट्रीय पत्रकारिता सम्मान

आज का पत्रकार सिर्फ सनसनी या चौंकाने वाली हेडलाइंस की तलाश में ही रहता है। जबकि पत्रकारिता में सकारात्मकता के लिए भी जगह होनी चाहिए। इस अशय के विचार 30 मई को माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान के सभागार में प्रकट किए गए। मौका था हिन्दी पत्रकारिता दिवस पर आयोजित राष्ट्रीय पत्रकारिता पुरस्कार समारोह का। कार्यक्रम में जनसंपर्क मंत्री डॉ. नरोत्तम मिश्र बतौर मुख्य अतिथि मौजूद थे। अध्यक्षता सुधी साहित्यकार एवं मध्यप्रदेश के प्रधान आयकर आयुक्त डॉ. राकेश कुमार पालीवाल कर रहे थे। कार्यक्रम में यायावर पत्रकार विजय मनोहर तिवारी को 'माधवराव सप्रे पुरस्कार' तथा सुप्रसिद्ध कला समीक्षक विनय उपाध्याय 'महेश सृजन सम्मान' से अलंकृत किया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे साहित्यकार एवं प्रधान आयकर निदेशक राकेश पालीवाल ने कहा कि आज का पत्रकार सनसनी फैलाने वाली खबरों की तरफ भाग रहा है। लेकिन अखबारों में सकारात्मक समाचारों के लिए भी जगह होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि आज भले ही समाज के हर क्षेत्र में गिरावट हो रही हो, लेकिन कुछ क्षेत्र जैसे- चिकित्सा, शिक्षा और पत्रकारिता से समाज आदर्शों की अपेक्षा रखता है।

अपने सम्मान के प्रति उत्तर में विजय मनोहर तिवारी ने अपने संस्मरणों को साझा करते हुए कहा कि किसी नकारात्मक खबर को भी पाठक सकारात्मक पहल का आधार बना सकता है। इसी कड़ी में सांस्कृतिक पत्रकार विनय उपाध्याय का कहना था कि हिन्दी पत्रकारिता का उद्‌भव ही सांस्कृतिक पत्रकारिता से है। उन्होंने मीडिया में आज इन खबरों को उतना स्थान नहीं दिए जाने की प्रवृत्ति पर भी चिंता जताई। इसके पूर्व लब्ध प्रतिष्ठित पत्रकार यशवंत अरगरे पर केन्द्रित पुस्तक का विमोचन किया गया। इस पुस्तक का संपादन वरिष्ठ पत्रकार चंद्रहास शुक्ल ने किया है। आरंभ में सप्रे संग्रहालय के संस्थापक-संयोजक जियदत्त श्रीधर ने संग्रहालय की आगामी गतिविधियों का ब्यौरा दिया। इस अवसर पर राजधानी के संस्कृति-साहित्य और पत्रकारिता जगत से जुड़े कई हस्ताक्षर उपस्थित थे। **-दीपक पगारे**

वनमाली सृजन पीठ भोपाल के अध्ययन केन्द्र में आयोजित पाठ प्रसंग में सुपरिचित कवियित्रियों संध्या कुलकर्णी और प्रतिभा गोटीवाले ने अपनी रचनाओं का पाठ किया। इस अवसर पर सृजन पीठ के अध्यक्ष संतोष चौबे, आलोचक रामप्रकाश त्रिपाठी, कवि राजेश जोशी, राग तेलंग विनय उपाध्याय ने उन्हें स्मृति चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया।

शिल्प और कहन का अनूठापन

'स्टोरी ऑफ एन अनटाइटल्ड कैनवास'

युवा लेखक और रंगकर्मी सुदीप सोहनी द्वारा लिखित-निर्देशित नाटक ''स्टोरी ऑफ एन अनटाइटल्ड कैनवस'' का गांधी भवन, भोपाल में पिछले दिनों मंचन हुआ। संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की अनुदान योजना के तहत मंचित यह नाटक एक आवारा लड़के से चित्रकार बने ऋषभ के जीवन के बीते पंद्रह बरसों की कहानी है। दो घंटे की अवधि का यह नाटक अपने कथ्य, शिल्प और कहन में अनूठेपन के साथ दृश्य व अनुभव में भी समृद्ध करता है। इस प्रस्तुति में मंच व मंच परे बीस से अधिक कलाकारों ने शिरकत की है।

सुदीप का प्रयोगवादी दृष्टिकोण, लेखन शैली और विचारधारा बिल्कुल अलग है। उन्हें हमेशा से विश्व सिनेमा ने रिझाया है। इस नाटक के लिए उनकी पसंदीदा और प्रेरणादायक फ़िल्म ''इन टू द वाइल्ड'' तथा अमृता प्रीतम का उपन्यास 'नागमणि' है। उनका निर्देशन का तरीका कुछ अलग है। जब वो एफ टी आई आई पुणे में थे तब उन्होंने यह नाटक लिखा था और वो भी सिर्फ दो दिन में। इस नाटक के अब तक चार मंचन हो चुके हैं। यह एक प्रयोगवादी नाटक है जिसमें संगीत, संवाद और लाइट का इस्तेमाल बहुत प्रभावी तरीके से किया गया है। समय की गति को बताने के लिए किसी घड़ी का उपयोग नहीं किया बल्कि कलाकारों के बॉडी मूवमेंट से समय के हर पल को बताया गया है, यह अपने आप में एक अनूठी बात है। सुदीप विहान ड्रामा वर्क्स से जुड़े हैं। वे परंपरावादी रंगमंच से कुछ अलग करना चाहते हैं, यह बात इनके इस नाटक ''स्टोरी ऑफ एन अनटाइटल्ड कैनवास'' में पूरी तरह से खरी उतरती है

नाटक का मुख्य पात्र ऋषभ अहंकारी, आत्म मुग्ध और अय्याश क़िस्म का युवा है जो कॉल सेंटर में काम करता है। उसे लगता है दुनिया उसके हिसाब से चलेगी पर जब उसकी मुलाकात वर्षा से होती है तो वो ऋषभ की बात मानने से इंकार कर देती है। उसका अहं इतना आहत होता है कि वो अनजाने में गलत कर जाता है, फिर वो सही और गलत के अंतर्द्वंद्व में फंसकर खुद को समाज और दुनिया से अलग कर लेता है। पर एक बार फिर उसके जीवन में एक चिड़िया तथा एक लड़की काम्या के आने से नए परिवर्तन होते हैं और वो अच्छा चित्रकार बन जाता है। मगर जीवन का नैराश्य फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ता। मगर अब ऋषभ नए सिरे से खुद को खड़ा करता है। अपराध भाव से मुक्ति के लिए प्रकृति के बीच अब उसकी ज़िंदगी पंद्रह वर्ष आगे बढ चुकी है और अब वह बच्चों को चित्रकला सिखाता है।

मुख्य किरदार के रूप में अंकित पारोचे ने बहुत प्रभावशाली अभिनय किया है। उन्होंने इस पात्र को जीवंत करने के लिए कई बार खुद को घर में अकेले कमरे में, अँधेरे में बंद रखा। बहुत मेहनत के बाद इस पात्र को किया नहीं बल्कि जिया है। युवा ऋषभ के रूप में अंकित पारोचे ने उस किरदार के साथ पूरा न्याय किया है, जो बहुत प्रभावित करता है। निवेदिता सोनी ने अपने अभिनय से दर्शकों की सराहना हासिल की। नाटक के विशिष्ट किरदार समय, चिड़िया, भाव, और ऋषभ के दिमागी इमोशन के रूप में शुभम कटियार, आकाश एखारे, अंकित मिश्रा, कृष्णा पटेल, सृष्टि भागवत, मौलश्री सक्सेना ने अभिनय किया। पेंटिंग एग्ज़ीबिशन के एक दृश्य में किरदारों द्वारा साल्वाडोर डाली, रोसेयु, पिकासो, वेन गॉग की विश्व प्रसिद्ध पेंटिंग बन जाना इस नाटक के अलहदा और अनूठे दृश्यों में एक है।

सीमित साधन और कम कलाकार इस नाटक को और भी ज्यादा सादगीपूर्ण और खूबसूरत बनाते हैं। नाटक में लाइट और साउंड का प्रयोग भी बहुत अच्छा बन पड़ा है। इस नाटक में दो गीत हैं ''ज़िन्दगी ज़िन्दगी क्या नाम है तेरा'' तथा 'जिसकी थी आरज़ू'। आशीष प्रसाद ने हेमंत देवलेकर के साथ इस नाटक के गीत व संगीत को रचा है। नाटक में लाइव संगीत का इस्तेमाल किया है तथा ख़ास बात यह कि जैज, रॉक, व सॉफ्टवेयर इफ़ेक्ट आधारित प्रयोगों ने दृश्य को अनुभव के स्तर पर अद्भुत फील दी है। तेजस्विता अनंत, वैशाली पाल, व्याख्या चौहान, सृष्टि भागवत के रूप में महिला संगीतकारों, गायिकाओं व वादिकाओं ने मंच परे से इस नाटक को अलग रंग दिये। संगीत मंडली में नवीन शर्मा, स्नेह, दीपक, राहुल सहित अन्य कलाकार भी थे। इस नाटक का एक और मजबूत पक्ष मंच सज्जा, वेशभूषा और रूप सज्जा का है जिसे श्वेता केतकर ने संभाला है। प्रकाश परिकल्पना में रंगों के इफ़ेक्ट और दृश्य के हिसाब से रंगों का चयन सटीक है। जिसकी परिकल्पना हर्ष पांडे की है।

-अभिलाषा श्रीवास्तव

भिलाई संगोष्ठी

जनवादी लेखक संघ, दुर्ग के तत्वावधान में त्रिलोचन जन्मशताब्दी पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी में युवा आलोचक उमाशंकरसिंह परमार ने 'त्रिलोचन का काव्य सौंदर्य' विषय पर अपने व्याख्यान में कहा कि 'कविता के संदर्भ में सौंदर्य का अर्थ केवल काव्यकला से नहीं होता बल्कि सहज व सजग चेतना से भी होता है। इन अर्थों में तुलसी के बाद सहज चेतना त्रिलोचन के काव्य में ही दिखायी पड़ती है।

आलोचक अजित प्रियदर्शी ने 'प्रगतिशील काव्य-आंदोलन और त्रिलोचन' शीर्षक से व्याख्यान देते हुए कहा कि 'त्रिलोचन की कविता जातीय चेतना से भी दजोड़ती है। वे प्रगतिशील चेतना में निराला से जुड़ते हैं। तारसप्तक के कवियों में मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा जिस वैचारिक धारा की शुरुआत करते हैं त्रिलोचन इसी धारा के कवि हैं। प्रगतिशील काव्य-त्रयी में केदार, नागार्जुन, त्रिलोचन में त्रिलोचन सबसे आगे ठहरते हैं।' युवा आलोचक कालूलाल कुलमी ने 'त्रिलोचन के सॉनेट' विषय पर बोलते हुए कहा कि हिन्दी कविता में पश्चिम का फॉर्मेट सबसे पहले त्रिलोचन ने अपनाया।

संगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए कवि-पत्रकार सुधीर सक्सेना ने कहा कि 'सॉनेट का पर्याय ही त्रिलोचन है। यदि बड़े कवियों की त्रयी बनायी जाए तो वह तुलसी, निराला और त्रिलोचन की बनेगी, क्योंकि तीनों का भौगोलिक जनपद भी एक है। कार्यक्रम में विजय राठौर और सतीश सिंह ने त्रिलोचन पर केंद्रित कविताओं का पाठ किया, कथाकार तेजिंदर ने त्रिलोचन जी से जुड़े संस्मरण सुनाये। संचालन शरद कोकास ने तथा आभार प्रदर्शन मुमताज ने किया। इस अवसर पर कवि भास्कर चौधरी की पुस्तक 'बस्तर में तीन दिन' का विमोचन किया गया और सर्वज्ञ नायर द्वारा बनाये त्रिलोचन जी के तैलचित्र की प्रस्तुति की गयी।

अमृता का अलंकरण

कमला गोइन्का फाउंडेशन द्वारा भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता के सहयोग से आयोजित समारोह में बांग्ला-हिन्दी अनुवादक अमृता बेरा को '्री प्रभात रंजन सरकार स्मृति पुरस्कार' के साथ 31000 रुपये की नकद राशि दी गयी। शर्मिला बोहरा जलान को 'कन्हैयालाल सेठिया प्रवासी राजस्थानी सारस्वत सम्मान' प्रदान किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए पश्चिम बंगाल के राज्यपाल केशरीनाथ त्रिपाठी ने साहित्यकारों को समाज का पथ प्रदर्शक बताया। कमला गोइन्का फाउंडेशन के प्रबंध न्यासी श्यामसुंदर गोइन्का ने महामहिम का स्वागत किया। अमृति बेरा ने इस प्रकार के सम्मानों से लेखन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहरायी।

सहगल को 'नट सम्राट'

कवि-नाटककार प्रताप सहगल को नई दिल्ली में आयोजित एक समारोह में 'नटसम्राट सम्मान' प्रदान किया गया। यह सम्मान उन्हें प्रसिद्ध रंग-निर्देशक भानु भारती के हाथों मिला। प्रताप सहगल ने कहा कि यह सम्मान उनके लिए इसलिए खास है क्योंकि यह रंग-परिवार द्वारा दिया जाने वाला सम्मान है। चयन-समिति में दयाप्रकाश सिन्हा, जयदेव तनेजा, सुरेश भारद्वाज और जे पी सिंह शामिल थे। प्रताप सहगल लगभग आधी शताब्दी से रंग-कर्म और नाटकों की दुनिया से सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं। उनके अनेक नाटकों का मंचन जब-तब देश भर में होता रहता है। वे इन नाटकों के माध्यम से समाज, राष्ट्र, धर्म और इतिहास के रिश्तों की पड़ताल करते रहते हैं। नट-सम्राट के निदेशक श्याम कुमार ने अतिथियों का स्वागत किया।

नवल की पुस्तकों का विमोचन

लेखक-कलाकार नवल जायसवाल की पुस्तकों के विषय परिधि में तो रहते हैं किन्तु नवउन्मेश का सत्संग रखना वे कभी नहीं भूलते। वर्ष 2016 में उन्होंने 'प्रेरणा' नामक विषय को साहित्य सृजन के लिए चुना और 'नवतिका' के नाम से एक कविता संग्रह रचा। इस पुस्तक का विमोचन पूर्व में हो चुका है। नवल जी ने इसी विषय पर अन्य मित्रों से भी आलेख आमंत्रित किए और उन्हें भी पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। इस विषय पर आधारित अन्य दो पुस्तकों का विमोचन विगत दिवस किया गया है। इन दोनों पुस्तकों के नाम 'प्रेरितम' और 'प्रक्षालन' हैं। भोपाल में आयोजित इस समारोह की अध्यक्षता संतोष चौबे ने की, मुख्य अतिथि थे शरतचन्द्र बेहार। चौबे ने अपने मार्गदर्शन में प्रकाशित 'कथा मध्यप्रदेश' के सभी खण्ड नवल जायसवाल को भेंट किए।

फिल्मकार विश्वनाथ को फाल्के पुरस्कार

फिल्म जगत में उत्कृष्ट योगदान के लिए जाने-माने फिल्मकार और निर्माता कासीनाधुनी विश्वनाथ को वर्ष 2016 के दादा साहब फाल्के पुरस्कार के लिए चुना गया है। तेलुगु, तमिल और हिंदी में प्रशंसनीय फिल्में बनाने वाले विश्वनाथ भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च सम्मान पाने वाले 48वें फनकार हैं। पुरस्कार में उन्हें एक स्वर्णकमल, 10 लाख रुपए नकद और एक शॉल प्रदान किया गया। 87 वर्षीय विश्वनाथ को सम्मानित करने की दादा साहब फाल्के सम्मान समिति की सिफारिश को सूचना और प्रसारण मंत्री एम. वेंकैया नायडू ने स्वीकार कर लिया। पांच राष्ट्रीय फिल्म सम्मान जीत चुके विश्वनाथ को उनकी फिल्मों शंकरभरणम, सागर संगमम, स्वाति मुतयम, सप्तपदी, कामचोर, संजोग और जाग उठा इंसान के लिए जाना जाता है। 1965 से अब तक 50 फिल्में बना चुके विश्वनाथ को सामाजिक विषयों के इर्द-गिर्द फिल्में बनाने के लिए जाना जाता है। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार विजेता फिल्म 'स्वाति मुतयम' 59वें अकादमी अवार्ड्स में सर्वश्रेष्ठ विदेशी फिल्म की श्रेणी में भारत की आधिकारिक प्रविष्टि के तौर पर शामिल हुई थी।

रत्न सम्मान एवं संगीत संध्या

सुपरिचित नृत्यांगना शाम्भवी शुक्ला मिश्रा को बुंदेखलण्ड के कवियों, तालशास्त्रियों एवं वाग्गेयकारों के अवदान पर आधारित कथक की शोधधर्मी प्रस्तुतियों हेतु 'कथक रत्न सम्मान' एवं बनारस घराने के प्रसिद्ध युवा गायक बृजेश मिश्र को 'गान रत्न सम्मान' से समादृत किया। यह सम्मान मालवंकर सभागार में नई दिल्ली की संस्था 'विश्व मित्र परिवार' द्वारा उनकी १०१वीं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रदत्त किया गया। इसी सभागार में भारतीय कलाविश्व की 'संगीत-त्रयम्' सांगीतिक संध्या सम्पन्न हुई, कार्यक्रम का आगाज सितारवादक गोपालकृष्ण शाह द्वारा निर्देशित वाद्य वृंद के सुमधुर ''वंदे मातरम्'' वादन से हुआ।

द्वितीय प्रस्तुति में ग़ज़ल मौसिकी के युवा कलाकार बृजेश मिश्रा ने अपनी मधुर आवाज एवं अंदाज से प्रसिद्ध ग़ज़ल 'रंजिश ही सही' से समा बाँध श्रोताओं को रोमांचित किया। त्रयम् के तृतीय चरण में जयपुर

घराने की सुप्रसिद्ध नृत्यांगना सुश्री शाम्भवी शुक्ला मिश्रा ने एकल कथक प्रस्तुति दी। शाम्भवी अपनी शिव स्तुति के लिये प्रसिद्ध हैं जिसमें उनके द्वारा विकसित नृत्य-अंग स्पष्ट दिखते हैं। शाम्भवी के नृत्य में तैयारी के साथ-साथ गहरी भावप्रवणता दिखाई देते हैं। समापन इक्यावन चक्करों को श्री गणेश को अर्पित करके किया। ग़ज़ल एवं कथक दोनों के साथ फर्रूखाबाद घराने के मूर्धन्य कलाकार राहुल विश्वकर्मा ने जहां एक तरफ ग़ज़लों पर नज़ाकत के साथ संगत की वही कथक नृत्य के साथ गरज व बढ़त की लय में सटीक तबला वादन कर श्रोताओं की वाहवाही लूटी। सारंगी पर नासीर खान, जुनैद, गायन ज़की, गिटार लोकेश, पढ़न्त धीरेन्द्र तिवारी एवं कविता शुक्ला जी ने सहयोग दिया।

संघर्ष का पर्याय थे बनाफर चन्द्र

वरिष्ठ साहित्यकार बनाफर चन्द्र के आकस्मिक निधन पर, कमला नेहरू बाल उद्यान भोपाल के प्रांगण में शोक स्वरूप श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। बीता हुआ कल, सवालों के बीच, काला पंछी, धारा, जमीन, बस्ती और अंधेरा (उपन्यास) पापा तुम पागल नहीं हो, मटमैला आकाश, अपना देश (काव्य संग्रह) सहर के लिए, चांद सूरज (गजल संग्रह) जैसी अनेक चर्चित कृतियों के रचयिता रामचन्द्र सिंह लेखकीय नाम बनाफर चन्द्र जिनका जन्म ०२ अगस्त को बाराडीह, रोहदास बिहार में हुआ और ३ नवम्बर 17 को अपने गृह नगर में हृदयाघात से आकस्मिक निधन हो गया। उनके निधन पर एक शोक सभा का आयोजन रखा गया। सभी वक्ताओं ने उन्हें एक जुझारू, संघर्षशील, जमीन से जुड़ा, विभिन्न विधाओं में सृजन करने वाला, सभी से स्नेहऔर मत विभिन्नता होने पर लड़ने वाले परन्तु मन में दुश्मनी न रखने वाला अनूठा व्यक्तित्व बताया, जिनके निधन ने साहित्य जगत को अपूरणीय क्षति हुई है, अब नके लेकन का मूल्यांकन हो एवं उनकी याद को चिरस्थाई बनाने के लिए उनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर केंद्रित कार्यक्रम आयोजित करने का संकल्प लिया गया। इस श्रद्धांजलि सभा में राजेश जोशी, रामप्रकाश त्रिपाठी, बलराम गुमाश्ता, किशन तिवारी, महेश अग्रवाल, इंद्रपाल सिंह तन्हा, सुरेश भाटिया, प्रताप राजन सुभाष दुबे हीरा सिंह, ललित साह, वीरेंद्र जैन, प्रयास जोशी, हीरालाल पारस, अशोक व्यास, मनोज कुलकर्णी, चित्रांश खरे, सुभाष दुबे, राजेन्द्र शर्मा अक्षर आदि उपस्थित थे।

वे सिनेमा का विश्वकोष थे

स्मरण : ताम्रकर

संस्कृति विभाग ने हाल ही इन्दौर के सुप्रतिष्ठित सिने विश्लेषक, सम्पादक और शहर में फिल्म संस्कृति तथा फिल्म सोसायटी आन्दोलन के सूत्रधार स्वर्गीय श्रीराम ताम्रकर की स्मृति पर उनकी पुण्यतिथि के दिन 13 दिसम्बर को एक दो दिवसीय आयोजन स्मरण: श्रीराम ताम्रकर किया।

श्रीराम ताम्रकर को उनके जीवनकाल में सिनेमा का चलता फिरता एनसायक्लोपीडिया कहा जाता था। उनको हिन्दी सिनेमा की हर जानकारी मुखाग्र स्मरण थी। वे व्यक्तित्व, स्वभाव से भले व्यक्ति थे तथा सभी को अपना संचित ज्ञान बाँटते थे। सिनेमा के प्रति प्रत्येक जिज्ञासु के प्रश्नों का समाधान वे पल भर में कर दिया करते थे। वे शहर के एक प्रमुख अखबार में प्रत्येक शनिवार को सिनेमा तथा बुधवार को टेलीविजन पर एकाग्र पेजों का सम्पादन करते रहे थे। यह कार्य उन्होंने बीस वर्ष से अधिक समय तक लगातार किया था। उन्होंने ही इस अखबार की प्रतिष्ठा साल में एक बार सिनेमा केन्द्रित विशेषांकों के प्रकाशनों से बढ़ायी थी जिनके नाम परदे की परियाँ, सरगम का सफल, नायक महानायक, दूरदर्शन सिनेमा, फिल्म और फिल्म, भारत में सिनेमा, विश्व सिनेमा आदि थे। ऐसे रचनात्मक और सौहार्दपूर्ण ताम्रकर का असामयिक निधन तीन वर्ष पूर्व हो गया था तभी से इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही थी कि उनके स्मरण के साथ ही उनके अवदान को भी याद किया जाये। दो दिवसीय आयोजन का शुभारम्भ 13 दिसम्बर को प्रात: किया गया जिसका विषय था, इन्दौर में फिल्म सोसायटी एवं फिल्म संस्कृति। इस विषय पर वरिष्ठ पत्रकार एवं देवपुत्र के सम्पादक कृष्ण कुमार अष्ठाना, सत्यनारायण व्यास, प्रभु जोशी, विट्ठल चतुर्वेदी, ओमप्रकाश

कलम और कूची की जुगलबंदी

आज से करीब चार सौ साल पहले यूरोप में जब मध्यकालीन सामंतवाद का किला ढह रहा था, तब पुनर्जागरण की शुरुआत ही हुई थी। ऐसे वक्त में तब तक महज मनोरंजन मानी जाने वाली कला अंगड़ाई ले रही थी और पुनर्जागरण का अग्रदूत बन रही थी। चित्रकला, मूर्तिकला और संगीत के रूप में फल-फूल रही इस कला के केंद्र में ईश्वर के बजाय अब मानवता स्थापित हो रही थी। लियोनाडो द विंची, माइकल एंजेलो जैसे मशहूर चित्रकार-मूर्तिकार अपनी कला के जरिए दुनिया की जड़ता तोड़ रहे थे। फ्रांस, अमरीका और रूस जैसी महान क्रांतियों का पनपना इस कला के बगैर संभव नहीं था।

हाल में आई किताब 'जिसका मन रंगरेज' कला के इसी मर्म को उजागर करती है। किताब में चित्रकार अर्पण कौर की कला की बड़ी ही बारीकी से पड़ताल की है मूलतः चित्रकार, मगर पेशे से पत्रकार देवप्रकाश चौधरी ने। इस किताब में अर्पण की कूची से बने उनके मन को टटोलते हुए चित्र हैं तो इन चित्रों के मर्म को उजागर करते देव प्रकाश की कलम से निकले शब्द हैं। किताब में कूची और कलम की अद्‌भुत जुगलबंदी है। जैसा कि देव प्रकाश किताब की शुरुआत में ही कहते हैं- 'काला रंग भी सांसें लेता है, बनाता है एक रिश्ता तारीखों से...चुप्पी का दरवाजा टूटता है।' यह किताब चित्रों की दुनिया में झाँकने की सहज कोशिश है। यहाँ जिंदगी खुद एक रंग है। इन रंगों में सृजन भी है, पुकार भी और सूफियाना कलाम भी। यहां आकर चंचल मन भी इन रंगों की भूलभुलैया में ठहर जाता है।

ढोली आदि ने विचार व्यक्त किए। विट्ठल त्रिवेदी उनके पुराने साथी थे जिन्होंने कहा कि उनके पास फिल्म इतिहास की छोटी से छोटी जानकारी मिल जाया करती थीं। वे अपने आपमें एक सुचिन्तित व्यक्तित्व थे। उनके बचपन के मित्र ओमप्रकाश ढोली ने भावुक होकर उनको याद किया और कहा कि वे अन्तर्मुखी स्वभाव के थे लेकिन नेतृत्व क्षमता के धनी थे। सूत्रधार फिल्म सोसायटी के संयोजक सत्यनारायण व्यास ने कहा कि फिल्म सोसायटी की इन्दौर में शुरूआत के भगीरथ ताम्रकर जी थे। साठ के दशक में यह पहल उन्होंने अंकुर फिल्म सोसायटी के नाम से की थी।

कृष्ण कुमार अष्ठाना ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि श्रीराम ताम्रकर से मेरा सान्निध्य स्वदेश के समय से रहा है। वे सिनेमा सहित सभी रचनात्मक आयामों के जानकार, सुव्यवस्थित प्रस्तुतकर्ता एवं प्रकाशन की स्वच्छ शैली में दक्ष थे। प्रतिष्ठित कवि, चित्रकार एवं लेखक प्रभु जोशी ने कहा कि श्रीराम ताम्रकर के पड़ोस में मैं रहता था, पता नहीं कितने बरसों के उनसे सम्बन्ध थे, मेरे लिए वे अविभावक और संरक्षक की तरह थे। लोग उनको सिनेमा का चलता फिरता एनसायक्लोपीडिया कहते थे लेकिन मेरे लिए वे सिनेमा की चलती फिरती उम्मीद थे।

इसी दिन दूसरे सत्र में सिनेमा और समाज विषय पर हुई चर्चा में विख्यात फिल्म समालोचक मनमोहन चड्ढा, वेबदुनिया के सम्पादक जयदीप कर्णिक, सिनेमा इतिहास और अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर सोदाहरण वक्तव्य देने वाले डॉ. अनिल चौबे, वरिष्ठ पत्रकार प्रकाश हिन्दुस्तानी ने हिस्सा लिया। मनमोहन चड्ढा ने कहा कि हमारे यहाँ फिल्म को विषय नहीं समझा जाता और अनुपयोगी मानकर विश्वविद्यालयों में पढ़ाया नहीं गया जबकि देश में हिन्दी सहित क्षेत्रीय भाषाओं में भी उत्कृष्ट फिल्मों का निर्माण हुआ है। जयदीप कर्णिक का कहना था कि दर्शकों को आज भी अच्छी फिल्मों की आवश्यकता है, उनको जिज्ञासा भी रहती है। समाज और सिनेमा एक-दूसरे का प्रतिबिम्ब हैं। डॉ. अनिल चौबे ने अपने वक्तव्य में भारतीय सिनेमा के महान फिल्मकारों का स्मरण करते हुए अपनी बात रखी और कहा कि दरअसल सिनेमा को मजबूत आधार देने का काम सत्यजित रे, व्ही. शान्तराम, बिमल राय, मेहबूब खान, हृषिकेश मुखर्जी जैसे फिल्मकारों ने किया। उन्होंने जो अविस्मरणीय फिल्में बनायीं वे आज भी भारतीयता, जीवन मूल्यों और देशकाल के अनुरूप सामाजिकता का सशक्त और संवेदनशील साक्ष्य हैं। प्रकाश हिन्दुस्तानी ने कहा कि सिनेमा हमारी सुरूचि से दूर रहा है, आकर्षण होने के बाद भी। ताम्रकर जी ने इसके बीच एक सुन्दर सेतु बनाने का काम किया था।

सिनेमा: शिक्षा और समझ विषय पर आयोजित तीसरे सत्र में डॉ. अनुराधा शर्मा, चन्दन गुप्ता, ए.के. सिंह, स्मृति जोशी आदि ने ताम्रकर जी के अकादेमिक योगदान की विस्तार से चर्चा की।

पंडवानी के पूनाराम

पूनाराम जी छत्तीसगढ़ की पंडवानी गायकी के पहले पायदान और पहली पीढ़ी के महाभारत-पंडवानी गायक थे। वे पहले पंडवानी कलाकार थे, जिन्होंने पंडवानी के पित्र पुरुष झाड़ूराम देवांगन से बाकायदा पंडवानी गायन की शिक्षा ली थी। सबल सिंह के महाभारत की कथा और उसकी बारीकियों को झाड़ूराम जी से प्राप्त किया था। यहाँ यह भी कहना अन्यथा नहीं होगा कि झाड़ूराम जी के पहले पंडवानी गायक अमूमन देवार और परधान लोग होते थे। यह गायन परंपरागत कथा आधारित था। झाड़ूराम जी ने पहली बार लिखित महाभारत के आधार पर कथा गायन आज के वाद्यों के साथ शुरू किया। जो आज पंडवानी के रूप में विश्वविख्यात हुआ।

पूनाराम जी ने सबसे पहले छत्तीसगढ़ की सीमा के बाहर पंडवानी गायन किया। 1983 में आदिवासी लोक कला परिषद् के आयोजन पंडवानी प्रसंग में जो मुख्यतः झाड़ूराम जी और उनकी शिष्य परंपरा पर केंद्रित था, उसमें हिस्सा लिया। इसी आयोजन में पहली बार एक अलग पंडवानी शैली के रूप में पहली बार तीजन बाई भी आमंत्रित थीं। यह उनका पहला गायन छत्तीसगढ़ के बाहर था। यह आयोजन भारत भवन के बहिरंग में चार दिनों का था। तत्कालीन सचिव और कवि अशोक वाजपेयी ने पहली बार झाड़ूराम जी का गायन रवींद्र भवन भोपाल में सुनकर और प्रभावित होकर प्रसंग आयोजित करने के निर्देश दिए थे।

पूनाराम जी को संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे झाड़ूराम देवांगन और उनकी शिष्य परंपरा पर केंद्रित समारोह में दो बार यू.के. में अपना कार्यक्रम दे चुके थे।

पूनाराम हबीब जी की नृत्य मण्डली में भी कुछ समय रहे। पूनाराम जी छत्तीसगढ़ की कला की स्मृद्धि के साक्षात् रूप थे। वे प्रतिवर्ष पंडवानी के प्रसार के लिए अपने गांव रिंगनी में आयोजन करते रहे। उन्होंने भरा पूरा जीवन जिया। वे सचमुच अविस्मरणीय हैं। ऐतिहासिक महत्व तो उनका है ही। **-नवल शुक्ल**

यह देशज आधुनिकता का समय है

पं. ईशनारायण जोशी व्याख्यान

यह मानना गलत होगा कि कथित मध्यकाल से लेकर अंग्रेजों के आने के पहले तक अंधकार का समय था। निश्चित ही कबीर अद्वितीय थे लेकिन अकेले नहीं थे। उनके बाद भी सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। लेकिन मूर्खता का महिमामंडन और प्रदर्शन का ऐसा समय इससे पहले कभी नहीं देखा गया। ये विचार दिल्ली से आये सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. पुरषोत्तम अग्रवाल ने भोपाल के राज्य संग्रहालय में आयोजित पं. ईशनारायण जोशी स्मृति व्याख्यान की ग्यारहवीं कडी को संबोधित करते हुए पेश किए। उन्होंने कहा कि मेरा ऐसा मानना है कि कबीर के बाद भी समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना में कई तरह के बदलाव आए हैं। उन्होंने कहा कि यह देशज आधुनिकता का समय है।

लोकमंगल न्यास के बैनर तले आयोजित 'कबीर और उनके बाद' विषय पर बोलते हुए 'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय' के लेखक डॉ. अग्रवाल ने मध्यकाल और आज के समय की चिंतनपरक विवेचना की और कहा कि महाराष्ट्र और पंजाब की स्त्रियां इसलिये अधिक स्वतंत्र है कि वहाँ संत तुकाराम और सिख गुरुओं के उपदेशों का व्यापक असर है। उन्होंने भक्तिकाल के कवि दादू दयाल की १६२० में लिखी जीवनी को रेखांकित करते हुए कहा कि बालविवाह के घोर विरोधी दादू दयाल ने राजा मानसिंह के विरोध के बावजूद अपनी पुत्रियों का विवाह २० वर्ष की आयु होने के बाद ही किया। कार्यक्रम के अध्यक्ष शिक्षाविद् श्याम बोहरे ने कबीर की कविता को मौजूदा समय में जरुरी बताते हुए कहा कि कबीर को बार बार पढा जाना चाहिए। कवि राजेश जोशी ने उद्‌बोधन में अपने पिता पं. ईशनारायण जोशी की साहित्यिक और सांस्कृतिक यात्रा का उल्लेख करते हुए उनकी साहित्यिक कृतियों में प्रस्तुत मर्म की अवधारणा को रेखांकित किया। इसके पूर्व गायिका नीलांजना वशिष्ठ ने कबीर के पद- 'साधो देखो जग बौराना' ...और 'कौन ठगमा नगरिया लूटल हो...' सहित अन्य पदों की प्रस्तुति दी। संचालन रामप्रकाश त्रिपाठी ने किया। **-बसंत सकरगाए**

आयोजन के दूसरे दिन आरम्भ में महान फिल्मकार स्व। सत्यजित रे की यादगार फिल्म सद्‌गति का प्रदर्शन किया गया। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास पर आधारित सद्‌गति एक मार्मिक फिल्म है। इस प्रदर्शन के बाद डॉ. अनिल चौबे ने नयी सदी के सिनेमा विषय पर सोदाहरण उद्‌बोधन देते हुए नयी पीढ़ी की पसन्द के, उसके स्वयं गढ़े और अनुभव किए गये सिनेमा पर अपनी बात रखी। इन प्रदर्शनों के उपरान्त सिनेमा में स्त्री और स्त्री निर्देशकों का सिनेमा विषयक संवाद सत्र में विख्यात फिल्म आलोचक विनोद भारद्वाज, मनमोहन चड्ढा और प्रोफेसर मधुरानी शुक्ला ने हिस्सा लिया। आयोजन का समापन उद्‌बोधन विख्यात फिल्म पत्रकार, स्तम्भकार जयप्रकाश चौकसे ने दिया। उन्होंने अपने वक्तव्य में स्वर्गीय शशि कपूर के व्यक्तित्व और अवदान को रेखांकित किया जिनका हाल ही में निधन हुआ है। उन्होंने अपनी अनेक मुलाकातों के साथ उन अवसरों को भी याद किया जिनको सुनकर शशि कपूर के परिवार में सबसे छोटे होने के बाद भी उनके कद का एहसास होता है। चौकसे ने कहा कि शशि कपूर की पूरी पर्सनैलिटी पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का मेल है। संवाद सत्र का समापन अन्त में इस्माइल मर्चेन्ट की अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म इन कस्टडी से हुआ जो स्वर्गीय शशि कपूर के प्रति आदरांजलि के रूप में दिखायी गयी। **-सुनील मिश्र**

कृष्णा सोबती को ज्ञानपीठ

हाल ही अग्रणी कथाकार कृष्णा सोबती को ज्ञानपीठ सम्मान की घोषणा हुई। उन्हें 1980 में 'ज़िन्दगी नामा' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। 1996 में उन्हें साहित्य अकादमी का फेलो बनाया गया जो अकादमी का सर्वोच्च सम्मान है। डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी, यारों के यार, तिन पहाड़, बादलों के घेरे, सूरजमुी अंधेरे के, जिन्दगी नामा, ऐ लड़की, दिलोदानिश, हम हशमत भाग एक तथा दो और समय सरगम तक। उनकी कलम ने उत्तेजना, आलोचना विमर्श, सामाजिक और नैतिक बहसों की जो फिजासाहित्य में पैदा की है उसका स्पर्श पाठक लगातार महसूस करता रहा है। हाल ही में उनकी लंबी कहानी ए लड़की का स्वीडन में मंचन हुआ। साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता समेत कई राष्ट्रीय पुरस्कारों और अलंकरणों से शोभित कृष्णा सोबती ने पाठक को निज के प्रति सचेत और समाज के प्रति चैतन्य किया है। आपको हिंदी अकादमी, दिल्ली की ओर से वर्ष 2000-2001 के शलाका सम्मान से सम्मानित किया गया था। उन्हें वर्ष 2017 का 53वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा हुई है।

ममता कालिया को व्यास सम्मान

साहित्य का प्रतिष्ठित व्यास सम्मान साल 2017 के लिए साहित्यकार ममता कालिया के नाम रहा। ममता कालिया की रचनाओं में समाज अलग ढंग से झांकता है। व्यास सम्मान के लिए चुनी गई रचना 'दुक्खम-सुक्खम' भी ऐसे ही समाज की झलक दिखाती है। अपने उपन्यास

दुक्खम-सुक्खम के जरिए वह लड़की के जन्म और फिर बाद के जीवन का ऐसा चित्रण करती हैं जैसे उपन्यास की पात्र इंदु की दोनों बेटियों का जन्म और उनका जीवन बस सामने ही घटा हो। साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष और साहित्यकार विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता वाली चयन समिति ने जब यह नर्णिय लिया होगा तब निश्चित तौर पर एक ऐसी कृति को चुनना उनका उद्देश्य रहा होगा जो भारतीय समाज के इस पहलू को दिखाता हो जिसमें सुधार की गुंजाइश अभी भी बाकी है।

2009 में प्रकाशित दुक्खम सुक्खम के अलावा बेघर, नरक-दर-नरक, सपनों की होम डिलिवरी, कल्चर वल्चर, जांच अभी जारी है, निर्मोही, बोलने वाली औरत, भविष्य का स्त्री विमर्श समेत उनकी कई पुस्तकें हैं। सत्ताईस वर्ष पहले शुरू किया गया यह पुरस्कार इस वर्ष की अवधि में प्रकाशित हिन्दी की किसी भी रचना को दिया जाता है। दो नवंबर 1940 को वृन्दावन में जन्मी ममता कालिया हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी लिखती रही हैं।

रमेश कुंतल को अकादेमी पुरस्कार

प्रख्यात साहित्यकार-आलोचक रमेश कुंतल मेघ को साहित्य अकादेमी के प्रसिद्ध वार्षिक पुरस्कार के लिए चुना गया है। यह पुरस्कार 24 भाषाओं में हर साल लेखक की एक प्रमुख कृति को दिया जाता है। हिंदी में रमेश कुंतल मेघ को यह पुरस्कार उनकी पुस्तक, विश्व मथिक सरित्सागर के लिए दिया जा रहा है। उर्दू में यह पुरस्कार बेग एहसास के कहानी संग्रह-दखमा को प्रदान किया गया है। इन पुरस्कारों में सात उपन्यास, पांच कविता संग्रह, पांच कहानी संग्रह, पांच समालोचना, एक नाटक और एक नबिंध समेत चौबीस कृतियों को पुरस्कृत किया गया है। उदय नारायण सिंह 'नचिकेता' (मैथिली), श्रीकांत देशमुख (मराठी), भुजंग टुडु (संताली), (स्व.) इंकलाब (तमिल), देवीप्रिया (तेलुगु), जयंत माधव बरा (असमिया), आफसार आमेद (बांग्ला), रीता बर (बोडो), ममंग दई (अंग्रेजी) के.पी. रामनुन्नी (मलयालम), निरंजन मिश्र (संस्कृत) और नछत्तर (पंजाबी) भी विजेताओं की सूची में सामिल हैं। कहानियों के लिए शिव मेहता (डोगरी), औतार कृष्ण रहबर (कश्मीरी), गजानन जोग (कोंकणी), गायत्री सराफ (ओड़िया) और बेग एहसास (उर्दू) को साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिल रहा है।

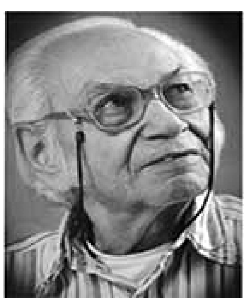

'गौ उवाच' का लोकार्पण

''गाय मात्र पशु नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति का आधार और उसकी धुरी है'' -यह उद्गार हैं जगतगुरु रामानन्दाचार्य पद प्रतिष्ठित स्वामी श्री रामनरेशाचार्य के। उन्होंने यह विचार प्रकट करते हुए वर्तमान समय में गाय पर की जा रही राजनीति को भी दुःखद बताया। वे इंद्रा पब्लिशिंग हाउस द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के सभागार में वरिष्ठ रचनाकार देवेंद्र दीपक के सद्यः प्रकाशित कविता संग्रह 'गौ उवाच' के लोकार्पण अवसर पर बोल रहे थे। आयोजन के उत्सव पुरुष देवेंद्र दीपक का स्वामी जी ने स्वस्ति वाचन मंत्रों के साथ भाल पर तिलक लगा कर पुष्पहारों एवं अंगवस्त्र से स्वागत किया। देवेंद्र दीपक ने इस अवसर पर अपने उद्‍बोधन में कहा कि मैंने जीवन में जो भी दायित्व मिला उसका निर्वहन पूरी निष्ठा व ईमानदारी से किया है। इस अवसर पर अपनी कृति पर संक्षिप्त में अपनी बात रखते हुए उन्होंने अपनी 'देह दान' करने की महत्वपूर्ण घोषणा की जिसके सारे सदन ने करतल ध्वनि से स्वागत किया। डॉ. प्रेम भारती, डॉ. विनय राजाराम, डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र, डॉ. मयंक चतुर्वेदी एवं घनश्याम मैथिल 'अमृत' ने समीक्षा प्रस्तुत की।

राग रंग से महक उठा माहौल

मालवांचल को अपनी साधना भूमि बनाने वाले विश्वविख्यात पद्मश्री फड़के जी शिल्पी, चित्रकार, लेखक, ज्योतिषाचार्य और संगीत के मुर्धन्य कलाकार रहे है। उनके मुर्तिकला शिल्प ने देश विदेश में अपना स्थायित्व अंकित किया है वही उनकी संगीत साधना की नाद ने जन समुदाय को एक बार फिर तरंगित कर दिया है। धारा नगरी में कला, और संस्कृति की सुदीर्घ सुखद परम्पराओं की उर्जावान रश्मियाँ एक बार फिर मुखरित हुई है। विगत 30 सालों के दीर्घ अंतराल के बाद पद्मश्री फड़के संगीत समारोह भोज शोध संस्थान धार के सहकार से वर्ष 2013 से पुनः आरंभ हुआ है। फड़के जी की स्मृति और कला अवदान को स्थायित्व देने के उद्‍देश्य से एक सम्मान फड़के कला सम्मान आरंभ किया है। इक्कीस हजार नगद राशि और शाल श्रीफल, प्रतीक चिन्ह तथा सम्मानपट्ट सम्मान में प्रदान किया जाता है। नृत्य, गायन और वादन का तीन दिवसीय यह आयोजन सुधी श्रोताओं में एक अविस्मरणीय स्मृति अंकित कर रहा है। इस वर्ष भी यह आयोजन नृत्य, और गायन, वादन की तीन दिवसीय कला त्रिवेणी के रुप में हुआ। उनकी स्मृति में स्थापित पाँचवा कला सम्मान वादन विधा में डॉ. नीरा शर्मा भोपाल को प्रदान किया गया। इसके पुर्व यह सम्मान गायन में श्रीमती सोनिया राय नई दिल्ली, कलापिनी कोमकली देवास तथा नृत्य में सुचित्रा हरमलकर इन्दौर तथा मानव मंहत ग्वालियर को दिया जा चुका है।

पहले दिन घुंघरु की घमक, चेहरों की चमक, एक ही लय ताल पर एकल और समूह नृत्य का नयाभिराम प्रदर्शन, नये परिवेश को प्राचीन रंगों से रंग गया। लघु रुपधारी कृष्ण की लीलाओं का विराट मंचन, प्रतिपल बदलती कलाओं में स्थिर से मंत्रमुग्ध श्रोता, गति और लय के अथक परिश्रम का ऐसा जोरदार प्रदर्शन हुआ कि घुंघरु टूट गये पर परम्परा और संगीत आनंद का सेतू जुड़ा रहा। ये सब साकार रुप में उपस्थित जब भोज शोध संस्थान धार द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले पद्मश्री फड़के संगीत समारोह के पाँचवे वर्ष के पहले दिन का शुभारंभ जयपुर नृत्य घराने की ख्यातिवान युवा कलाकार श्रीमती कीर्ति साठे की मंत्रमुग्ध कर देने वाली प्रस्तुतियों से हुआ। भारतीय संगीत के सबसे ज्यादा लोकप्रिय नृत्य विधा ने संस्कृति दर्शन का अनुपम और यादगार प्रदर्शन हुआ। जयपुर घराने की प्रसिद्ध कत्थक नृत्यांगना कीर्ति साठे की प्रस्तुति हुई। संगत पडंत पर शिवांश पटेल, मृणाल नागर और तबले पर अभिजीत साठे ने दी। स्थानीय प्रस्तुतियों में समूह में कालबेलियाँ,

लावणी और शिवानी चौधरी की एकल समूह प्रस्तुतियों ने दर्शकों का मन मोह लिया। पहले दिन का उद्‌घाटन समाजसेवी अभय जी देशमुख इन्दौर ने किया।

दूसरे दिन पं. सुधाकर देवले ने भजन और ख्याल गायिकी से पुरे सदन को रोमांचित कर दिया। देवले जी ने राग गौरख कल्याण में विलम्बित एवं द्रुत में छोटा और बड़ा ख्याल ''दरस बिना जिया तरसे'' की जोरदार प्रस्तुति दी। हारमोनियम पर संगीतज्ञ दीपक खलतकर और तबले पर पवन सेन ने संगत प्रदान की। नवोदित प्रस्तुति में युवा कलाकार विजय दुबे ने ठुमरी गायन से अपने गायन की शुरुआत की। ''आन मिलो सजना'' राजस्थानी और मालवी में लोक गीत ''केसरिया बालमा पधारों म्हारे देश'' से अपनी प्रभावशाली प्रस्तुति दी। उनकी गीत प्रस्तुति ''अकेले है चले आओं जहाँ हो कहाँ आवाज दे तुमको कहाँ हो'' पर सदन में उपस्थित दर्शक संगत कर गीत साथ साथ दोहराने लगे। संगतकार में तबले पर धरमू राव इन्दौर, की बोर्ड पर यश शर्मा कैसूर थे।

तीसरे दिन समापन वेला पर डॉ. नीरा शर्मा की उंगलियों ने मृदुल स्वर नाद उंकेरे। दीर्घ साधना से उर्जित उनका प्रदर्शन राग और स्वर कम्पन का अनुदित पर्याय सदन को स्वर सरिता से आचमित करता रहा। बागेश्री राग विलम्बित गत में जोड़ झाला और ताल तथा मध्य लय में ग्वालियरी घराने का विस्तृत विवरण पेश किया। तबला संगत प्रसिद्ध तबला वादक गाधांर राजहंस ने की। आरंभ में स्थानीय कलाकार कमल मेवाड़े ने इफराट पर सदाबहार गीतों से वातावरण को गीत संगीत से आतृप्त कर दिया। 'संभल जाओ चमन वालों कि आये दिन बहार के' से उपस्थित दर्शकों में रोमांस और अपनत्व की भावना का संचार किया। उनकी प्रस्तुतियों ने वहाँ उपस्थित हर उम्र के श्रोताओं को पुराने दिनों की यादें स्मृरित करवा दी।

कार्यक्रम का संचालन वरिष्ठ पत्रकार अनिल तिवारी ने किया। आभार डॉ. श्रीकांत द्विवेदी एवं संस्थान के निदेशक डॉ. दीपेन्द्र शर्मा ने व्यक्त किया। **-चेतना राठौर**

तालीम को नज़र करती 'उड़ान'

आईसेक्ट विश्वविद्यालय भोपाल में शिक्षा पर केन्द्रित नाट्य प्रस्तुति 'उड़ान' की आकर्षक प्रस्तुति हुई। यह कार्यक्रम विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में प्रस्तुत किया गया। नाटक 'उड़ान' मुंशी प्रेमचंद, रविन्द्रनाथ टैगोर व अन्य साहित्यकारों की रचनाओं का कोलॉज है। जिसमें इस सदी के ख्यातिलब्ध दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति के पत्रों व विचारों को भी सम्मिलित किया गया है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था डिग्रियों पर आधारित है, इसमें शिक्षा के बुनियादी तत्वों का अभाव है। जिसमें सुधारों की आवश्यकता है। यही संदेश विद्यार्थियों को उड़ान की प्रस्तुति देती है। इस नाट्य प्रस्तुति का संयोजन वरिष्ठ रंग निर्देशक संजय मेहता ने किया। अन्य रचनाकारों जैसे राजेश जोशी, प्रशांत चटर्जी, के. कृष्ण कुमार, अनवारे इस्लाम व संजय मेहता की रचनाओं से यह प्रस्तुति संभव हुई। आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने इस अवसर पर कहा कि हमारी साहित्य परम्परा इतनी समृद्ध है कि जिसे जानकर हम विशुद्ध भारतीय संस्कृति के सुवास तक पहुँचकर अपनी जड़ों तक पहुँच सकते हैं। विद्यार्थियों को रटने वाला नहीं, सवाल पूछने वाला बनना चाहिए। विश्वविद्यालय हमेशा प्रयासरत रहता है कि विद्यार्थियों को देश-विदेश की साहित्यिक और सांस्कृतिक संपदा व विरासत की जानकारी रहे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर शिक्षा पर केन्द्रित इस नाट्य प्रस्तुति 'उड़ान' का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम में आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. ए. के. ग्वाल विशेष रुप से उपस्थित थे। स्वागत संचालन डॉ. संगीता पाठक ने किया।

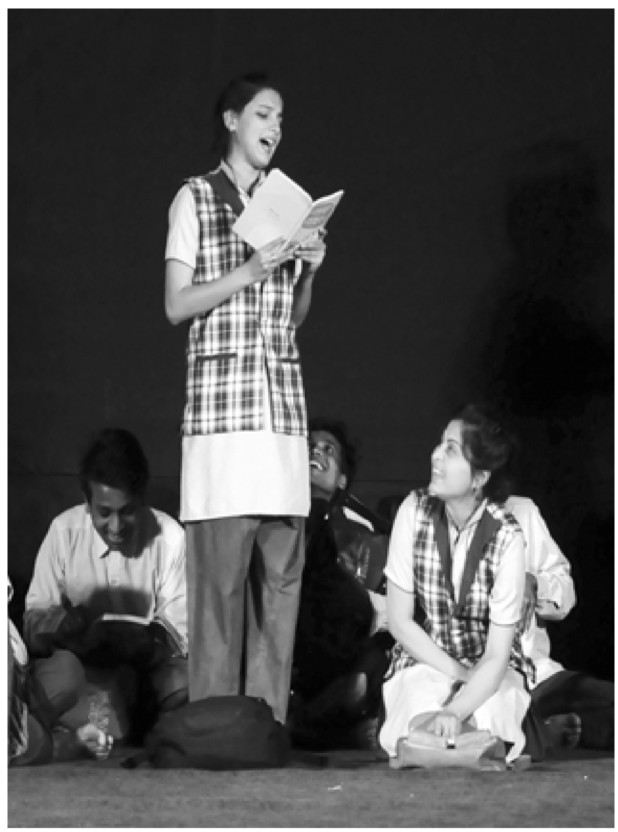

गूँजा वेणु का नाद

आईसेक्ट विश्वविद्यालय और स्पिक मैके की ओर से बांसुरी वादन का कार्यक्रम विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में आयोजित किया गया। इस मौके पर देश के प्रसिद्ध बांसुरी वादक पंडित मजूमदार ने प्रस्तुति दी। उन्होंने विद्यार्थियों व प्राध्यापकों को संगीत और बांसुरी के आध्यात्मिक पहलुओं की जानकारियां देते हुए बताया कि समयानुसार रागों की जो श्रुतियां लगती हैं वो मौसम से जुड़ी हैं। ज्ञात हो कि पंडित मजूमदार ने शंख बांसुरी का भी आविष्कार किया। उल्लेखनीय है कि मैहर घराने से संबंधित पंडित मजूमदार ने माचिस और लगान फिल्म में भी संगीत दिया है।

कार्यक्रम की शुरूआत उन्होंने वृंदावनी सारंग राग की प्रस्तुति के साथ की। मैहर प्रथा की तीन ताल बंदिश को जैसे ही पेश किया पूरा सभागार तालियों से गूंज उठा। इसके बाद पंडित मजूमदार जी ने प्योर क्लासिकल थीम पर प्रस्तुतियां दी। कार्यक्रम का अंत तुलसीदास की विनय पत्रिका के भक्ति पद ठुमक चलत रामचन्द्र बाजे पैजनिया के साथ किया। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में स्टूडेंट्स व फैकल्टी उपस्थित रहे। इस प्रस्तुति में उनके साथ तबले पर रामेन्द्र सिंह सोलंकी और बांसुरी पर सह वादन कल्पेश सांचला ने किया।

इस अवसर पर आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. ए. के. ग्वाल और सेंटर फार साइंस कम्युनिकेशन के निदेशक राग तेलंग ने आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे के उपन्यास जलतरंग की प्रति भेंट की। इस मौके पर कुलसचिव डॉ. विजय सिंह और डीन इंजीनियरिंग डॉ. संजीव गुप्ता विशेष रुप से उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन वनमाली सृजनपीठ के संयोजक विनय उपाध्याय ने किया।

नौटंकी की अद्‌भुत गद्य गाथा

भगवानदास मोरवाल का एक नया उपन्यास आया है- सुर बंजारन। हमारे यहां हिन्दी साहित्य में किसी अभिनेता, लोक कलाकार या लोकगायक की जिंदगी को आधार बनाकर शायद ही कोई कहानी या उपन्यास लिखा गया हो। सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास मुझे चांद चाहिए ने जरूर एक अभिनेत्री की जीवन गाथा केबहाने से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और आधुनिक हिंदी रंगमंच का गहराई से जायजा लिया था। मराठी भाषा में अभिराम भड़कमकर का उपन्यास बाल गंधर्व और बांग्ला में विनोदिनी दासी का उपन्यास नटी विनोदिनी चर्चित रचनाएँ रही हैं। यूं मराठी में ही शिरवाडकर के नाटक नट सम्राट का उल्लेख भी किया जा सकता है, भले ही उसकी रचना के लिए इतावली भाषा के सुप्रसिद्ध नाटककार लुई पिरांदेलो के नाटक हेनरी द फोर्थ से प्रेरणा मिली।

यह उपन्यास दो कारणों से रेखांकित किया जाना चाहिए। एक नौटंकी नाट्य शैली की गियाक और कलाकार रागिनी की जीवनगाथा को तो प्रस्तुत करता ही है, इससे भी ज्यादा यह इस नाट्य शैली के जन्म, उत्थान और पतन की महागाथा को बड़े ही मार्मिक ढंग से हमारे सामने लाता है। हम जानते हैं कि नौटंकी की कानपुर शैली में अभिनय पर और हाथरस शैली में गायिकी पर जोर होता है। मोरवाल ने बड़े मनोयोग से शोध-अनुसंधान और पूरी खोजबीन के साथ एक-एक तथ्य को उघाड़कर रख दिया है। उपन्यास में आए सभी पात्र हमारे इतने परिचित हैं कि पढ़ते-पढ़ते हम उनके साथ एकाकार हो जाते हैं। इस उपन्यास में जगह-जगह इस बात की संभावनाएं थीं कि सारे विवरण बहुत ही भावुक और मैलोड्रामैटिक हो जाते। लेकिन लेखक ने कहीं ा भी ऐसा नहीं होने दिया, चाहे रागिनी की माँ की मृत्यु का प्रसंग हो अथवा प्रदर्शन के दौरान उनके पति की मृत्यु की घटना-जिस तरह से इन प्रसंगों को रचा गया है, उससे लेखक का कलात्मक संयम जाहिर होता है। इससे बड़ा संयम और क्या होगा कि शाहजहां के सबसे बड़े बेटे दाराशुकोह ने जिस शहर को बसाया और जिसमें इसकी नायिका रागिनी रहती थी, उसका नाम उपन्यास की अंतिम चार पंक्तियों में जाकर हमारे सामने आता है।

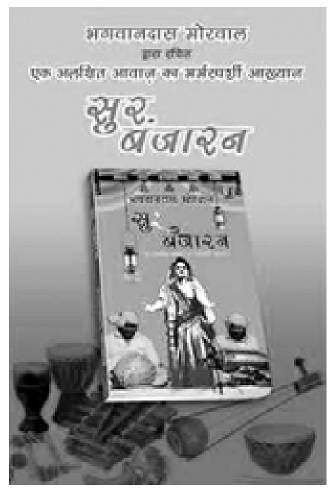

सुर बंजारन को पढ़ना मेरे लिए एक आह्लादकारी अनुभव से गुजरना था। इसके लिए लेखक की सहज-सरलल भाषा, बीच-बीच में लोकभाषा और बोली का पुट और मुहावरों से पुष्ट शैली इस अनुभव के लिए जिम्मेदार है। लेखक इस हद तक अपने कथानक और उसकी नायिका के साथ गुंफित हो गया है कि कुछ तथ्यों की अनदेखी कर दी गई है। उदाहरण के लिए ऐसा नहीं था कि आगा हश्र कश्मीरी को पारसी रंगमंडली में रोज एक नाटक लिखकर देना होता था। सच्चाई ये है कि उन्हें एक साल में एक नया नाटक लिखकर देना होता था। यहां इस बात का जिक्र करना भी जरूरी लगता है कि उपन्यास में आए लगभग सभी पात्रों के नाम वास्तविक हैं, ऐसे में सिर्फ नायिका का नाम काल्पनिक क्यों? इसके पीछे रचनाकार के कुछ सामाजिक दबाव अवश्य रहे होंगे। इसके बावजूद विषयवस्तु रचना शैली और पठनीयता में निश्चित रूप से यह उपन्यास एक मील का पत्थर माना जा सकता है। **-देवेंद्र राज अंकुर**

मलिक का सुयश

भोपाल के उभरते युवा वायलिन वादक अमित मलिक आकाशवाणी की अखिल भारतीय संगीत प्रतियोगिता के प्रथम विजेता घोषित किये गये हैं। आप ओरिएन्टल कॉलेज से ऑटोमोबाइल ब्रांच से इंजीनियरिंग कर रहे हैं। आप मेवात घराने के प्रसिद्ध गायक उस्ताद अब्दुल गफूर खां साहब एवं उस्ताद लत्तू खां साहब की परंपरा से ताल्लुक रखते हैं। आपको अपने दादा मनोहर लाल मलिक का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। वायलिन वादन की शिक्षा आपने अपने पिता एवं गुरू प्रसिद्ध वायलिन वादक महेश मलिक से ली।

शब्द, ध्वनि और दृश्य में उभरा चितेरा

नागदेव : रंग-स्मृति प्रसंग

रपट : राग तेलंग

समकालीन भारतीय चित्रकला के प्रतिनिधि रंग हस्ताक्षर और जाने-माने चित्रकार स्मृति शेष सचिदा नागदेव की रंग यात्रा पर विहंगम दृष्टि डालता एक तीन दिवसीय अभिनव आयोजन चार सत्रों में विगत दिनों आवृत्ति परिसर, मानव संग्रहालय, भोपाल में संपन्न हुआ। आयोजन में सचिदा नागदेव को आदरांजलि देने देश भर से विशिष्ट कलाकार-संगीतकार जुटे और अपनी-अपनी कला के प्रदर्शन के माध्यम से सचिदा की कला यात्रा के संदेश को आगे तक जारी रखने का संकल्प अभिव्यक्त किया।

स्वर-मैत्री समूह का फ्यूज़न : संगीत की दुनिया में बहुत-सी ऐसी शख़्सियतें हुई हैं, जिनकी प्रस्तुतियों का ऑडियो के साथ-साथ वीडियो भी अनुपम रहा है.बड़े गुलाम अली खां अगर लंबे और कद्दावर शख़्स थे तो अमीर खां साहब का व्यक्तितव आकर्षक था ही, पंडित रविशंकर की सितार बजाते हुए तस्वीर में उनकी कॉस्मिक मुस्कान को कौन संगीतप्रेमी भूल सकता है! उस्ताद विलायत खां के होंठों पर की रूहानी जुंबिश याददाश्त से पेशे-दरकिनार भला हो भी सकती है कहीं!

पंडित कुमार गंधर्व, उस्ताद अमज़द अली खां, बेग़म परवीन सुल्ताना, बेग़म अख़्तर,मदन मोहन की मंद-मंद मुस्कुराहट, और हां! लता जी की वह सकुचाती मुस्कान याद है ना आपको! मैं आप लोगों को बहुत ज़्यादा पशोपेश में ना डालते हुए, बता दूं कि ये बातें सुबह सवेरे के इस मंच पर जिन सुदर्शन और सुरम्य कलाकारों बारे में कीं जा रही हैं वे हैं नीदरलैंड के डबल बास वादक सीरिल और बेल्जियम के बांसुरी वादक फ्लोरियां साथ ही साथ हमारे समय की एक अप्रतिम संगीतकार और प्रख्यात सितार वादक विदुषी स्मिता नागदेव, और हां! इन सबके साथ तबले पर संगत करने वाले युवा मगर एक परिपक्व कलाकार रामेंद्र सोलंकी भी।

स्मिता जी के संगीत से मेरा सर्वप्रथम परिचय तीन वर्ष पूर्व आयोजित लोकरंग के संगीत कार्यक्रम ''किंदरा'' के माध्यम से हुआ। देश के विभिन्न अंचलों के तंतुवाद्यों का ऐसा समागम और साथ ही उनका जीवंत संयोजन एक अविस्मरणीय अनुभूति था। प्रस्तुति के दौरान मैंने गौर किया कि जब एक वाद्य अपना आखिरी सिरा छोड़ता और तभी जब दूसरे वाद्य को वहां से सिरा थामना होता,स्मिता जी की मुस्कान उस नई शुरूआत के प्रथम बिंदु के रूप में होती, वह भी स्वयं सितार थामे हुए।

बताता चलूं कि स्मिताजी का निर्माण जिस परिवेश ने किया है,उनमें शामिल हैं उनके यशस्वी पिता मशहूर चित्रकार स्मृति शेष सचिदा नागदेव, माता श्रीमती वनमाला नागदेव, आरंभिक गुरू आष्टेवाले जी और तत्पश्चात उनके सरपरस्त बने सरोद के पर्याय और हमारे मध्यप्रदेश के गौरव उस्ताद अमजद अली खां। जिन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की धारा को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपना अपूर्व योगदान दिया है।

कहते हैं कोई शख़्स जब हंसता है तब उसकी चार सौ से ज़्यादा मांसपेशियां एक साथ काम कर रही होती हैं, अब इस रूपक को वैज्ञानिक संदर्भ से हटाकर अगर पुरा- परंपरा से जोड़कर देखें तो कहना यूं चाहिए कि एक शख़्स की मुस्कुराहट में उसकी समूची परंपरा भी मुस्कुराती है।

आवृत्ति परिसर के मंच पर आधुनिक फ्यूज़न संगीत के प्रतिभाशाली अंतरराष्ट्रीय कलाकारों ने अपनी सांगीतिक प्रस्तुति से सबका मन मोह लिया, इसके एक दिन पूर्व इन्हीं कलाकारों ने आईसेक्ट विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में यही प्रस्तुति दी थी इसलिए दूसरी प्रस्तुति में मेरे आनंद की द्विगुणित हो गई थी। बहरहाल संगीत सभा में पश्चिमी और भारतीय शास्त्रीय संगीत के तंतुवाद्यों का ऐसा समागम और साथ ही उनका जीवंत संयोजन देखना मेरे लिए एक अविस्मरणीय अनुभूति था। भारतीय सितार वादक सुश्री स्मिता नागदेव की हर तान के साथ नई शुरूआत प्रथम बिंदु के रूप में होना,वह भी सितार के सुरों, डबल बास वाद्य और बांसुरी की स्वर लहरियों को थामे हुए, एक दिलचस्प सांगीतिक कौशल का काम साफ दीखता था।

फ्यूज़न वैश्विक संगीत की नई शैली है जिसे युवा वर्ग ने धारण किया है, जिसे सिर्फ नई तरंग के संगीत के मंच पर ही अनुभूत किया जा सकता है वह भी कलाकारों के जीवंत वादन के दौरान द्य यह स्मित की निर्बाध परंपरा है जिसे स्मिताजी ने और उनके स्वर-मैत्री समूह ने धारण किया है, जिसे सिर्फ संगीत के मंच पर ही अनुभूत किया जा सकता है वह भी उनके सितार और विविध तंत्र वाद्यों के वादन के दौरान।

आप सोचकर देखिए कि नाद की एक क्रिया अगर व्योम में कहीं संपन्न हुई है और उस आवृत्ति को कोई पकड़ पा रहा है, तब तो निश्चित ही उस क्रिया का कर्ता इस समीकरण का इति सिद्धम अंततः मुस्कान के साथ ही करेगा।

स्वर-मैत्री समूह के इन अंतरराष्ट्रीय कलाकारों ने सांगीतिक संध्या में मानव संग्रहालय के आवृत्ति परिसर को इस तरह तरंगित कर दिया कि लगा हम सब सरहदों से परे हैं और संगीत की स्वर लहरियां हम सबको अटूट रूप से बांधे हुए हैं, सचमुच सचिदा नागदेव को संगीतकार बेटी की इस आदरांजलि को अविस्मरणीय सौगात की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस आयोजन की पहल करने में कला पारखी और मार्गदर्शी व्यक्तित्व संतोष चौबे, सरित कुमार चौधरी और आई.ए.एस. अधिकारी हरिरंजन राव की महत्वपूर्ण भूमिका के उल्लेख के बगैर यह आलेख अधूरा होगा।

फिराक़ की पंक्तियां याद आती हैं- यारो बाहम बिखरे पड़े हुए हैं टुकड़े कायनात के, एक फूल को जुंबिश दोगे, दूर कहीं एक तारा कांप उठेगा।

फिल्म प्रदर्शन : इस सत्रारंभ के पूर्व सचिदा के कृतित्व-व्यक्तित्व को समेटती एक फिल्म का प्रदर्शन किया गया, आईसेक्ट विश्वविद्यालय की यह निर्मिति अन्य शैक्षणिक संस्थानों के लिए एक प्रेरणा का काम करेगी कि कला- संस्कृति का शिक्षण सिर्फ किताबी काम नहीं है। निस्संदेह इस फिल्म ने सचिदा एकाग्र आयोजन के लिए पूर्व पीठिका का काम किया।

संवाद में सचिदा : नरेंद्र नागदेव, जो कि उनके छोटे भाई हैं और सुपरिचित कथाकार भी, ने सचिदा से जुड़ी वैयक्तिक और रचनात्मक प्रेरणाओं को साझा किया, इसी कड़ी में सचिदा के बड़े भाई रमाकांत नागदेव ने सचिदा की दृढ़ इच्छाशक्ति, जिजीविषा और लगन के गुणों की व्याख्या दिलचस्प संस्मरणों के माध्यम से की.वरिष्ठ चित्रकार अखिलेश व कलाकार रॉबिन डेविड व भालू मोंढे तथा मुंबई के ख्यात क्यूरेटर दादीबा ने भी संस्मरणों में सचिदा को गौरवमयी आदरांजलि अर्पित की। विचार सत्र के अगले चरण में सचिदा की रंग यात्रा की स्मृतियों की निरंतरता प्रदान करते हुए वक्ताओं में धूमिमल आर्ट गैलरी की संचालक उमा जैन व उनके सुपुत्र उदय जैन ने घोषणा की कि सचिदा की स्मृतियों को चिर-स्थायी बनाने के उद्देश्य से देश के प्रतिभाशाली चित्रकारों के लिए फेलोशिप स्थापित की जाएगी तथा अगले वर्ष एक एकाग्र आयोजन कर सचिदा की रंग यात्रा पर व्यवस्थित ढंग से एक अंतरराष्ट्रीय स्तर की पुस्तक का प्रकाशन व फिल्म का निर्माण किया जाएगा। आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति व लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार संतोष चौबे ने सचिदा से जुड़े हर भावी उपक्रम से संबद्ध रहने की प्रतिबद्धता को दोहराया, अपने प्रभावी वक्तव्य में संतोष जी ने सचिदा के रंगों के संयोजन से उपजते

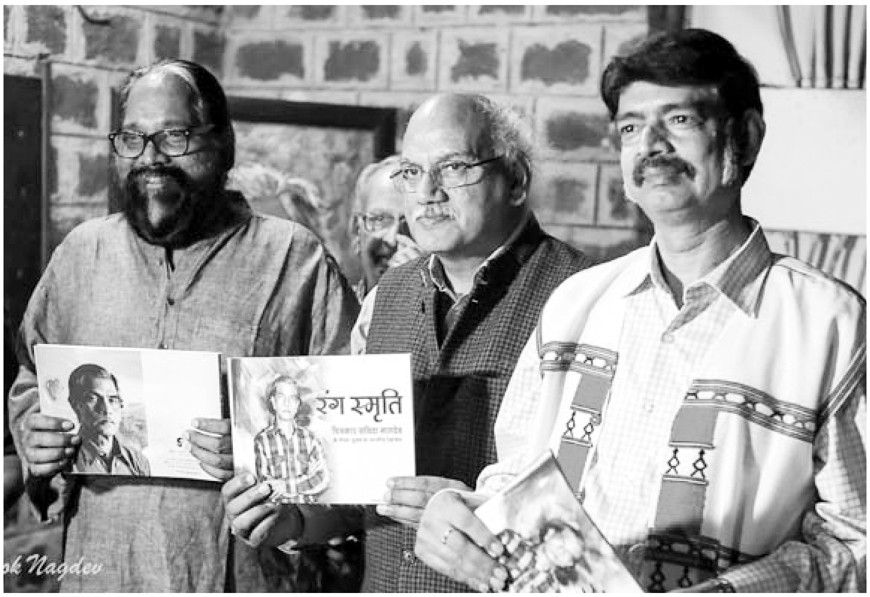

मनोभावों की सूक्ष्म विवेचना की और कहा कि वे अपने समय से आगे के कलाकार थे.कला मर्मज्ञ एवं वरिष्ठ आई.ए.एस. डॉ. के.के. चक्रवर्ती ने पुरा भारतीय चित्र परंपरा के सोदाहरण उल्लेख के साथ सचिदा के काम को जोड़ा और रेखांकित किया कि प्रकृति के साथ एकाकार हो जाना ही सचिदा के कला व्यक्तित्व की विशेषता है। अंतिम वक्तव्य कला गुरू वसंत चिंचवड़कर का रहा जिसमें उन्होंने सचिदा की आत्मीय यादें साझा कीं। संचालन करते हुए भोपाल के रंग-शब्द के वरिष्ठ हस्ताक्षर श्रीकांत आप्टे ने अपनी विशिष्ट शैली से विमर्श को रोचक बनाए रखा.इस अवसर पर कलाविद् भालू मोंढे ने स्मृति स्वरूप अपनी एक चित्रकृति स्मिता नागदेव को भेंट की। संचालन की बात हो और कला समीक्षक विनय उपाध्याय की बात न हो तो यह ग़ैर मौज़ूं होगा, हमेशा की तरह यहां भी संगीत सभाओं का सुरम्य संचालन उन्होने किया।

राग-रंगत : कबीर की परंपरा के पथ पर सारे कलाकारों की यात्रा मुकम्मल होती रही है। पद्मश्री प्रहलाद टिपाण्या और उनके गुणी सुपुत्र अजय टिपाण्या ने साथियों के साथ मिलकर आयोजन में रूहानी ताक़त भरी और सचिदा के कलाकर्म को कबीर के अल्फाज़ों से मानीखेज़ बनाया।

छवि मूरत : देश के लब्ध-प्रतिष्ठ शिल्पकार प्रमोद कांबले ने समापन सत्र में अपनी चित्रकारी व मूर्ति निर्माण प्रक्रिया व मूर्ति शिल्पकला क जीवंत प्रदर्शन से एक ऐसा रचनात्मक संदेश सबके भीतर प्रवेश कराया जिसके बारे में अनुभूति की रचनात्मक प्रक्रिया जानने वालों का कहना है कि जो रचेगा वही जानेगा, इसीलिए एक कलाकार की रचना प्रक्रिया की सीमाएं अनंत की ओर चली जाती मालूम पड़ती हैं। कहना न होगा सचिदा नागदेव की याद में संपन्न हुआ यह रंग-स्मृति आयोजन सबकी स्मृति में टिमटिमाते तारे के सप्तरंगी प्रकाश के रूप में अंकित हुआ और स्मिता नागदेव सहित इसके तीनों प्रायोजक इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, आईसेक्ट विश्वविद्यालय और मध्यप्रदेश पर्यटन बोर्ड इस अप्रतिम प्रक्रम के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

‘वेली ऑफ वर्ड्स’ में सम्मानित

चौबे का उपन्यास ‘जलतरंग’

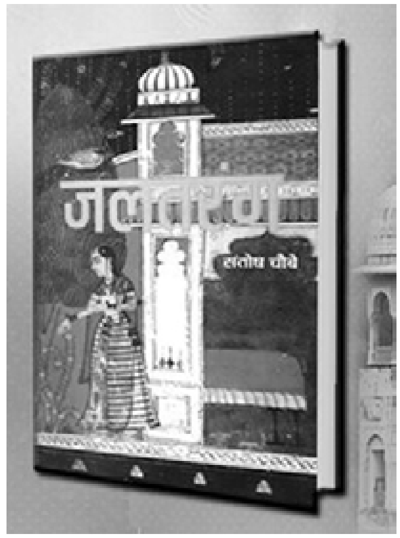

अग्रणी कथाकार, संस्कृतिकर्मी और शिक्षाविद् संतोष चौबे के बहुचर्चित उपन्यास ‘जलतरंग’ को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक कृति के रूप में पुरस्कृत किया गया है। यह सम्मान उन्हे देहरादून इन्टरनेशनल लिटरेचर फेस्टिवल ‘वेली ऑफ वर्डस’ में समारोहपूर्वक भेंट किया गया।

बेस्ट नॉवेल ऑफ-2016 के इस सम्मान को हासिल करते हुये चौबे ने अपने वक्तव्य में संगीत और शोर के बीच जीवन की कश्मकश को उद्घाटित करते हुये ‘जलतरंग’ की विषयवस्तु पर प्रकाश डाला। भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित इस उपन्यास के जारी होते ही कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा इस उपन्यास को शैलेष मटियानी राष्ट्रीय कथा सम्मान से भी पुरस्कृत किया जा चुका है। ‘जलतरंग’ पर आधरित नाटक का भव्य मंचन भी पिछले दिनो भारत भवन में हो चुका है। शीघ्र ही इसका फिल्मांकन भी प्रस्तावित है। संतोष चौबे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पन्न रचनाकार हैं। वे उतने ही भारतीय भी हैं। भारतीय इस अर्थ में कि वे अपनी कला-परम्पराओं को शास्त्र और लोक दोनों धरातलों पर देखते हैं। जाँचते हैं। सँभालते हैं। वे परम्परा को सम्पूर्णता में देखते हैं। उसे अद्यतन परखते हैं। अपने समकाल में उसकी मूल्याधारित उपादेयता अनुभव करते हैं। इसलिए अपने ‘जलतरंग’ उपन्यास की कथायात्रा भारतीय शास्त्रीय संगीत की सुन्दर, अनुपम, विस्मयकारी, संघर्षमय, एकांतपथिक, आत्मप्रबोधिनी और पूर्णत: रसमय यात्रा है। यह यात्रा स्वयं को जानने की भी है।

यह यात्रा संगीत साधकों की तपस्या और उनके ज्ञान-गाम्भीर्य को प्रत्यक्षत: दृष्टा बनकर देखने की और उनके सान्निध्य में रहकर आत्मसात करने की है। यह अपनी जड़ों की ओर लौटने की है। उन जड़ों की रसग्राह्य क्षमता और उनके अक्षय-स्रोतों और उत्सों को निर्विकार भाव से समझने की है। यह यात्रा प्रकृति के पत्र-पत्र से झरते संगीत को सुनकर प्राकृत हो जाने की है। सुनते-सुनते तथा संगीत की साधना करते-करते सुसंस्कृत हो जाने की है।

म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अलंकरण समारोह में समग्र साहित्यिक अवदान के लिये वरिष्ठ कथाकार और संस्कृति के अध्येयता रमाकांत श्रीवास्तव को भवभूति सम्मान से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर वागीश्वरी सम्मान से श्रुति कुशवाह, डॉ. सुमन सिंह और जाहिर खान तथा उर्मिला तिवारी स्मृति सप्तपर्णी सम्मान से लोक संस्कृति के अग्रणी विद्वान डॉ. कपिल तिवारी और साहित्यिक पत्रिका आकंठ के लिये संपादक हरिशंकर अग्रवाल विभूषित किये गये। युवा रचनाकारों के लिये स्थापित दो नये पुरुस्कार क्रमसः अमेयकांत और चित्रांश वाघमारे को भेंट किये गये। सम्मान समारोह वरिष्ठ साहित्यकार संतोष चौबे की अध्यक्षता तथा कवि राजेश जोशी के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ।